गांधी-वध क्यों ?

('पंचावन्न कोटींचे बळी' का हिन्दी अनुवाद)

पचपन करोड़ की बलि

नथूराम गोडसे का संपूर्ण न्यायालयीन निवेदन समाविष्ट

गोपाल गोडसे

वितस्ता प्रकाशन

१२०६।१, ब, शिवाजी नगर

सन्मुख संभाजी उद्यान, पुणे ४११ ००४

'वितस्ता' क्या है ? झेलम नदीका वेदकालसे चलता आया नाम ।

प्रकाशक : गोपाल विनायक गोडसे
वितस्ता प्रकाशन के लिये
१२०६।१ ब, शिवाजी नगर
जंगली महाराज मार्ग, पुणे ४

दूरध्वनि : द्वारा ५३५४६

C गोपाल गोडसे

प्रथम संस्करण १३–६–१९७३
द्वितीय संस्करण ७–७–१९७७
तृतीय संस्करण २८–५–१९७९

मूल्य : दस रुपये

मुद्रक : पांडुरंग रघुनाथ अंबिके
अनसूया मुद्रणालय
१३९८, सदाशिव पेठ, पुणे ३०.

विषय क्रम

मुद्रायें

प्रास्ताविक

अतिथियों के भोजनका प्रबंध यदि किसी आहारगृह में किया हो तो रुचि-कर पदार्थों के निर्माण में यजमान की कुशलता नहीं रहती। इस पुस्तक की स्थिति वैसे ही है।

इस पुस्तक में पं० नथूराम का निवेदन प्रथम बार वैध एवं प्रकट रूप से प्रसिद्ध किया जा रहा है।

उस निवेदन में आये हुए कुछ एतिहासिक भाग की संपुष्टि के लिए मैं कुछ अन्य ग्रंथ ढूंढ ही रहा था जब न्यायमूर्ति कपूर का लिखा प्रतिवृत्त मेरे हाथ आया। गांधी वध किस प्रकार हुआ, उस दुर्घटना को टालने के लिए क्या क्या पग उठाये आदि विषयों का मंथन करने के लिये कपूर आयोग बैठा था। मैंने उस प्रतिवृत्त के छेदक (पैराग्राफ) अनुवादित किये हैं और जैसे के तैसे ही दिये हैं। अनिवार्य जहाँ था वहाँ अपना विवेचन मैंने दिया है।

श्री व्ही. पी. मेनन, श्री वाल्टर लारेन्स, श्री जोसेफ कारवेल, श्री शिशिर गुप्ता, श्री होरीलाल सक्सेना आदि लेखकों के ग्रंथों का भी मैंने स्थान स्थान पर संदर्भ लिया है। कहीं कहीं मैंने उन विद्वानों के पुस्तकों से उद्धरण दिया है।

इस प्रकार, जैसे प्रारंभ में कहा है, मैंने दूसरों का सिद्ध किया साहित्य थाल में परोसकर प्रस्तुत किया है। मेरा अपना साहित्य इसमें नाममात्र है।

आज पचीस वर्ष पूर्व गांधीजी का अंत नथूराम गोडसे ने किया। उस समय वातावरण कैसा था इसका ज्ञान इस पीढी को नहीं है। गांधी हत्या के कारणों से भी वह अनभिज्ञ है। आशा है, यह पुस्तक उनको उस काल खंड में ले जायगी और वस्तुस्थिति की कुछ झलक मात्र दिखा सकेगी।

इस पुस्तकका दूसरा संस्करण सवंश्री सूर्य प्रकाशन, नयी सड़क दिल्ली ६ ने वितरित किया। उस संस्करण की प्रतियाँ समाप्त हुए कभी मास बीते किंतु तीसरा संस्करण निकल नहीं पाया। अब वह पाठकों को प्रस्तुत हो रहा है।

अनसूया मुद्रणालयक स्वामी अेवम् श्रमिक आभारके अधिकारी हैं।

आवरण के चित्र का ढाँचा श्री माधव भावे, नगर सेवक डोंबिवली (ठाणे) ने बनाया है। मैं उनका आभारी हूँ।

दिनांक २८ मयी १९७९.

१ विभाजन के घाव
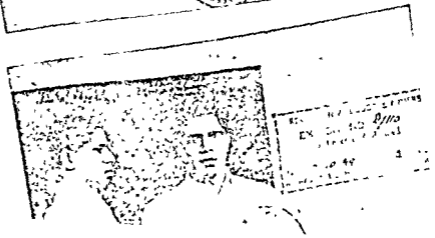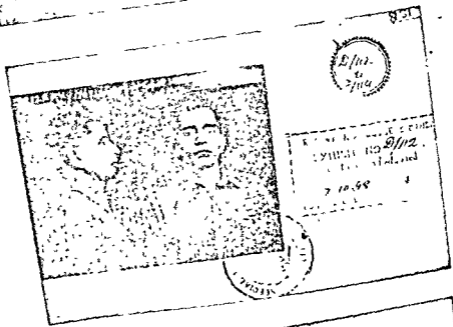
गांधीजी के वध के विषय की परिधि में अभी एक आयोग बिठाया गया था। सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति श्री. कपूर की नियुक्ति इस कार्य के लिए हुई थी। क्या यह दुर्घटना टाली जा सकती थी और क्या शासकीय कर्मचारियों ने सुरक्षा की उपेक्षा की थी? ऐसे विषय उस आयोग के सामने थे। इन विषयों के अन्तर्गत तत्कालीन दिल्ली के वातावरण का चित्रण करना भी उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ। साथ ही गाधीजी के संबंध में लोकमन कैसा था यह भी देखना उन्हें अनिवार्य लगा। कुछ ग्रन्थों के आधार पर और उनके सामने आए साक्षियो के विवरण से श्री. कपूर ने उस विषय की चर्चा की है।

(कपूर आयोग प्रतिवृत्त भाग १, पृष्ठ १३३)

दिल्ली की परिस्थिति :

पंजाब उच्च न्यायालय के एक और न्यायमूर्ति श्री. जी. डी. खोसला ने एक पुस्तक लिखी है, " The stern Reckoning "। पुस्तक में हिन्दुस्तान का विभाजन, विभाजन तक हुई घटनाएँ और विभाजन के भयानक परिणामों से सम्बन्धित जो अध्याय है उनका आधार श्री. कपूर ने अपने प्रतिवृत्त में लिया है। दिनांक १२ दिसम्बर १९४५ में डॉन वृत्तपत्र में जिन्ना ने कहा है कि यदि लोग स्वेच्छा से स्थानान्तर करना चाहें तो वैसा हो सकता है। वे लोकमत को टटोलना चाहते थे। जो प्रांत पाकिस्तान में जानेवाले थे वहाँ के हिन्दुओं की इसमें सहमति नहीं थी, किन्तु मुस्लिम लीग को यह स्थानांतर योजना का कार्यान्वय तुरन्त चाहिए था। क्योंकि उससे पाकिस्तान का विरोध करनेवालों को उत्तर मिलनेवाला था। पंजाब, वायव्य सरसीमाप्रांत, सिंध और बंगाल, इन प्रातों के हिंदू अपने-अपने व्यवसाय, व्यापार-धन्धे छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। वे उद्योग उन्होंने वहाँ पीढ़ियों के परिश्रम से खड़े किए थे। जिन्ना की मन की लहर पर भीखमंगे होना या भटकनेवाले बनना और निर्वासित बनना उन्हें मान्य न था। दूसरी ओर उत्तर-प्रदेश, बम्बई, मद्रास, बिहार, मध्यप्रदेश आदि प्रांतों के मुसलमानों को भी अपना घरबार छोड़कर जाना जँचता न था। इस कठिनाई का हल करने के लिए मुस्लिम लीग को अन्य कोई मार्ग ढूँढ़ना अनिवार्य हो गया। (छेदक १२ ए १)

कलकत्ते का नरसंहार का प्रयोग भले ही पूरी मात्रा में फलित न हुआ हो' किन्तु उसका एक परिणाम अवश्य हुआ। उस हत्याकांड से निर्मित आतंक ने हिन्दुओं को अपना घरबार छोड़ने को बाध्य किया। वह प्रयोग नोआखाली और टिप्पेरा भाग में सफल हुआ। वहाँ के हिन्दुओं के मन में भय उत्पन्न करना, उनकी संपत्ति की लूटपाट करना, स्त्रियों पर अत्याचार करना और हिन्दुओं को सामूहिक रूप में भ्रष्ट कर मुसलमान बनाना उनके लिए सुलभ हुआ। यह मार्ग लोगों के स्थानांतर की दृष्टि से लीग को अधिक उपयुक्त जँचा। बिहार में उसकी प्रतिक्रिया हुई थी। वहाँ के मुसलमानों को सिंध में जाना पड़ा था। लोगों के स्थानांतर का प्रश्न दुबारा सम्मुख आया था। फिर छब्बीस नवम्बर १९४६ को जिन्ना ने 'डॉन' वृत्तपत्र में प्रकाशित करवाया कि स्थानांतरण का प्रश्न तुरन्त हाथ में लिया जाय। पूरे हिन्दुस्तान में हिन्दुओं ने इसका विरोध किया, किन्तु मुस्लिम लीग ने उस मार्ग की पुनरावृत्ति की और ममदोत के नवाब जैसे पंजाब मुस्लिम नेता ने इस स्थानान्तरण कार्य को निपटाने की धमकी भी दी। (छेदक १२ ए २)

सर जिह्वान्स जेंकिन्स उन दिनों पंजाब के राज्यपाल थे। उन्होंने कहा कि ममदोत के नवाब के वक्तव्य का सीधा अर्थ है कि पंजाब के हिन्दुओं को पंजाब से छलपूर्वक निकालना, परन्तु मुस्लिम लीग के नेताओं ने उसका प्रतिरोध किया और कहा कि पंजाब की बहुसंख्यक जनता के भीतर इन अल्पसंख्यक हिन्दुओं का रहना असुरक्षित और भयप्रद है। (छेदक १२ ए ३)

सर फिरोजखान नून ने धमकाया कि चंगेजखान और हलाकुखान के किए हुए अत्याचार की पुनरावृत्ति होगी। नून भूल गए थे कि वे मुसलमान नहीं थे। जनवरी १९४७ में मुसलमानों ने अपना अत्याचारी आन्दोलन प्रारम्भ किया। उससे पंजाब के संयुक्त मंत्रिमंडल का शासन समाप्त हुआ। (छेदक १२ ए ४)

आरोप लगाया गया कि पंजाब के हिन्दू नेता और विशेष कर मास्टर तारासिंहजी ने कड़े शब्दों में विरोध किया। वस्तुतः उन्होंने कड़े शब्दों का प्रयोग किया, इस बात का आधार तक न था। मुसलमान केवल बहाना ढूंढ़ते थे। रावलपिंडी में हुए हिंदुओं के हत्याकाण्ड का वर्णन 'रावलपिंडी का बलात्कार' के नाम से जाना जाता है। अपनी प्राणरक्षा के कारण हिन्दुओं को छलबल के मारे मुसलमान धर्म स्वीकार करना पड़ा। हिन्दू और सिक्ख स्त्रियों ने भारी संख्या में अग्नि में प्रवेश कर जोहर की प्रथा निभाही। उन्होंने कुओं में छलांग लगाकर आत्म-बलिदान किया। अपनी बच्चियों को उन्होंने अपने आप मार डाला। अपनी लज्जा रक्षा का उनके पास केवल यही उपाय था। (छेदक १२ ए ५)

गाड़ियाँ भर-भरकर निर्वासितों के दल हिंदुस्तान आने लगे। उसका ब्योरा भी हृदय विदीर्ण करनेवाला है। वह भयाक्रांत मानवता का बड़ा प्रवाह बह रहा

था। डिब्बों में साँस लेने जितना भी स्थान न था। डिब्बों की छत पर बैठकर भी लोग आते थे। पश्चिमी पंजाब के मुसलमानों का आग्रह था कि लोगों का स्थानान्तरण होना चाहिए, परन्तु वह इतने सीधे, बिना किसी छल के हो यह उन्हें नहीं भाता था। इन हिंदुओं के जाते समय भयानकता, क्रूरता, पशुता, अमानुषता, अवहेलना आदि भावों का अनुभव मिलना ही चाहिए ऐसी उनकी कामना थी। उसी के अनुसार उनका व्यवहार था। (छेदक १२ ए ९)

किसी स्टेशन पर गाड़ी घण्टों ठहरती थी। उस विलंब का कोई कारण न था। पानी के नल तोड़ दिए गए थे। अन्न अप्राप्य किया जाता था। छोटे बच्चे भूख और प्यास से छटपटाकर मरते थे। यह तो सदा का अनुभव बना था। एक अधिकृत सूचना के अनुसार माता-पिताओं ने अपने बच्चों को पानी के स्थान पर अपना मूत्र दिया, किन्तु वह भी उनके पास होता तो ! निर्वासितों पर हमले हुआ करते थे। उनको ले जानेवाले ट्रक और लॉरियाँ रास्ते में रोकी जाती थीं। लड़कियाँ भगाई जाती थीं। जो युवावस्था में थीं, ऐसी लड़कियों पर बलात्कार हुआ करते थे। वे भगाई भी जाती थी और दूसरे लोगों की हत्या की जाती थी। यदि कोई पुरुष बच जाए, उसे अपने प्राण बच गए, यह मानकर ही संतुष्ट रहना पड़ता था। (छेदक १२ ए १०)

निर्वासितों का काफिला झुण्ड की भाँति चल रहा था। वृद्ध पुरुषों तथा स्त्रियों का चलते-चलते दम घुट जाता था। वे मार्ग के किनारे मरने के लिए ही छोड़े जाते थे। काफिला आगे बढ़ जाता था। उनकी देखभाल करने को किसी के पास समय न होता था। रास्ते शवों से भरे थे। शव गल-सड़ जाते थे। उनसे दुर्गन्ध फैलती थी। कुत्ते और गिद्ध उन पर अपना भोजन चलाते थे। ऐसे समूह मानो मनुष्य की पराभूत चित्त की, शोक विह्वल और अगतिक मन की अन्त्ययात्रा ही थी। (छेदक १२ ए ११)

अल्पसंख्यकों का बरबस निष्कासन करना यही मुस्लिम लीग और पाकिस्तान की रचना को प्रोत्साहित करनेवालों का मन्तव्य था। अतएव उन लोगों से सद्व्यवहार, सहानुभूति अथवा सुविधाओं की अपेक्षा करना अर्थहीन था। उनके सैनिक और आरक्षीगण (पुलिस) उनके यात्रारक्षी दल (escorts) प्रायः मुसलमान थे। उनसे निर्वासितों को रक्षण मिलना असंभव ही था। निर्वासितों को भी उन पर विश्वास न था। क्योंकि उन्हें रक्षण देने की अपेक्षा, अपने धर्मबन्धुओं द्वारा चलाए लूटपाट के अभियान में हाथ बँटाने का उन्हें अधिक मोह हुआ करता था। (छेदक १२ ए १२)

पश्चिमी पंजाब से आई निर्वासितों की गाड़ियों पर कई बार हमले हुआ करते थे, किन्तु १४ अगस्त १९४७ के पश्चात् जो हमले हुए वे अत्यधिक क्रूरता-

पूर्ण थे। सितम्बर में झेलम ज़िले के पिंडदादनखान गाँव से चल पड़ी गाड़ियों पर तीन स्थानों पर आक्रमण हुए। दो सौ स्त्रियों को या तो मारा गया या भगाया गया था। वहाँ से निकली गाड़ी पर वजीराबाद के पास हमला हुआ था। वह गाड़ी सीधे रास्ते से लाहौर जाने के बजाय टेढ़े रास्ते सियालकोट की ओर घुमाई गई। यह सितंबर में हुआ। अक्तूबर में सियालकोट से आनेवाली एक गाड़ी पर ऐसा ही अत्याचारी प्रयोग किया गया, किंतु जनवरी १९४८ में बन्नू से निकली गाड़ी पर गुजरात स्थानक पर विशेष रूप से क्रूर हमला हुआ। हिंदुओं का घोर संहार हुआ। उसी गाड़ी पर खुशाब स्थानक पर भी हमला हुआ। सरगोधा और लायलपुर के रास्ते वह गाड़ी सीधी लाहौर लाई जाने के बजाय खुशाब, मालकवाल, लालामोसा, गुजरात और वजीराबाद जैसे दूर के मार्ग से लाहौर लाई गई। बिहार का सैनिकदल यात्रारक्षा के लिए नियुक्त किया गया था। उन पर भी शस्त्रधारी पठानों ने हमला किया था, गोली बरसाई। यात्रारक्षी दल ने प्रत्युत्तर में गोली चलाई, किंतु शीघ्र ही उनका गोला-बारूद समाप्त हो गया। जैसे ही पठानों को यह भान हुआ, तीन सहस्र पठानों ने गाड़ी पर हमला कर दिया। पाँच सौ लोगों को कत्ल कर दिया। यात्री अधिकतर बन्नू की ओर के थे और उनमें से कुछ धनवान थे। उनको लूट लिया गया। यह सब जनवरी १९४८ में हुआ। (छेदक १२ ए १३)

पाराचिनार के हिंदुओं पर आसपास के परिसर के टोलीवालों ने हमले किए थे। उनके घर लूटे गए थे, दूकानें लूटी गई थी। प्रत्युत उन्हें कोहाट को स्थानांतरित किए जाने का प्रबन्ध किया गया, ताकि वहाँ से रेलगाड़ी से उन्हें हिंदुस्तान भेजा जा सके। जब तक उनके रहने के लिए तंबुओं की छावनी बनाकर अच्छे संरक्षण में रखना निश्चित हुआ। (छेदक १२ ए १४)

इस व्यवस्था के अनुसार उन हिंदुओं को छावनी में तो रखा, किन्तु उन्हें न खाद्य-सामग्री दी गई न नियन्त्रित भाव से अन्नधान्य। घरबार तो लूटे ही जा रहे थे। बर्फ गिरने लगी। हिंदुस्तान शासन ने इस घटना की ओर ध्यान दिलाया। वायव्य सरसीमा प्रांत के राज्यपाल ने छावनी तोड़ने की आज्ञा दी, किंतु वहाँ रहनेवालों ने वहाँ से निकलने से इन्कार किया। अति प्रतिकूल वातावरण में भी वहीं रहने का उन्होंने निश्चय किया। अपने घर लौटने में उन्हें असुरक्षितता स्पष्ट रूप से दीखती थी, किंतु छावनी में भी दुर्भाग्य ने उनका पीछा न छोड़ा। बाईस जनवरी को टोलीवालों ने छावनी पर हमला किया। १३० हिंदू मारे गए। पचास घायल हुए, पचास जन भगाए गए। उसके बाद ग्यारह सौ निर्वासितों को पाराचिनार से कोहाट भेजा गया। (छेदक १२ ए १५)

(पाराचिनार हत्याकाण्ड पाकिस्तान की उपेक्षा का परिणाम था, ऐसा 'हिंदुस्तान टाइम्स' ने अपने १८-१-१९४८ के अंक में लिखा है।)

युवतियों को भगाना और उनसे क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना यह मानव के इतिहास का एक नीचतम अध्याय है। स्त्रियों को खींचा जाता था, भगाया जाता था। उनसे बलात् संभोग किया जाता था। वे ऐसे दुर्व्यवहार की लक्ष्य थी। उन्हें एक पुरुष से दूसरे पुरुष को दिया जाता था। उनका व्यापार होता था। पशुओं जैसा उनका क्रय-विक्रय होता था। इतना होने के उपरान्त यदि कोई किसी स्त्री को छुड़ा ले तो वे अपने पर ढाए अत्याचारों का वर्णन करती थी जो हृदय को कँपानेवाला था। (छेदक १२ ए १६)

बलात्कार, अपहरण, लूटपाट, आग लगाना, हत्या, नरसंहार जैसे कृत्यों की वार्ताएँ पूर्वी पंजाब के लोगों तक पहुँच गई तब उसकी प्रतिक्रिया हुई। यह नहीं कहा जाएगा कि वह प्रतिक्रिया गौरव करने योग्य थी, किन्तु जनसाधारण सीमा पर स्थित संरक्षक दल का विश्वास नहीं कर पाते थे। अतः अपने वरिष्ठ नेतागण पर अपनी रक्षा के विश्वास रखने को उद्यत हुए। उस धारणा के पत्र पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा सरदार पटेल को आने लगे। कुछ पत्रों में अपनी पत्नी या अपने पिता या सम्बन्धी को बचाए जाने की माँग थी। हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री पर नीति का अवलंबन करने के आरोप लगानेवाले वैसे ही हिन्दुओं के प्रति सहानुभूति शून्यता बरती जाती है। ऐसे दोषारोपण करनेवाले पत्र आने लगे। उसी प्रकार पश्चिमी पंजाब में हिंदुओं ने प्राणों की आहुति दी। उसके प्रतिदान में आप स्वराज्य के फल चखते हैं, ऐसे आरोप भरे पत्र भी उन्हें आते थे। जिन सम्बन्धियों की खोज न होती थी उनके विषय में भी लिखा जाता था। (छेदक १२ ए १७)

प्रतिदिन, प्रति सप्ताह पश्चिमी पंजाब से हिन्दुओं के तांते और काफिले हिंदुस्तान में आते रहते थे। वे रेलगाड़ी से आए, लॉरियो से आए, विमानों से आए, बैलगाड़ियों से आए और पैदल भी आए। होते-होते दिसम्बर १९४७ तक चालीस लाख लोग हिंदुस्तान में आ धमके। उन्होंने अपने घर-बार पीछे छोड़ दिए। मूल्यवान वस्तुओं को छोड़ा। उन लोगों में से लगभग सभी शोकमग्न थे। उनके शरीर विकल थे, घायल थे और उनकी आत्मा भयानकता के धक्के से रक्तस्नात थीं! ऐसी अवस्था में नए घर में आ गए। यहाँ के शिबिरों में यातनाएँ अवश्य थी। उनके भविष्य में अनिश्चितता ही लटकती थी, किंतु इतना होते हुए भी उनके जीवन पर मँडराता धोखा टल गया था और स्त्रियों की सुरक्षा का भी जैसे ही उन्होंने हिन्दुस्तान की सीमा के भीतर पग रखा उनके श्रान्त और प्रायः नीरव और क्लान्त होंठों से विजय के उन्माद भरे उद्गारों को अभिव्यक्ति मिली। हम आश्रय पा सके, हम आपत्ति मुक्त हुए, इस भावना के वशीभूत हो वे रो पड़े। अपने सूखे होंठों से उन्होंने हिंदुस्तान की मानवंदना प्रदान की 'जयहिंद'। (छेदक १२ ए १८)

सिंध के सुलतानकोट में मुस्लिम लीग की एक परिषद् इकट्ठी हुई थी। वहाँ पर एक गीत गाया गया जिसमें पाकिस्तान निर्मिति में हाथ बँटानेवालों की मनोकामना प्रतिबिंबित होती है। (छेदक १२ ए १९ में गीत हैं)

पाकिस्तान में इस्लाम का स्वतंत्र केन्द्र निर्माण हो।
पाकिस्तान में विगर मुस्लिम लोगों का
मुँह तक देखने का दुर्भाग्य न हमें हो।
मुस्लिम राष्ट्र के घर तभी जगमगा उठेंगे
जब पाकिस्तान से मूर्ति पूजक काटों का
अस्तित्व मिट जाएगा।
हिंदुओं का कर्तृत्व है मात्र गुलाम रहना।
ऐसे गुलामों की राज्य शासन में भाग लेने का
अधिकार कैसे प्राप्त हो सकता है?
राज्य चलाने में उन्हें कभी भी यश नहीं मिला है।

जालंधर और लुधियाना के बीच, उसी प्रकार लुधियाना और राजपुरा के बीच गाड़ियों पर (हिंदुओं के) हमले हुए। कहा गया है कि, पटियाला के सिक्ख इसके लिए उत्तरदायी थे। उन दिनों के अधिकारियों ने उन हमलों को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु सिक्ख स्वय अपने को रोकें, उनके मन की अवस्था न थीं और इस बात का भी स्मरण रहे कि उस समय तक पश्चिमी पाकिस्तान में मुस्लिम क्रोध का लक्ष्य सिक्ख ही बने थे। सिक्खों का जीवन कहीं भी सुरक्षित नहीं था। वे जहाँ भी नज़र आए कत्ल कर दिए जाते थे। (छेदक १२ ए २०)

सिंध में भी इसी प्रकार की घटनाएँ हुईं। दिनांक ११ जनवरी १९४८ को एक घटना प्रमाण के रूप में (प्रमाण क्रमांक २६०) लिखी गई है। ८५० हिंदू निर्वासितों का एक जत्या दिनांक ९ जनवरी १९४८ को ओखा (सौराष्ट्र) पट्टन (बंदरगाह) पर उतरा। क्वेटा मेल से जो लोग क्वेटा से कराची गए उस टुकड़ी के वे लोग थे। उन्हें रास्ते में लूट लिया गया। हत्याओं जैसी घटनाओं का भी उन्होंने अनुभव किया। उसी प्रमाण में यह भी लिखा हुआ है कि सिक्खों सहित सिंधी हिंदुओं का भी किस प्रकार हत्याकाण्ड हुआ। स्त्रियों के अलंकार छीने गए। नथ जैसे अलंकार भी खींचे गए। (छेदक १२ ए २१)

दिनांक १५ जनवरी १९४८ का एक प्रपत्र (डाक्यूमेंट) प्रमाण क्र. २६० उद्धृत किया है। वह परिपत्रक (सरक्यूलर) है। यह पत्र बम्बई के गुप्तचर विभाग

के उपाधिकारी (डिप्टी इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस) की ओर से जिले के आरक्षी अधीक्षक (पुलिस सुपरिटेंडेंट) तथा संभागीय डी. आई. जी. को भेजा गया है। उसमें लिखा है कि दिनांक ६ जनवरी १९४८ को कराची में हिंदू और सिक्खों पर हमला हुआ और मुसलमानों ने उन पर कठोर अत्याचार किए। उन निर्वासितों का एक जत्था ८५० हिंदुओं का है। वह काठियावाड़ में ओखा पट्टन पर पहुँचा है, और भी निर्वासित आनेवाले हैं। उनमें सब स्तर के लोग हैं। उनमें महाराष्ट्रीय,पंजाबी, सिंधी, काठियावाड़ी,मारवाड़ी आदि सब प्रांतों के लोग हैं। ' निर्वासितों को चाहिए मुसलमानों का रक्त' ऐसा उस परिपत्रक में बताया गया है। (छेदक १२ ए २२)

न्यायमूर्ति कपूर ने लिए संदर्भ और उनका दिल्ली की उन दिनों की अवस्था का विवेचन पक्षपात करनेवाला है, एक पक्षीय है, इस प्रकार की आपत्ति कोई करे, यह असम्भव नहीं है। साधारणतः यह कहा जाता है कि, जिस प्रकार मुसलमानों ने हिंदुओं का संहार किया, उसी प्रकार हिंदुओं ने मुसलमानों का किया। अतः क्रूरता के लिए दोनों ही उत्तरदायी हैं। विभाजन के पाप पर परदा डालने का यह एक छद्मी युक्तिवाद है। ऐसे उभय पक्ष की क्रूरता के उपरान्त हिन्दुस्तान का अभंगत्व जैसे का तैसे ही रहा होता तो उस नरसंहार का लेन-देन हो गया और शेष लेन-देन कुछ न रहा ऐसा कहा जा सकता था, किन्तु विभाजन हाथ में लेने के लिए मुस्लिम लीग ने प्रकट रूप से नरसंहार और अत्याचार का कार्य चालू रखा था। प्रतिकार हुआ। वह विभाजन रोकने के लिए नहीं हुआ अपितु उर्वरित हिन्दुस्तान में ऐसे अत्याचारों को रोका जाए, इस उद्देश्य से।

दूसरी बात, विभाजन की प्रक्रिया में लोगों का स्थानान्तरण उसी प्रमाण में हुआ होता तो रक्तपात का दोष एक ही जाति विशेष पर न रखा जाता, परन्तु वैसा न हुआ। हमारे पास संख्या-बल और शौर्य होते हुए भी हमारे नेतागण विशिष्ट उपदेश के मोह-पाश में आबद्ध रहे और मुस्लिम आक्रमक रवैये के सामने उन्होंने सर झुकाया। हमारे नेतागण के व्यवहार की आड़ में मुस्लिम संक्रमण से दिल्ली पर जो आघात पहुँचे वही पृष्ठभूमि गांधी हत्या के विषय की खोज के संदर्भ में अभिप्रेत थी। इसलिए न्यायमूर्ति कपूर ने उस विषय से सम्बद्ध भाग अंकित किया है, ऐसा मेरा विचार है।

*

२ | निर्वासित और गांधीजी

अपने प्रतिवृत्त में न्यायमूर्ति कपूर ने गांधी-वध के कारणों का विवेचन किया है। (देखिए : खंड १, पृष्ठ २२६) वे लिखते हैं—

कई गवाहों का आग्रहपूर्वक प्रतिपादन था कि पचपन करोड़ रुपया पाकिस्तान को न देने का निर्णय भारत शासन ने ठुकराया,यह गांधी-वध का एक प्रमुख कारण था। मंत्रिमंडल ने यह निर्णय ९-१-४८ को लिया था। १३ जनवरी को गांधीजी ने अनशन प्रारम्भ किया। १४ जनवरी को मंत्रिमंडल की फिर मीटिंग हुई। उस मीटिंग में पचपन करोड़ रुपया न देने के निर्णय को भंग किया। गांधीजी ने उस खंडित निर्णय का 'अद्वितीय' (unique) संज्ञा से वर्णन किया। गांधीजी के एक शिष्य श्री प्यारेलाल ने 'महात्मा गांधी, दि लास्ट फेज' पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक के दूसरे खंड के पृष्ठ ७१९ पर वे लिखते हैं, 'निर्णय को इस प्रकार नष्ट करने के पीछे-मंत्रिमंडल का क्या हेतु था ?' गांधीजी ने स्वयं से ही प्रश्न पूछा 'निश्चय ही मेरा अनशन' (उन्होंने ही उत्तर दिया)। अनशन से पूरा दृष्टिकोण ही बदल गया। यदि मैं अनशन न करता तो वे अपनी योजना के अनुसार चलते। वे उतना ही करते जितना योजना के अनुसार था। ऐसी योजना के उपरान्त एक विधि अस्तित्व में आती है। इंग्लैंड में ऐसी विधि का सैकड़ों वर्षों में प्रयोग हुआ है। जहाँ सामान्य विधि अधूरी होती है वहाँ न्याय बुद्धि (equity) से काम होता है। (छेदक १२ आय १)

प्यारेलालजी ने अपनी पुस्तक के उस खंड के ७१८ पृष्ठ पर लिखा है कि- गांधीजी को पूछा गया, 'क्या आपके इस अनशन का गुजरात (पंजाब) स्थानक पर निर्वासितों के गाड़ी पर हमले पर, नर संहार पर, उसी प्रकार कराची के हत्याकांड पर प्रतिकूल परिणाम नहीं होगा ?' गांधीजी बोले-' मेरे मन में उस संभाव्य परिणाम का विचार आ गया था, परंतु ऐसा विचार कर मैं स्वयं को सत्यमार्ग से विचलित नहीं होने देना।' (छेदक १२ आय २)

पाकिस्तान को यह प्रदान होने के बाद श्री. न. वि. गाडगील (जो उस समय केन्द्रीय मंत्री थे) महाराष्ट्र में गए और उन्होंने वहाँ का दौरा किया। उन्होंने कहा कि गांधीजी की यह नीति वहाँ की अधिकांश जनता को अच्छी नहीं लगी। श्री. गाडगील लौटकर दिल्ली आए। जब वे गांधीजी से मिले, उन्होंने कहा, 'मैंने लोगों

को बताया कि हमने गांधीजी के प्राण पचपन करोड़ की तुच्छ राशि देकर मोल लिए।" गाडगीलजी ने कहा है, मुझे तनिक भी आभास नहीं था कि ये अमूल्य प्राण थोड़े ही दिनों में हमसे बिदा लेनेवाले हैं। उनके विचारों के अनुसार प्रार्थना स्थल पर हुआ विस्फोट उस पचपन करोड़ के प्रदान की प्रतिध्वनि थी।
(छेदक १२ आय ३)

श्री. राजगोपालाचारी ने जो माउण्टबेटन के पश्चात् राजप्रतिनिधि (व्हाइसराय) रहे, एक ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम है– ' गांधीजी की शिक्षा और उनका तत्त्वज्ञान' (Gandhi's Teachings and Philosophy) राजाजी ने लिखा है, ' सरदार पटेल के शब्द थे कि गांधीजी पचपन करोड़ को राशि पाकिस्तान को देने का हठ कर बैठे जिसका फल उन्हें उनके वध से मिला।'

' *गांधीजी ने पचपन करोड़ जैसी बड़ी राशि पाकिस्तान को प्रदान करने के* लिए आदेश दिया और वह भी देश की कैसी कठिन अवस्था में ? जब पाकिस्तान हिंदुस्तान के विरुद्ध सैनिकी हमलों के दुष्ट कार्यक्रम बनाने में व्यस्त था और उनको कार्यान्वित करने पर भी तुला हुआ था। उस समय उस घटना से हिंदुओं को जो मनःक्षोभ हुआ उसका पर्यवसान उनकी हत्या में हुआ; ऐसा सरदार पटेल का मत था। महाराष्ट्र के एक छोटे उग्र मत के सैनिकी दल को ऐसा लगा कि, गांधीजी देश विनाश के उच्चतम बिंदु पर हैं। उस दल की भावना हुई कि अब वह अपराध क्षम्य नहीं है। उस दल ने सोचा कि गांधीजी को इस भूतल से हटा दिया जाय, क्योंकि बिना उनकी हत्या के और कोई भी मार्ग उनके लिए परिणामकारक नही लगा।"
(छेदक १२ आय ४)

आगे चलकर राजाजी लिखते हैं, ' यह हत्या पचपन करोड़ के कारण हुई हो अथवा अन्य किसी भूतकालीन कारण से वह न हुई हो, 'गांधीजी का मत था कि भारत को वह उभयान्वय कार्यवहन में लाना चाहिए और हिन्दुस्तान शासन को स्वातंत्र्य के कालखंड का आरंभ अनुबंध तोड़ने से नही करना चाहिए।' उनकी दृष्टि से, यदि हिन्दुस्तान पचपन करोड़ न देता तो उसका नैतिक बल नष्ट होता। वह हृदय जो कि एक हिंदू की गोली से मरा, अन्य प्रकार से विदीर्ण होकर मर जाता। पचपन करोड़ दिए जाने से हिन्दुस्तान की नैतिक श्रेणी स्थिर रही, इतना ही नही वह अधिक ही ऊँची हुई। (छेदक १२ आय ६)

श्री. पुरुषोत्तमदास त्रिकमदास ने कपूर आयोग के सम्मुख गवाही दी थी। उन्होंने गांधी वध के कारण देते हुए बताया कि मुसलमानों का अनुनय अथवा संतुष्टीकरण, कलकत्ता और नोआखाली में उन्होंने (गांधीजी ने) किए हुए शांति प्रस्थापना के प्रयोग, पचपन करोड़ रुपया दिलाने का उनका हठ (जो उनके अनशन के दबाव से कार्यान्वित करना पड़ा) और हिन्दुसभा की गांधीजी के प्रति धारणा ये कारण गांधीवध के लिए पर्याप्त हुए। (छेदक ७१ आय ७)

पंजाब तथा पश्चिमी सीमाप्रांत से हिंदू और सिक्ख दिल्ली, पूर्वी पंजाब तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश में आए। उनकी धारणा थी कि वे अपनी मातृभूमि में आ रहे हैं, किन्तु उनके साथ जो व्यवहार किया गया उससे उन्हें लगा कि वे आगंतुक हैं, वे अनचाहे अतिथि हैं क्योंकि गांधीजी का मत था कि वे अपने-अपने प्रान्त में चले जाए। निम्न श्रेणी के नेता गांधीजी की हाँ में हाँ मिलाकर मानो ध्वनिक्षेपक अथवा लाउड्स्पीकर का काम करने लगे और गांधीजी के इस मत का प्रसार करने लगे। तब उन निर्वासितों को गांधीजी के प्रति तिरस्कार की भावना निर्माण हुई और वह तीव्रतर होने लगी। (छेदक १२ आय ८)

निर्वासितो की धारणाएँ ऐसी बनी थीं, किंतु सामान्य स्तर पर हिन्दुओं को और विशेषकर हिन्दुसभा के सदस्यों को गांधीजी के मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति पर बड़ी चिढ़ थी। उनके मत के अनुसार ऐसी नीति के कारण ही देश का विभाजन हुआ और केवल गांधीजी ही उस विभाजन के निर्माता थे। जिस हेतु गांधीजी ने अनशन किया था वह पचपन करोड़ के हेतु का और अनशन समाप्त करने के लिए लदी सात शर्तों का उन हिंदुसभाइयों ने कड़ा विरोध किया था वह ऐसी तीव्र मात्रा में कि हिन्दुसभा के एक नेता श्री आशुतोष लहिरी ने उन सात शर्तों पर हिंदुओं की ओर से हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।(छेदक १२ आय ९)

दिल्ली के निर्वासित जिनको हिंदुसभा का सहारा था, बड़े ही क्रुद्ध हुए थे। वे अपना क्रोध जुलुसो और नारों से प्रकट करते रहे, किन्तु उनका वह प्रतिकार मौलिक था। पूना में सावरकरवाद के अनुयायी महाराष्ट्रीय जन बहुत अधिक बौखला उठे। वे अगतिक-से हुए। वे सहनशक्ति की सीमा से परे हुए। गोपाल गोडसे ने अपनी गवाही में आयोग के सम्मुख कहा है कि गांधीजी को राजनीतिक मंच से बिना हटाए हिंदुओ का और हिंदुत्व का संरक्षण नहीं हो सकेगा, ऐसा उनका मत था और चूंकि वे हिंसा-अहिंसा के तत्वज्ञान में लिपटे न थे, इसलिए ऐसे राजनीतिक स्तर पर गांधीजी का वध करने का उन्होंने निश्चय किया था। उनको मारने का उन्होंने षड्यन्त्र रचा था। उनका पहला प्रयास विफल हुआ, किन्तु दूसरे में उन्हे यश प्राप्त हुआ। गोपाल गोडसे ने अपने वक्तव्य में यहाँ तक कहा है कि मान लो, नथूराम, आपटे और उनके साथी यदि पकड़े जाते तो भी गांधीजी बच नहीं सकते थे। इस कथन से ध्वनित होता है कि उनके गुट में गांधी-विरोधी वातावरण की मात्रा कितनी तीव्र थी और षड्यन्त्र की व्याप्ति कितनी गहन थी। (छेदक १२ आय १०)

श्री. जे. एन. साहनी ने कपूर आयोग से कहा कि,पंजाब के हिंदू और सिक्ख

निर्वासितों की गांधीजी पर भारी श्रद्धा थी। इतना ही नहीं, प्रत्युत वे उनकी पूजा करते थे, किंतु कुछ घटनाओं के कारण उनकी गांधीजी के प्रति श्रद्धा घट गई-

(१) हिंदुस्तान शासन ने मुसलमानों से आग्रहपूर्वक कहा कि आप हिंदुस्तान छोड़कर न जाएँ तथा जो मुसलमान हिंदुस्तान छोड़कर गए थे उनसे प्रार्थना की कि आप हिंदुस्तान लौटें। नीति की दृष्टि से यह बात अनुचित हो अथवा उचित। शायद वह उचित भी हो, तब भी निर्वासितों को यह बात अखरी, अनुचित लगी। उनका विचार था कि मुसलमानों ने जो घर अथवा दूकानें यहाँ पर छोड़ी हैं वे उनके पुनर्वसन के लिए उनके काम आ सकती हैं।

(२) पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपया देने के पीछे गांधीजी का अनशन और हठ था, इसलिए निर्वासितो को क्रोध आया। क्योंकि इस राशि का विनियोग काश्मीर में हमारे जो सैनिक सुरक्षा काम में व्यस्त थे उनको मरवाने के लिए होगा, यह उनका अनुमान था।

(३) हिंदुस्तान के मुसलमानों का झुकाव पाकिस्तान निर्मिति के प्रति था। वस्तुतः आज जो हिंदुस्तान कहा जाता है उसी भूखंड के मुसलमानों के मत से पाकिस्तान का निर्माण हुआ। हिंदू और सिक्खों में आत्मरक्षा की तथा अपने अधिकारो को स्थिर रखने की भावना उत्पन्न हुई थी। संगठन करने का विचार उनमें पनप गया और वह आंदोलन लगभग पूरे हिंदुस्तान में फैल गया। (छेदक १२ आय ११)

उसके उपरान्त गांधीजी के प्रार्थनोत्तर प्रवचन हिंदुओं को अरुचिकर थे। गांधीजी हठ से कहते थे– मुसलमानों को सुरक्षण दो, किंतु स्वातंत्र्य के लिए सर्वस्व न्यौछावर करनेवाले हिंदू - सिक्खो के संबंध में वे सहानुभूति नही दिखाते थे। वे हिंदू अपने घरबार से उजाड़े गए थे। वर्णन करने के परे क्रूर, बलात्कार, अपहरण, हत्या, लूटपाट, आग आदि संहार के सत्र के धक्के खाकर और जुलूम सहकर वे दिल्ली पहुँचे थे। उन्हें लगता था कि यह अपनी मातृभूमि है। हम यहाँ पर संरक्षण पा सकेंगे। उन्हें आशा थी कि यहाँ उनका पुनर्वसन होगा, किंतु उनकी आशाएँ चकनाचूर हुईं। आपके बच्चे, आपकी स्त्रियाँ, आप स्वयं भले भूखे रहें, ठंड में आकाश के नीचे सिकुड़ जाएँ, इस प्रकार का उपदेश वे सुनने को तैयार न थे। तिस पर, जिन्होंने उन पर यह दुरावस्था ढाई, उन मुसलमानों को हिंदुस्तान शासन का संरक्षण मिले, यह बात उन्हें बहुत चुभनेवाली और असहनीय हुई। इन भावनाओं का हिंदुसभा ने विशेष कर उनके उग्र - मतवादी घटकों ने पूरा लाभ उठाया। (छेदक १२ आय ११)

पश्चिमी पाकिस्तान से आए हुए हिंदू और सिक्खों की और विशेष कर हिंदुस्तान के सब हिंदुओं की, उसमें भी हिंदुसभा गुट की यह धारणा बनी कि:

कॉंग्रेस ने मुस्लिम तुष्टीकरण की जो नीति अपनाई उसका कुपरिणाम था पाकिस्तान के हिंदुओं का हत्यासत्र। इसी अनुनय से तथा तुष्टीकरण प्रवृत्ति से पाकिस्तान का निर्माण हुआ और वहाँ के हिंदुओं को बेघर होना पड़ा। न केवल गांधीजी के मुख से प्रत्युत छोटे–मोटे कॉंग्रेसी नेतागणों की सभाओं में भी इस अनुनय का उपक्रम चालू रहा। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने प्रचार से गांधीजी को भी पिछाड़ दिया। (छेदक १२ आय १३)

गांधीजी के चेलों ने गांधीजी को भ्रम में रखने के लिए बताया कि मुसलमानों पर बड़ा अत्याचार हो रहा है। उन्होंने गांधीजी की धारणा बनाई कि निर्वासितों के पास बड़ा धन है। वे सुख–चैन से रहते हैं और शासन ने दी हुई सुविधाओं का वे दुरुपयोग कर रहे हैं। ऐसे झूठे प्रचार से निर्वासित संतप्त हुए। वे इन लोगों से घृणा करने लगे। कारण, कॉंग्रेस के कुछ नेता मुसलमानों को प्रसन्न करने के प्रयास में व्यस्त थे। निर्वासित हिंदुओं की आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धता की ओर भी आनाकानी करते थे। (छेदक १२ आय १४)

न्यायमूर्ति कपूर का अभिप्राय है कि उपरिलिखित कारणों से ऐसा लगेगा कि निर्वासित गांधीजी के प्रति ऐसे रुष्ट हुए थे कि वे उनको मारना चाहते थे, परंतु वस्तुस्थिति वैसी नहीं थी। गांधीजी ने जो कुछ अच्छा कार्य किया था उससे तथा पंजाबी, हिंदू, सिक्ख और अन्य जनों के संकटकाल में गांधीजी ने जो हाथ दिया था उसके लिए गांधीजी के प्रति आदरभाव था। विभाजन से निर्वासित अन्यमनस्क हुए, किंतु आदर की मात्रा उससे अधिक थी। गवाह श्री. साहनी ने कहा है कि, निर्वासित नहीं चाहते कि गांधीजी को शारीरिक हानि पहुँचाई जाय, किंतु सावरकरवाद को पुरस्कृत करनेवाले लड़ाकू महाराष्ट्रीय गुट के लोग इतने अधिक संतप्त हुए थे कि जो महात्मा थे, जो तत्त्ववेत्ता थे, जो राजनीतिज्ञ थे, जो, बाएँ गाल पर थप्पड़ खाने पर दायाँ गाल सामने करनेवाले तत्त्व पर श्रद्धा रखनेवाले थे, उनकी गोली के शिकार हुए। (छेदक १२ आय १५)

न्यायमूर्ति कपूर का निष्कर्ष था कि संभवतः निर्वासित गांधीजी को शारीरिक हानि नहीं पहुँचाना चाहते थे, वस्तुस्थिति से सुसंगति रखनेवाला नहीं लगता है। कपूर प्रतिवृत्त में लिखित कुछ गवाहों का वक्तव्य देखिए :–

श्री. रंधावा एक गवाह थे। जिनका अनुक्रम १८ था। उन्होंने कहा कि अनशन के दिनों में निर्वासित गांधीजी के विरुद्ध प्रदर्शन करते थे और। ' मरता है तो मरने दो ' ऐसे नारे भी लगाते थे। (छेदक १२ ई २४ पृष्ठ १८७)

उपवास के दिनों में और आसपास के दिनों में भी परिस्थिति बड़ी ही खींचातानी की थी। सब स्थानों पर हल्लागुल्ला था। निर्वासित बड़े ही चिढ़े हुए थे।

जत्थों के रूप में बिड़ला भवन पर आते थे। 'गांधी को मरने दो' नारे लगाते थे। उसका कारण आंशिक रूप से गांधीजी का पचपन करोड़ रुपया देने का दुराग्रह ही था और आंशिक रूप में बजाय निर्वासितों को सहायता देने के वे मुसलमानों को ही सहायता देते थे, यह था। (छेदक १२ ई २५)

श्री. रंधावा उन दिनों दिल्ली के उपायुक्त (डिप्टी कमिश्नर) थे। न्याय-मूर्ति कपूर ने पृष्ठ १६६ पर (छेदक १२ सी २९) अभिप्राय दिया है कि, 'यह आयोग इस बात से सहमत नहीं है कि पं. नेहरू को तथा अन्य मंत्रियों को आने वाले निर्वासितों के प्रति सहानुभूति न थी। श्री. जे. एन. साहनी के कथन से नेहरू की मनःस्थिति प्रतिबिंबित होती है, किंतु शरणार्थी वैसा मानने को तैयार नहीं थे और गांधीजी जब अपने प्रार्थनोत्तर भाषण में सहानुभूति का अस्तित्व ही नहीं दिखाते थे तब निर्वासित क्रुद्ध हो उठते। चूंकि गांधीजी का अर्थ है कांग्रेस और कांग्रेस का अर्थ है गांधीजी, यही उनका समीकरण था। जब गांधीजी कहते तुम अपने घर पर लौट जाओ, निर्वासित और भी बौखलाते। वे वापस जाने को ज़रा भी तैयार न थे भले उसके लिए उन्हें कोई भी त्याग करना पड़े। वहाँ पर उनके साथ जिस प्रकार दुर्व्यवहार हुआ था उसका उन्होंने पूरा अनुभव किया था और यह भी संभावना न थी कि पाकिस्तानी अधिकारी और लोग उनसे कोई अच्छा व्यवहार करेंगे। मुजाहिद, रजाकार, खाकसार, लीग के कार्यकर्ता, वैसे ही वहाँ के अधिकारी निर्वासितों का सद्भावना से, प्रेमभाव से स्वागत करेंगे, यह अपेक्षा उन्होंने नहीं की थी और इसलिए उनका आग्रह था कि जैसे ये निर्वासित अपनी भूमि पर आए हैं, मुसलमानों को भी उनके लिए बनाए गए पाकिस्तान जाना चाहिए। इस आयोग का यह क्षेत्र नहीं है कि उपर्युक्त विचारधारा उचित है अथवा अनुचित इसका विचार करना, किन्तु निर्वासितों की ऐसी मनोधारणा थी। गांधीजी के अनशन से यह और धधक उठी। यही बात पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपयों का प्रदान करने से हुई। हिंदुओं की दृष्टि से यह कृत्य (पचपन करोड़ का प्रदान) एक क्रूर कृत्य था। कारण, वह धन हिन्दुस्तान के विरुद्ध लड़नेवाले शत्रु सैनिकों के काम आवेगा। ऐसी केवल शंका ही नहीं थी वरन् ऐसा निश्चित रूप में होनेवाला था। भारतीय सेना काश्मीर में भेजी गई थी, जो काश्मीर अपनी रक्षा करने में असमर्थ था, पाकिस्तानी सेना का व्यूह था कि काश्मीर की सुदर्शन भूमि को शस्त्रबल से हड़प लेना। उन्हें किसी प्रकार की रुकावट नहीं थी, सिवाय अपनी सेना के शौर्य के।

श्री. कपूर ने निर्वासितों की भावनाओं को ही चित्रित किया है। वे भावनाएँ गांधीजी के विरुद्ध थीं अथवा नहीं थीं, यह उद्धरण में ही स्पष्ट है।

श्री बृजकृष्ण चांदीवाला (साक्षी क्र. ११) के बयान का उल्लेख न्यायमूर्ति कपूर ने अपने प्रतिवृत्त (खंड १ पृष्ठ १४० छेदक १२ ए ३३) में किया है। न्यायमूर्ति कपूर के पहले इस आयोग का काम डॉ. गोपालस्वरूप पाठक जो भारत के उपराष्ट्रपति भी रहे हैं, संभाल रहे थे। उनके सम्मुख बयान देते समय श्री. चांदीवाला ने कहा कि, सितम्बर १९४७ में दिल्ली में हिंदू-मुस्लिम दंगे चालू थे और दिल्ली में कर्फ्यू लगा था। झगड़े में कई लोग मारे गए। चांदीवाला ने इस बात का समाचार गांधीजी को समय-समय पर दिया। उन्होंने ही गांधीजी को कलकत्ते से दिल्ली बुलाया। श्री. चांदीवाला के विचार से, यदि गांधी वहाँ न आते तो दिल्ली की गली-कूंचों पर उससे भी बड़ा नरसंहार होता। उनके आने से शान्ति प्रस्थापित हुई, किंतु पाकिस्तान से आए निर्वासित चिढ़े थे। एक समय जब गांधीजी किंग्जवे कॅम्प को भेंट देने गए, शरणार्थी उनके पास गए और उन्होंने गांधीजी पर संतापयुक्त शब्द बरसाए। धीरे-धीरे वह विरोध बढ़ता गया और गांधीजी को पत्र आने लगे-वे गालियों से, निंदात्मक शब्दों से और धमकियों से भरे थे। चांदीवाला वे पत्र पढ़ते थे। चांदीवाला ने एक बार निर्वासितों को गांधीजी से मिलाया। उस भेंट में निर्वासितों ने गांधीजी को अभद्र वाणी सुनाई। एक दिन बिड़ला भवन पर-जहाँ गांधीजी रहते थे, एक भारी जुलूस पहुँचा। उनका नारा था 'खून का बदला खून से लेंगे।' वह जुलूस रोकने के लिए बिड़ला भवन पर एक बड़ा आरक्षी दल खड़ा था। उस समय नेहरू गांधीजी से बातचीत कर रहे थे। वे उस समय बाहर आए और उन्होंने उस जुलूस को रोका। वे वैसा न करते तो गांधीजी के ऊपर जनता टूट पड़ती।

पृष्ठ १४१ पर छेदक १२ ए ३४ में १५ जनवरी १९४८ के टाइम्स में चौदह जनवरी का वृत्तान्त छपा है। कुछ लोग बिड़ला-भवन की ड्योढ़ी पर इकट्ठे हुए। उन्होंने नारे लगाए 'गांधीजी को मरने दो।' अंदर गांधीजी, पं. नेहरू, सरदार पटेल और मौलाना आजाद बातें कर रहे थे। जैसे ही 'गांधीजी को मरने दो' के नारे पं. नेहरू ने सुने, वे बाहर आए और वे उन प्रदर्शनकारियों पर चिल्लाए। 'तुम ऐसे शब्द मुंह से निकल ही कैसे सकते हो? पहले मुझे मारो।' उसके बाद प्रदर्शनकारी वहाँ से चले गए।

उपरिलिखित वृत्त से न्यायमूर्ति कपूर का निष्कर्ष है कि चांदीवाला के कथन में नारों की बात को संपुष्टि मिलती है, किन्तु पं. नेहरू न आते तो गांधीजी पर जनता हमला कर बैठती, इस बात की पुष्टि नहीं मिलती।

जो भी हो, निर्वासितों ने जो यातनाएँ भुगती उससे उन्हें हुई मनोव्यथा की अपेक्षा गांधीजी पर उसका प्रेम अधिक मात्रा में था, यह न्यायाधीश कपूर का तात्पर्य वस्तुस्थिति के विपरीत प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त मदनलाल ऐसा ही एक झुलसा हुआ निर्वासित था और वह प्रत्यक्ष रूप में इस षड्यन्त्र में था। यह

सत्य प्रमाण इस बात को पुष्ट करेगा कि निर्वासित अतिरेकी स्तर पर आ सकते थे या नहीं।

पाठक देखेंगे कि गांधी वध के जो कारण, न्यायाधीश कपूर ने दिए हैं वे नथूराम के दिए कारणों से मिलते-जुलते हैं। दिल्ली स्थित निर्वासितों की जो मनःस्थिति नथूराम ने देखी उसका, उसने दिया विवरण न्यायमूर्ति कपूर के किए हुए वर्णन से भिन्न नहीं है।

☆

३ | सरदार पटेल और ५५ करोड़

सरदार पटेल की सुपुत्री श्रीमती मणीबेन पटेल की साक्षी कपूर आयोग के सामने आई। श्रीमती मणीबेन की दैनन्दिनी दिनांक २५ जनवरी से प्रकट है कि दिनाक १३ जनवरी को सरदार पटेल ने श्री मथाई, चेट्टी, पं. नेहरू और गांधीजी *के साथ ५५ करोड़ की राशि के विषय में विचार-विमर्श किया था। गांधीजी* की आँखें भर आई थी और उनके शब्द कठोर थे। उसके बाद सरदार को दुःख हुआ। उनके मुंह से ऐसे शब्द निकले कि अब मैं इस शासन में नही रह सकूंगा। (पृ. १६२)

श्रीमती मणीबेन ने कहा कि मदनलाल का दिया हुआ वक्तव्य सरदार पटेल को दिखाया गया था (पृ. १८०)। बम के धमाके के बारे में जैसे-जैसे खोज होती थी, मेरे पिताजी को समाचार दिया जाता था। मुझे स्मरण नही है कि मेरे पिताजी ने उस विषय में उस खोज के उपक्रम में कौन से आदेश दिए थे। वे देश-रक्षा की दृष्टि से किसी को गिरफ्तार करने का आदेश तब तक नहीं देते थे, जब तक उनके पास वैसा कोई ठोस प्रमाण न हो। (**My father would not order the arrest of anybody unless he had positive proof that the arrest was for the protection of the country** (पृ. १७९)

'मुझे निश्चय ही स्मरण है कि गांधी वध के एक पखवारा पूर्व वृत्तपत्र के एक पूना के सम्पादक जिनके वृत्तपत्र से प्रतिभूति (जमानत) माँगी गई थी, मेरे पिताजी को प्रातःकाल पांच बजे मिलने आए थे। उस समय अँधेरा होने के कारण मैं उस व्यक्ति को पहचान न सकी, किन्तु मुझे स्मरण है कि उस व्यक्ति ने अपने वृत्तपत्र से माँगी प्रतिभूति के विषय में चर्चा की। उस व्यक्ति को यह भी शिकायत थी कि मोरारजी देसाई (तत्कालीन महाराष्ट्र के गृहमंत्री) उनसे अन्याय कर रहे हैं। (पृ. १७९)

नथूराम उन दिनों दिल्ली में थे। नाना आपटे भी वहीं थे। उनके वृत्तपत्र से एक के पीछे एक प्रतिभूतियाँ माँगी गई थी। श्री मोरारजी के विरुद्ध उनकी शिकायत कठोर थी। ये सब बातें श्रीमती मणीबेन पटेल की गवाही से मिलती-जुलती हैं, तो भी नथूराम या आपटे ने प्रस्तुत लेखक से कभी नहीं कहा था कि वे सरदार पटेल से मिले थे। इसलिए सरदार पटेल से नथूराम या आपटे मिले थे, यह बात उस प्रातःकाल के अन्धेरे मे मिले व्यक्ति के समान अंधेरे में ही रह ग। ई

श्री राजगोपालाचारी ने लिखी 'गांधीजीज् टीचिंग्ज एंड फिलासफी' इस पुस्तक का न्यायमूर्ति कपूर ने अपने प्रतिवृत्त के पृष्ठ १८५ पर उल्लेख किया है। राजगोपालाचारी ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २०-२१ पर लिखा है ' दि. ३० जनवरी १९४८ को गोडसे ने गांधीजी को मारा, उस समय सरदार पटेल को लगा कि एक ओर से पाकिस्तान हिन्दुस्तान के विरुद्ध दुष्ट सैनिकी व्यूह रचना मे व्यस्त है और दूसरी ओर गांधीजी पाकिस्तान को यह बड़ी धनराशि देने का हठ कर बैठे थे, इसलिए हिंदुओं को गांधीजी पर क्रोध आया और उसी क्रोध में गांधीजी का षड्यंत्र खड़ा हुआ। उस समय शत्रु को ५५ करोड़ रुपये देनेकी जो मूर्खता शासन ने की वह इस गुट को अक्षम्य लगी और गांधी विरोधी महाराष्ट्रीय लड़ाकू दल को ऐसा लगा कि गांधीजी ने इस देश को हानि पहुँचानेवाली जो बात की उसकी चरम सीमा हुई और इसलिए उन्होने मूढ सन्त को समाप्त करने की ठानी, क्योंकि उनके मत के अनुसार अन्य किसी मार्ग से उनको इस नेतृत्व से हटाया नहीं जा सकता था। उनका (गांधीजी का) प्रभाव इतना अधिक था और लोग भेडों की तरह उनका इतना आदर करते और उनका कहना सुनते कि सरदार पटेल के अनुसार, उन गुटवालों को ऐसा लगा कि गांधीजी के वध के सिवाय दूसरा कोई मार्ग नही बचा है

पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपये दिए जानेसे लोगों के मन में गांधी के प्रति कितना असन्तोष निर्माण हुआ था इसको सरदार पटेल जानते थे। उपरिलिखित छेदकों से यही प्रतीत होता है। (पृ. १८५ छेदक १२-ई-१२)

गांधी वध के पीछे नथूराम की जो विचार संगति थी वही कारण संगति वल्लभ-भाई ने राजाजी से तुरन्त कैसे प्रकट की इस रहस्य को प्रकट करने योग्य कोई प्रमाण प्ररतुत लेखक के पास नही है। हाँ, कुछ तर्क दिए जा सकते हैं, किन्तु पाठक जितना तर्क करेंगे उतना ही लेखक भी कर सकता है, उसके परे नहीं।

★

४

गांधी वध का पूर्वज्ञान और उदासीन नेतागण

श्री गोपाल गोडसे (प्रस्तुत लेखक), श्री विष्णु रामकृष्ण करकरे, श्री मदनलाल पाहवा, इन तीनोंको गांधी वध अभियोग में आजन्म कारावास हुआ था। वे तीनों बन्दीगृह से दिनांक १३-१०-१९६४ को मुक्त हुए। एक मास पश्चात् पूना के मित्रगणों ने उनकी मुक्तता के आनन्द के उपलक्ष्य में सत्यनारायण पूजा का आयोजन किया था। वह पूजा दि. १२-११-१९६४ को शनिवार पेठ के 'उद्यान कार्यालय' में सम्पन्न हुई थी।

उस समारोह में श्रीमान् गजानन विश्वनाथ केतकर ने कुछ विचार प्रदर्शित किये थे। श्री केतकर महाराष्ट्र के प्रसिद्ध पत्रकारों में से एक हैं। वे लोकमान्य तिलक के पोता हैं, और वे लोकमान्यजी के 'केसरी' वृत्तपत्र के कई वर्षों तक सम्पादक रहे।

अपने विचार प्रदर्शन में उन्होंने कहा था कि गांधीजीका वध टले इसलिए उन्होंने प्रयास किया था। उन्होंने शासनको भी चेतावनी दी थी। इस चेतावनी पर हिन्दू-विरोधी वृत्तपत्रों ने बड़ा ही कोलाहल मचाया था। शासन ने दस-बारह जनों को भारत प्रतिरक्षा नियम (D. I. R.) के अनुसार बन्दीगृह में बन्द किया था जो एक वर्ष के बाद छूटे।

शासन ने आयोग नियुक्त किया कि श्री केतकरजी के कथन के अनुसार किन-किन व्यक्तियों को इस बात का ज्ञान था तथा शासन ने क्या-क्या पग उठाये। कपूर आयोग को नियुक्ति का यही कारण था।

सत्यनारायण की घटना के पश्चात् श्री ग. वि. केतकर ने जो चेतावनी दी, उसपर बड़ा कोलाहल मचा। उस पर कपूर आयोग नियुक्त किया गया। अपने प्रतिवृत्त (रिपोर्ट) में न्यायाधीश कपूर ने इस बात की भी चर्चा की है कि गांधी वध का पूर्वज्ञान किन व्यक्तियों को था।

जब अभियोग चला उस समय प्रा. जे. सी. जैन ने न्यायाधीश आत्माचरण के सम्मुख सन् १९४८ में गवाही दी थी कि मदनलाल पाहवा ने उक्त षडयन्त्र

के बारेमें उनसे कुछ कहा था। न्यायाधीश कपूर के समक्ष भी श्री जैन की गवाही हुई है। प्रतिवृत्त खण्ड २, पृष्ठ १७७, छेदक २१ - २१७ पर उद्‌धृत है कि "इस गवाह के कथन के अनुसार किसी को भी यह इच्छा नही थी कि गांधीजी को बचावे। इस आयोग के निर्माण का खोज क्षेत्र सीमित है। इस सीमा में इस गवाही का यह भाग महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा, 'मेरी जितनी शक्ति थी मैंने लगा दी। मैंने बम्बई राज्य के मुख्य सचिव को बताया था। जयप्रकाशजी को बताया था और हॅरिस को भी। इससे अधिक मै क्या कर सकता था? मुझसे जो बन सका मैंने किया। इनमें से किसी ने भी कोई हलचल नहीं दिखायी, यह मेरा दोष नही है।"

प्रा० जैन ने प्रा० याज्ञिक को बताया था। श्री याज्ञिक रामनारायण रुइया महाशाला में एक प्राध्यापक है। उन्होने भी साक्षी दी है। उनको क्रम संख्या २९ है। जब प्रा० जैन ने श्री याज्ञिक को मदनलाल के कार्यक्रम के विषय में कहा तो याज्ञिक उस पर विश्वास करने को तैयार नही हुए। उन्होंने श्री जैन को उपदेश दिया कि वे शासन को उस विषय में सूचित करें।

न्यायमूर्ति श्री कपूर ने प्रतिवृत के पृष्ठ १७९ पर लिखा है, कि प्रा. जैन को गांधीजी के जीवन को खतरा है, इस बात का पूर्वज्ञान था। यह बात श्री जैन ने अपने मित्रो से कही थी, किंतु उन्होने इस बात पर गंभीर रूप में नहीं सोचा, परंतु इस आयोग का यह मत है कि श्री जैन को आरक्षी अधिकारी श्री नगरवाला या श्री भरूचा से मिलने में कुछ संकोच था तो उन्हें इस बात को मन्त्रियों को अथवा कांग्रेस के नेताओं को अथवा चीफ प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेट को बताना चाहिए था, वह उनका कर्तव्य था। (श्री कपूर का तात्पर्य है कि प्रार्थनास्थल पर बम का विस्फोट होने के पूर्व उन्हें इस बात की सूचना देनी चाहिए थी।)

प्रतिवृत्त खण्ड १, पृष्ठ २१० पर न्यायाधीश कपूर का सारांश है, "स्व० बाळूकाका कानिटकर, उस समय के शेतकरी कामकरी (कृषक, श्रमिक पक्ष) पक्ष के कार्यकर्ता श्री. र. के. खाडिलकर, संसद सदस्य स्व. केशवराव जेधे और श्री. ग. वि. केतकर आदि अपदाधिकारी व्यक्तियों को यह ज्ञात था कि पूना का वातावरण गांधीजी के विरुद्ध ओत-प्रोत था। वृत्तपत्रों का लेखन, सार्वजनिक व्यासपीठ के भाषण, व्यक्ति-व्यक्तियों के वार्तालाप इन सबमें कांग्रेस के वरिष्ठ नेता, विशेष कर म. गांधी, नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद के जीवन को हानि पहुँचाने के संकेतो की अभिव्यक्ति होती थी, इस बात का ज्ञान उपर्युक्त सज्जनों को था। इन व्यक्तियों में से स्व. बाळूकाका कानिटकर और भागवत ने ही केवल बम्बई के मुख्यमंत्री श्री खेर और उपप्रधान मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल को

सूचित किया था, किंतु उन्होंने आरक्षी अधिकारियों को नहीं बताया था।" न्यायाधीश कपूर आगे कहते हैं कि इस बात के तथ्य की छानबीन करने के लिए किसीने भी गुप्त विभाग से सम्पर्क नही किया, यह बात आश्चर्यकारक है।

श्री. न. वि. गाडगील की गवाही क्रमांक ६ है। श्री केशवराव जेधे ने गाडगील से जो बात कही थी उसको छोड़कर उन्होंने और कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। ऐसा न्यायमूर्ति प्रतिवृत्त खण्ड २, छेदक १२९-३० पर कहते हैं। पृ. १३० पर छेदक २१-३५ में लिखा है "श्री काका गाडगील तब केंद्रीय मंत्री थे। वे पूना के एक प्रमुख नागरिक थे। उन्होंने सन् १९६४ के 'धनुर्धारी' के दिपावली अंक में एक लेख लिखा है। उसमें वे कहते हैं कि "पंजाब और बंगाल के हिन्दुओं पर विभाजन के कारण जो आपत्ति आई उस कारण गांधीजी के विरुद्ध लोकमत क्रुद्ध होता था। पूना मे गांधीजी के विरुद्ध बड़ी कठोर भाषा का प्रयोग मुक्त कंठ से होता था। पूना के वृत्तपत्रों ने गांधीजी की आलोचना कर हिंसावाद का अप्रत्यक्ष रूप में वातावरण निर्माण किया था। कोई न कोई भयानक घटना होनेवाली है, इस प्रकार की किंवदन्तियाँ भी कान पर आती थीं। श्री बाळूकाका कानिटकर ने श्री बाळासाहेब खेर को एक गुप्त पत्र लिखा है, ऐसा सुनने में आता था। उस पत्र में श्री कानिटकर ने लिखा था कि गांधीजी के विरुद्ध कुछ षडयंत्र पक रहा है। सरदार पटेल कभी-कभी चिंता व्यक्त करते थे, किंतु उसकी ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान नही दिया जाता था। श्री नेहरू हिंदु नेतागणो के विरुद्ध आग बरसाते थे।" श्री गाडगील आगे लिखते हैं " निर्वासितों की भावना थी कि गांधीजी उनके लिए कुछ भी नहीं करते हैं, आपितु वे केवल मुसलमानों की सहायता करते हैं। क्योंकि अपने प्रार्थनोत्तर भाषण के पश्चात् गांधीजी केवल हिंदुओं के कृत्यों की आलोचना किया करते थे। बहुत सारे निर्वासितों का मन गांधीजी के इस बर्ताव से ऊब गया था। वे विमनस्क हुऐ थे। कुछ तो बड़े ही क्रुद्ध हुए थे। पचपन रु. करोड़ का प्रदान उनके लिए जले पर नमक जैसा सिद्ध हुआ था। निर्वासितों को लगा कि इस प्रदान का अर्थ है जिनकी हत्या हुई है उनकी ओर आनाकानी और जिन्होंने हत्या की है उनके घावों पर उपचार। गांधीजी जो भाषण करते थे और नेहरू हिंदुओं के विरुद्ध जो बोलते थे, उससे गांधीजी के विरुद्ध वातावरण दिन - प्रतिदिन बढ रहा था। "

स्व. श्री गाडगील को इस घटना का जो पूर्वज्ञान था उस विषय में न्यायाधीश कपूर ने कहा है कि श्री जेधे का कहना ठीक-ठीक क्या था, इसकी छानबीन गाडगील को करनी चाहिए थी। मदनलाल ने जो स्वीकारोक्ति (कन्फेशन) दी थी उसके अनुसार भी और उस दृष्टि से भी श्री गाडगील ने गहनता में जाने का प्रयास नहीं किया। उन्हें अपनी उदासीनता थोड़ी दूर रखनी चाहिए थी और अपनी विचक्षण बुद्धि काम में लानी चाहिए थी। (पृ० १३२)

इस 'पूर्वज्ञान प्रकरण'से ज्ञात होगा कि वातावरण ऐसी स्थिति में पहुँचा था कि कहीं न कहीं चिनगारी किसी भी समय सुलग सकती है ऐसा तर्क करने का पर्याप्त पूर्वज्ञान वरिष्ठों को था। किस स्थान पर उस संभाव्य चिंगारी का उद्रेक रोकना संभव होगा ? यह सोचना अशक्यमात्र था। इसीलिए प्रस्तुत लेखक ने अपनी गवाही में न्यायाधीश कपूर से कहा था कि यदि हम सब षडयंत्रकारी पकड़े जाते तो भी गांधीजी की हत्या टलना संभव नही दिखता था।

★

५ कश्मीर

श्री वी. पी. मेनन ने पुस्तक लिखी है ' दि स्टोरी ऑफ दि इंटिग्रेशन ऑफ दि इंडियन स्टेटस्' । एक परिच्छेद का सारांश उन्होंने दिया है :-"जो राष्ट्र अपने इतिहास से तथा अपने भूगोल से मुँह मोड़ता है उस राष्ट्र का विनाश अटल है।" (पृष्ठ ४१३) कश्मीर पर हमला हुआ था। कश्मीर के महाराज ने हिन्दुस्तान से सहायता की प्रार्थना की थी। हिन्दुस्तान में विलीन होने की लिखित स्वीकृति उन्होने दी थी। श्री मेनन ने सूचनात्मक सुझाव दिया था कि उस लेख को स्वीकार किया जाए। उनकी सूचना को विशेष महत्व था। सरदार वल्लभभाई पटेल उन दिनो गृहमन्त्री और उपप्रधान मंत्री थे। श्री मेनन वल्लभभाई के सचिव थे। रजवाड़ों के विलीनीकरण में उनका कार्य बड़ा ही अनमोल था। कश्मीर प्रश्न पर श्री मेनन ने जो सूचना हिन्दुस्तान शासन को दी थी उसके पीछे उनका विचार था, "जिरगेवालों का कश्मीर पर आज जो आक्रमण हुआ है उसका अर्थ है बचे हुए हिन्दुस्तान के अभंगत्व में भयानक संकट का प्रारंभ। मुहम्मद गोरी के समय से अर्थात् आठवी शताब्दी के पूर्व से वायव्य सीमा के उस पार से हिन्दुस्तान पर लगातार आक्रमण होते रहे। मुगलशासन के समय में इस क्रम में कुछ अपवाद था। मुहम्मद गजनी ने स्वयं सत्रह आक्रमण किए थे। और अब पाकिस्तान निर्मिति के लगभग छः सप्ताह के अन्दर वायव्य सीमा से लुटेरे जिरगेवाले हमला करने को स्वच्छन्द छोड़े गए थे। आज श्रीनगर तो कल दिल्ली।" इसलिऐ श्री मेनन का अभिप्राय था कि A nation that forgets its history or its geography does so at its peril."

हिन्दुस्तान का मस्तिष्क है कश्मीर। चौदहवीं शताब्दी तक वहाँ बुद्ध तथा अन्य हिन्दू राजाओं का राज चला। उनके कार्यकाल का वर्णन हम कल्हण के

राजतरंगिणी नामक संस्कृत पद्य ग्रन्थ से देख पाते हैं। डॉ० स्टेन (Sten) ने काश्मीर के इतिहास के विषय में लिखा है कि मुस्लिम आक्रमण कालखण्ड के पूर्व काल से भी यथाक्रम अविरत इतिहास लेखन यदि हिन्दुस्तान के किसी भूखंड में हुआ हो तो वह कश्मीर है। (1895 The Valley of Kashmir by Walter Lawren, London) कल्हण का इतिहास लेखन-कार्य पंडित जोनाराजा ने १५ वीं शताब्दी के प्रारंभ तक चालू रखा।

हिन्दू कालखंड में राज्य संपादन के साथ-साथ ही सुन्दर मन्दिर और सुदर्शन सार्वजनिक रचनाएँ खड़ी हुईं। अनंत नाग, व्रजबिहारा, पांडुपट्टण, शंकराचार्यपट्टण, मार्तंड आदि नगरों के अवशेष आज भी दृष्टिगोचर होते है। इससे यह सिद्ध होता है कि वहाँ पर वस्ती भी घनी होगी। हिन्दू राजाओं के छत्र में रही हिन्दु-प्रजा सुख समृद्धि में रहती होगी। जो नहर अथवा ताल दृष्टि में आते हैं उनसे लगता है कि नरेशों ने अपनी संपत्ति का विनियोग केवल मंदिर बनाने में नहीं लगाया था, अपितु खेती के विकास के लिए भी लगाया था।

मुस्लिम आक्रमणों ने कश्मीर को दासता का रूप दिया। विकसित वास्तुएँ ध्वस्त की गयी। हिन्दुओं का भ्रष्टीकरण हुआ। १५८७ में अकबर ने कश्मीर को मुगल साम्राज्य में विलीन किया। मुगलों ने वह स्थान लगभग दो सौ वर्षों तक अपना शीतवायुस्थान (हिल स्टेशन) बनाया।

धीरे-धीरे मुगल का चंगुल ढीला हुआ। अफगानिस्तान के अहमदशाह अब्दाली ने सन् १७५० के लगभग हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया तब कश्मीर उसने अपने पंजे में लिया। फिर लगभग ७० वर्ष या निश्चित गणना में सन १८१९ तक काश्मीर पर भिन्न-भिन्न पठान प्रशासक अधिकार जमाये बैठे थे।

मुस्लिमो की क्रूरता का वर्णन अनेक इतिहासकारों ने लिखा है। इस्लाम की वृद्धि किस प्रकार हुई इसका ज्ञान उससे होता है।

तेरहवी शताब्दी के आरंभ में तारतारों ने काश्मीर पर हमला किया। उस समय राजा के सेनापति ने स्वात के शाहमीर और तिब्बत के रायचन्द शाह को सहायता के लिए बुलाया। रायचन्द शाह बलवान बना। उसने सेनापति को मारा और उसकी लडकी कुटारानी से विवाह किया। राज्य सत्ता भी उसी ने अपने अधीन कर ली। भिन्न जातीय होनेके कारण उन दिनों की प्रथा के अनुसार हिन्दू धर्म में उसको आत्मीयता नहीं मिली, इसलिये उसने मुस्लिम धर्म ग्रहण किया और सदरुद्दीन नाम धारण किया।

सदरुद्दीन के मरने के पश्चात् स्वात के मीरशाह ने कश्मीर पर आक्रमण किया और वह राज्य पादाक्रांत किया। वही कश्मीर का पहला सुलतान था।

परम्परा के अनुसार सन् १३९४ में सिकन्दर नामक सुलतान गद्दी पर आया। वह न केवल मूर्ति पूजकों का द्वेषी था अपितु इस्लाम धर्म का प्रसार करने के लिए उसने बड़े क्रूर उपायों का अवलम्बन किया। हिन्दुओं के लिए उसने तीन पर्याय रखे। (१) धर्मान्तर करें अर्थात् इस्लामी बनें, (२) देशत्याग करें, या (३) मृत्यु स्वीकार करें। जिन्हों ने इस्लाम को नहीं अपनाया, या देशान्तर भी नहीं किया जैसे यज्ञोपवीतधारी हिन्दू अथवा पण्डितों को उसने कितनी संख्या में मारा इसका उल्लेख लॉरेन्स ने अपने ग्रन्थ में किया है। एक, दो, तीन ऐसी संख्या में गणना करना सम्भव न होगा इसलिए उसने एक परिमाण निश्चित किया। मारने के बाद हिन्दुओं के यज्ञोपवीत इकट्ठे किए। उनकी पोटलियाँ बाँधी। उनका भार सात मन हुआ। एकएक अंक लेकर उस पर भी शून्य बढाना और वह लम्बी ही लम्बी संख्या स्मरण रखना कठिन तो है ही। उससे यह गणन पद्धति कितनी सुलभ है! उन यज्ञोपवीतों को जलाया गया। हिन्दू शास्त्रों के विद्याभ्यासों के ग्रंथ जो पीढ़ियों से सुरक्षित रखे गए थे सुलतान ने ढल सरोवर में डुबो दिऐ। विध्वंस को धर्मकृत्य मानकर, यवन संस्कृति बढ़ती गई।

पठानों के राज्यकाल में ऐसे ही, वरन् इससे भी क्रूरतर क्रम चालू रहे। आजादखान नामक प्रशासक का एक ही स्वभाव था कि ब्राह्मणों को जोडी-जोड़ी से घास के थैले में बन्द कर ढल सरोवर में डुबाना। 'जजिया' कर उसने फिर से चालू किया। प्रशासक मीर हजर ने आजादखान की पद्धति में एक संशोधन किया। ब्राह्मणों को डुबोने के लिए उसने बोरी अथवा घास के थैले के स्थान पर चमड़े के थैले का प्रयोग किया। शियापंथीय मुसलमानों पर भी उसने ऐसे ही अत्याचार ढाये। प्रशासक महमदखान स्त्रियों पर बलात्कार करने के लिए कुप्रसिद्ध हुआ। अपनी लड़कियों को उस भय से बचाने के लिए लोग स्त्रियों के सिर मुडा देते थे तथा उनका सौंदर्य छिपाने के लिए उनकी नाक काटते थे। ऐसे भयानक अत्याचारो के पंजे में काश्मीर फँसा रहा। जो हिन्दू वहाँ बचे वे काश्मीर पर हिन्दुओं का पुन: अधिकार हुआ, इसी कारण से बचे।

महाराजा रणजितसिंह शूर सिख राजा ने सन् १८१९ में मुसलमानों के चंगुल से जैसे पंजाब मुक्त किया उसी प्रकार काश्मीर भी मुक्त किया गया। सन् १८४६ तक काश्मीर सिक्ख राजाओं के अथवा उनके प्रशासकों के हाथ में रहा।

काश्मीर का जम्मू भूखंड सन् १७५० के पश्चात् रणजीतदेव नामक राजपूत वंशीय डोगरा राजा के हाथ में था। सन् १७८० में राणा रणजीतदेव की मृत्यु हुई। गद्दी के लिए झगड़े हो गए। तीन पीढियाँ बीत गई थीं। रणजीतदेव के वंश के तीन युवक गुलाबसिंह, ध्यानसिंह और सुचेतसिंह, महाराजा रणजीतसिंह

की सेवा में सेनापति के नाते रहे। रणजीतसिंह ने उनकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप सन् १८१८ में गुलाबसिंह को जम्मू सौंप दिया। ध्यानसिंह को चित्रल और पूंछ पर अधिकारपद दिया और सुचेतसिंह को रामनगर भाग का राजा बनाया। आगे चलकर ध्यानसिंह और सुचेतसिंह युद्ध में मारे गए। गुलाबसिंह ही अलिखित रूप में सब भागों का राजा बना।

सन् १८४६ में अंग्रेज और सिख इनके बीच युद्ध की परिसमाप्ति हुई। अंग्रेजों को विजय मिली थी। उन्होंने पंजाब के सिख सत्ताधारियों से एक करोड़ रुपए और पंजाब के बड़े भूभाग की मांग की। राजा ने व्यास नदी और सिंधु नदी के बीच का भाग स्वाधीन करने की सिद्धता दिखायी, क्योंकि एक करोड रुपया देना असंभव था। उस समय का गवर्नर जनरल हार्डिंग्ज था। उसको यह सौदा ठीक न लगा, क्योंकि उसके विचार से पर्वतमय प्रदेश के संरक्षण मे ध्यान देना लाभप्रद नही था, वरन् हानिप्रद था।

गुलाबसिंह एक करोड़ रुपया देने के लिए प्रस्तुत हुआ। उसका अनुबंध था कि जम्मू और काश्मीर भाग स्वतंत्र रूप से उसके हाथ रहे। अंग्रेजो ने अनुमति दी। वह संधि-पत्र १६ मार्च १८४६ को अमृतसर में सम्पन्न हुआ। इसप्रकार निकटस्थ भूतकाल में जम्मू और काश्मीर प्रांत का निर्माण हुआ।

जम्मू प्रदेश काश्मीर के दक्षिण में है। पूर्व में लद्दाख है। उत्तर में बाल्टि-स्थान है। उसकी परली ओर हुआ और नागीर के प्रदेश हैं। पश्चिम में गिलगिट, मुजफ्फराबाद, रैसों, पूंछ और मीरपुरा है। क्षेत्रफल ८४,४७१ वर्गमील है। सन् १९५१ में इस प्रांत की जनसंख्या ४३,३७,००० (तैंतालीस लाख सैंतीस हजार थी)।

जैसे पहले बताया है, चौदहवी शताब्दी में हुए मुस्लिम आक्रमणों के पश्चात् जनसंख्या मुसलमान बनती गई। (डेंजर इन काश्मीर : जोसेफ कारवेल पृ० ११) स्त्रियों को भगाना तथा भ्रष्ट करना अनेक शताब्दियों तक चालू रहा। इसलिए, स्वराज्य मिलते समय यह प्रांत यद्यपि हिंदू राजाओं के हाथ था तो भी राष्ट्रीयत्व स्थिर रखने के लिए संस्कृति की जो नीव आवश्यक होती है वही अस्तव्यस्त और ध्वस्त हुई था। सन् १९५१ की जनगणना में मुसलमान ७७ प्रतिशत थे।

संस्कृति की ध्वस्त नीव फिर से संभाली जाए, हिन्दू धर्म की पुनः प्रस्थापना हो, इस हेतु राजा ने १६ वीं शताब्दि के मध्य में संस्कृतीकरण का और शुद्धी-करण का प्रयास किया, किन्तु काशी के पंडितो ने उसका विरोध किया। कार्वेल ने इस घटना का उल्लेख अपनी " डेंजर इन काश्मीर " पुस्तक के पृष्ठ १५ पर किया है।

श्री बालशास्त्री हरदास ने डॉ. मुंजे का चरित्र लिखा है उसके खंड १, पृ० ५१ पर इसका विवरण दिया है।

कई वर्ष हम पठान और दूसरे परकीय और मुसलमानी राज में पीसे गए। छल के मारे हम मुसलमान बनें। हमें हिंदु धर्म में आना है, आज हिन्दूधर्म के राजा काश्मीर पर राज कर रहे हैं। हमें हिन्दूधर्म में सुख से जीवन–यापन करने की अनुज्ञा हो। आप जो आज्ञा करेंगे वह प्रायश्चित कर हम हिंदु होंगे। इस प्रकार की लिखित याचिका मुसलमान प्रमुखों ने राजा को दी। कुटुंब के कुटुंब हिंदु धर्म में प्रवेश करने के लिए उद्यत थे।

राजा ने काशी के पंडितों से इस धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने अनुकूल उत्तर नहीं दिया। फिर राजा ने शुद्धि कार्य का प्रबन्ध किया। उसने घोषित किया कि मैं एक यज्ञ करूँगा। हिंदु होने वाले प्रजाजनों को शुद्ध करूँगा। राजा के नाते मेरा यह अधिकार है।

अब राजपुरोहित रोड़ा बने। उन्होंने राजा को कैंची में पकड़ा। उन्होंने राजा से कहा, ' यदि आप यह अधर्म करेंगे तो हम प्राण त्याग करेंगे। " उन्होने सचमुच वितस्ता नदी में (झेलम नदी में) नाव छोड़ दी और प्रवाह में कूद पड़े। (वितस्ता यह झेलम नदी का वेदकालीन प्रचलित नाम है।)

राजा ने उनको नदी से बाहर निकाला और यज्ञ स्थगित किया। काश्मीर के वे नागरिक मुसलमान ही रह गए।

श्रुति स्मृति पुराणोक्त शब्दों के कभी भी व्यवहार में न आने के कारण उन तथा–कथित विद्वानों का वह निर्णय राष्ट्र और धर्म के लिए हानिप्रद सिद्ध हुआ। यहाँ पर भी श्री मेनन के शब्दों का स्मरण करवाना उचित ही होगा। " अपना इतिहास अथवा भूगोल भूलनेवाले राष्ट्र का विनाश होता है। " प्रबोधनकार श्री ठाकरे ने १९२८ में लिखी पुस्तक में कुछ उदाहरण दिए हैं। अलाउद्दीन खिलजी का सेनापति और हिन्दुओं को ध्वस्त करने वाला मलिक काफूर मूलत: राजपूत वंश का था। उन्होंने इस प्रकार के कई उदाहरण दिए हैं।

मुस्लिम प्रणाली के संस्कार इस भ्रष्ट सतति पर किए गए। वे लोग हिंदु प्रेमी न रहे। न हिन्दू प्रेम और न मुस्लिम प्रेम, ऐसी भी उनकी स्थिति नहीं रही। अथवा हिन्दुओं पर भी प्रेम और मुसलमानों पर भी प्रेम, ऐसे भी वे नहीं रहे। आज की परिभाषा में वे ' सैक्यूलर ' नहीं हुए। कुराणोक्त के अनुसार इस्लाम का प्रसार करने के लिए मात्र हिन्दुओं के हत्याकाण्ड से लेकर स्त्रियों को भगाने तक के सब अस्त्रों का अवलंबन हुआ। यहाँ मुस्लिम राष्ट्र निर्माण करने के लिए उन्होंने अपने खड्ग का प्रयोग किया। धर्मान्तर राष्ट्रान्तर सिद्ध हुआ। वस्त्र में लिपटी पोथियों के सूत्र में फँसे हुए अपने तथाकथित धर्ममार्तण्ड अपना इतिहास भूल बैठे, भूगोल खो बैठे और शुद्धि कार्य का विरोध कर उन्होंने भावी विनाश का मार्ग प्रशस्त किया।

सन् १८५७ में गुलाबसिंह का देहान्त हुआ। उनके पुत्र हरीसिंह १८८५ तक गद्दी पर रहे। अनके पश्चात् प्रतापसिंह १९१५ तक राज करते रहे। १९१५ से महाराज हरिसिंह ने गद्दी सँभाली।

हिन्दुस्तान की अंतरराष्ट्रीय सीमा की दृष्टि से भी काश्मीर का बड़ा महत्व है। उसकी सीमा पूर्व में तिब्बत, ईशान्य में (पूर्व पश्चिम कोण) चीन के लिचीयांग भूखंड से जुड़ी है। वायव्य में (दक्षिण पश्चिम कोण) अफगानिस्तान से सटी है। वाखान यह अफगानिस्तान का भूभाग गिरगिट के उत्तर में है। मिताका घाटी से (दो पर्वतों के बीच का मार्ग : घाटी) जाने वाले गिलगिट खाशगार मार्ग के पश्चिम रूस की ओर तुर्कस्थान पडता है।

राजा हिन्दू था। मुसलमानों का क्रूर आक्रमण बिना रोक-टोक न हो इसलिए राजा ने पूर्ण सतर्कता बरती थी। सेना के महत्व के स्थान और पद उसने हिंदुओं के हाथ में रखे थे। इस्लाम के नाम से राजनिष्ठा का कोई मूल्य नहीं रहता, वह ठुकराई जाती है। इसके उदाहरण श्री. वी. पी. मेनन की पुस्तक से मिलते हैं। पृष्ठ ३९६ पर दी हुई घटना का उल्लेख यहाँ पर स्थलोचित होगा।

पाकिस्तान निर्मिति के लगभग दो मास बाद अर्थात् २२-१०-१९४७ को पाकिस्तान ने जिरगेवालों को आगे कर कश्मीर पर धावा किया था। कश्मीर की अपनी भी सेना थी। वह मुजफ्फराबाद में इकट्ठी थी। लेफ्टिनेंट कर्नल नारायण सिंह उस वाहिनी का (बटालियन का) सेनापति था।

सेना में मुसलमान भी थे और डोगरा भी। दोनों का वेतन काश्मीरी शासन देता था। किन्तु 'हमारा अलग, स्वतंत्र राष्ट्र है' यह भावना मुसलमानों में उनके नेताओं ने फैलाई थी और अनुयायियों ने उसे स्वीकार किया था।

जैसे ही हमला हुआ इस वाहिनी के मुसलमान सैनिक शस्त्रों के सहित भाग गए। वे कहाँ गये? टोलीवालों को जा मिलने के लिए उन्होंने टोलीवालों को स्थलों का, व्यक्तियों का भेद दिया। टोलीवालों का मार्गदर्शन किया और जाते-जाते उन्होंने वाहिनीप्रमुख को तथा उसके उपप्रमुख (अड्ज्यूटन्ट) को मार डाला।

मुस्लीम समाज किस आक्रमक पैंत्रे में है, इस बात से अनभिज्ञ कर, अथवा उस तथ्य को लोगों से छुपाये रखकर शीर्ष भारतीय कांग्रेसी नेताओं ने जनता को हिन्दू-मुस्लिम एकता के जंजाल में डुबोये रखा था। काश्मीर के हिन्दू सेनाधिकारियों पर भी उस झूठे प्रचार का प्रभाव हुआ था, ऐसा लगता था। आक्रमण का सामना करना था। आक्रमण मुसलमानों का था। वह धर्म के नाम पर था। इस्लाम के नाम पर था। जिहाद के रूप में था। ऐसी अवस्था में काश्मीर के महाराजा ने लेफ्टनंट कर्नेल नारायणसिंह से पूछा था, "सेनापति! आपकी वाहिनी में

सत्तांतरण के पूर्व दो महीनों से मेजर जनरल जनकसिंह काश्मीर के मुख्य मन्त्री थे। उन्होंने महाराज की ओरसे हिन्दुस्थान और पकिस्तान से 'यथास्थित अनुबन्ध' (Standstill Agreement) किया। उसपर विचार करने के लिये हिन्दुस्ताननें कुछ समय लिया।

अनुबन्ध के अनुसार उन दोनों राज्यों में काश्मीर से व्यापारिक सम्बन्ध चालू रखना था। फिर पाकिस्तान ने रुकावट डाली। गाड़ियों की यातायात में व्यवधान डाला। काश्मीर की साढ़े चारसो मील सीमा से टोलीवाले और सैनिक काश्मीर में घुसे। लूटमार चालू की। संहार सत्र का प्रारंभ किया।

श्री मेहरचन्द महाजन तब काश्मीर के मुख्यमन्त्री बने। बाद में वे हिंदुस्तान के सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख न्यायमूर्ति बने।

महाराज ने दि०१५-१०-१९४७ को ब्रिटिश मुख्यप्रधान से कहा कि पाकिस्तान ने यथास्थित अनुबंध सन्धि का उल्लंघन किया है। गुरुदासपुर, गिलगिट प्रदेश में उनकी चढ़ाई चालू हुई है। पूंछ भाग में हमले चालू हुए हैं। पाकिस्तान को ब्रिटिश मुख्यमन्त्री समझावें। इस प्रकार का आशय महाजन के पत्रमें था।

पत्रका उत्तर नही मिला।

दि० १८-१०-४७ को महाराज ने हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबैटन और पाकिस्तान के गवर्नर जनरल जिन्ना को एक विशेष पत्र लिखा।

जिन्ना ने उत्तर लिखा। निषेध पत्र की भाषा ही औद्धत्यपूर्ण है यह उसकी शिकायत थी। बात तो सच थी। पाकिस्तान को आक्रमण करने का अधिकार प्राप्त था। उस आक्रमण से जो व्रण हुए उनके दुःख की अभिव्यक्ति का काश्मीर के महाराज को अधिकार न था।

"हम आह भी करते हैं तो होते हैं बदनाम।
वे कत्ल भी करते हैं, तो चर्चा नही होती॥"

जिन्ना ने महाराजके पत्रका उत्तर दिया था। उसमें लिखा था कि पूर्वी पंजाब में अशान्त वातावरण यातायात में बाधा डालता है और कोयला उपलब्ध नही होता। व्यापारिक सम्बन्धों में रुकावट आने के ऐसे कारण दिए।

किन्तु तीन चार दिनों में ही पाकिस्तान ने काश्मीरपर सर्वव्यापक आक्रमण किया। अफ्रीदी, वझीरी, महसूद, पठाण आदि नामधारी टोलीवालों के दलों का नेतृत्व छुट्टी पर गये पाकिस्तानी सेनाधिकारी किया करते थे।

गढ़ी और डोमेल स्थानों को उध्वस्त कर टोलीवाले मुजफ्फराबाद पहुँचे। लै० कर्नल नारायणसिंह के मुसलमान सैनिक पाकिस्तानियों से जा मिले, इस बात का उल्लेख पहले आ ही चुका है। मुजफ्फराबाद पर शत्रु का कब्जा हुआ।

बारामूला की दिशा में आक्रमण बढ़ने लगे। रास्तेमें उन्होंने उरी हस्तगत किया। काश्मीर राज्य की सेवामें से मुसलमान सैनिक पाकिस्तानियोंको मिलने के लिए भाग गये थे। ब्रिगेडियर राजेन्द्रसिंह उरीमें शत्रु का सामना कर रहे थे। उनके पास केवल २५० सैनिक थे, किन्तु वे बड़ी शूरता से लड़े। दो दिन तक वे लड़ते रहे। वे सबके सब मारे गये। उसके बाद ही शत्रु को उरी पर कब्जा मिला।

टोलीवालों ने २४ अक्तूबर को माहुरा विद्युत केन्द्र हस्तगत किया। श्रीनगर उस पर अवलंबित था, क्योंकि वहाँ बिजली का केन्द्र था। माहुरा शत्रु के हाथ आते आते ही पूरा श्रीनगर अंधियारे में डूब गया। दिनांक २६ अक्तूबर को ईद थी। टोलीवालों ने घोषणा की, कि ईद श्रीनगर की मसजिद में मनाएँगे।

२४ अक्तूबर को काश्मीरके महाराज ने हिंदुस्तान से सहायता की प्रार्थना की। दिनांक २५ को हिंदुस्तान शासन सुरक्षा समिति की गोष्ठी हुई। माउंट बेटन अध्यक्ष थे।

काश्मीर को सहायता देने के प्रश्न पर विचार विमर्श हुआ। अधिकारियों ने दिल्ली से श्रीनगर और श्रीनगर से दिल्ली उड़ान भरी। राजनैतिक दृष्टि से काश्मीर हिंदुस्तान में विलीन होने के पश्चात् ही सहायता दी जाने की संभावना थी।

महाराज ने अपनी विलीनीकरण याचिका में लिखा था कि शेख अब्दुल्ला को काश्मीर का शासन बनाने के लिए आव्हान करने की मेरी इच्छा है। महाराज का यह निर्णय स्वयंस्फूर्त था अथवा हिन्दुस्तान की ओर से सहायता प्राप्त हो, इसलिए वह हिंदुस्तान पर दबाव था, यह कहीं स्पष्ट नहीं था किंतु कारवेल ने अपने ग्रन्थ में (पृ० ८५) एक शंका प्रकट की है कि हिंदुस्तान की ओर से ऐसा दबाव होगा। श्री होरीलाल सक्सेना ने तो अपनी पुस्तक के आठवें प्रास्ताविक पृष्ठ पर स्पष्ट रूप में लिखा है कि हिन्दुस्तान शासन ने 'यथास्थित' अनुबंध को तभी स्वीकार किया जब नॅशनल कान्फेंस के नेता शेख अब्दुल्ला को काश्मीर शासन ने मुक्त किया। अर्थात् हिंदुस्तान शासन ने सैनिकी सहायता देने का तभी निश्चय किया जब काश्मीर शासन ने शेख अब्दुल्ला को शासन बनाने के लिए निमंत्रित करना स्वीकार किया। इस वस्तुस्थिति के लिए और कहीं प्रमाण खोजने की आवश्यकता न पड़ेगी।

काश्मीर का विलिनीकरण स्वीकृत किया गया। उसके अनुसार भारतीय शासन ने सेना भेजने का प्रबंध किया। उसमें अनुबंध (शर्त) यह था कि टोलीवाले आक्रमक जैसे ही काश्मीर से बाहर भगा दिए जाएँगे, काश्मीर जनमत के अनुसार कहीं भी सम्मिलित होने के लिए अथवा अपना भाग्य सम्बद्ध करने के लिए मुक्त रहेगा। शेख अब्दुल्ला ने उन दिनों अपने परिवारीय जन इंदौर में अपने साले के यहाँ

सुरक्षितता के लिए रखे थे और वह स्वयं भी श्रीनगर में नहीं था (The Iron Curtain in Kashmir ले० होरीलाल सक्सेना पृष्ठ २५)। उसने तत्कालीन मंत्रिमंडल गठन किया।

हिंदुस्तान ने इस बातकी अनुमति दी थी कि काश्मीर का भवितव्य काश्मीर की जनता निश्चित करेगी। क्या यहाँ पर इतिहास का स्मरण रहा अथवा विस्मरण हुआ ? नींव यह पकड़ी गई कि वहाँ मुसलमान बहुसंख्या में थे इसलिए उनको उतना छुटकारा होना चाहिये। क्या यह इतिहास नहीं था कि मुसलमानों के आक्रमण के कारण ही मूलत: हिंदू प्रांत कई शतकों तक दासता में रहा। हमलावर काश्मीर से बाहर जाएँ। इसलिए हमारी सेना बलिदान करे और फिर वहाँ के मुसलमानों को संतुष्ट करने के लिए उनको बताया जाए कि अब आप संकटमुक्त हैं; जहाँ इच्छा हो वहाँ विलीन हो जाइए। वहाँ के अल्पसंख्यक हिंदुओं का भवितव्य भी उन मुसलमानों के पल्ले बाँधना ! फिर यह परिश्रम किसलिए ? सैनिकों की बलि देने की उदारता किसलिए ? श्री० वी० पी० मेनन ने हैदराबाद अध्याय में एक वाक्य लिखा है वह यहाँ पर स्थलोचित होगा। "It is axiomatic that no nation can afford to be generous at the cost of its integrity and India had no reason to be afraid of her own shadow." अर्थात् "यह बात स्वयं सिद्ध है कि अपनी एकात्मकता खोकर उदार होना किसी भी देश के लिए व्यवहारहीनता है। हिंदुस्तान को तो अपनी ही परछाईं से घबराने की कोई आवश्यकता न थी।"

श्री वी० पी० मेनन ने इसका समर्थन किया है कि हमने कश्मीर का आत्म-निर्णय का मार्ग खुला रखा। अपनी पुस्तक के पृ० ४१३ पर वे लिखते हैं कि "कश्मीर के प्रश्न में हमें भूमिविस्तार की अभिलाषा नहीं थी। यदि टोली वाले हमला न करते तो हिंदुस्तान शासन हस्तक्षेप न करता। माउंट बेटन इंग्लैंड लौटे थे। उसके बाद उन्होंने यह भी कहा था कि काश्मीर के महाराज यदि निर्णय करते कि पाकिस्तान में विलीन होना है तो भी वैसा करने की उन्हें पूर्ण रूप से स्वतंत्रता थी। यह बात हिंदुस्तान शासन की ओर से काश्मीर के महाराज को अधिकृतता से कही गई थी।"

निष्कर्षत: काश्मीर हिंदुस्तान का ही भू-भाग है, ऐसा कहना भूमिविस्तार की अभिलाषा धरने जैसा है। ऐसी धारणा वी० पी० मेनन जैसे कर्तृत्वशाली राजनीतिज्ञ ने भी दिखाई है। फिर उनके मत के अनुसार हिंदुस्तान का भूगोल कहाँ से प्रारम्भ होता है कि जो हमें भूलना नहीं चाहिए ऐसा उनका आग्रह है ? अथवा जो भूगोल भूलने से देश का सर्वनाश होता है ऐसा उनका अभिप्राय है ? मेनन कहते हैं कि टोलीवालों का आज काश्मीर पर हमला प्रारम्भ के महमद गजनी का सा होगा।

यह हमला दिल्ली पर कल के आक्रमण की प्रस्तावना होगी। इनका सीधा अर्थ यह होता है कि ऐसा आक्रमण जहाँ का तहाँ रोकना चाहिए, भले हमें काश्मीर में घुसना पड़े। उसी से हिंदुस्तान की अभंगता सुरक्षित रहेगी। फिर काश्मीर हिंदुस्तान में ही हो, यह धारणा भूमिविस्तार की आकांक्षा की व्याख्या में कैसे आएगी? मैं मेनन के विधान में संगति देखने में असमर्थ हूं। पाठक ही देखें कि क्या वे समर्थ हैं?

और हिंदुस्तान शासन ने भी किस भूमिका से कहा कि काश्मीर यदि पाकिस्तान में विलीन हो तो भी हमें कुछ आपत्ति नहीं होगी। क्या बहुजनसंख्या मुसलमान थी इसलिए? फिर, 'हमने द्विराष्ट्रवाद को नही माना' यह थोथा प्रचार किसलिए? मेनन अपने ग्रन्थ के पृ० ४१२ पर लिखते है कि "जिन्ना और मुस्लिम-लीग इन्होने विभाजन के पूर्व कुछ भी प्रचार किया हो, विभाजन की अनुमति देते समय कांग्रेसी नेताओं ने द्विरष्ट्रवाद को अनुमती नही दी।" इस अर्थ से विभाजन ने मुसलमानो के लिए राष्ट्र निर्माण किया यह बात नहीं के समान मानना अथवा तुच्छ मानना और उस ओर आनाकानी करना, अन्यथा, कांग्रेस का भूगोल आरम्भ से ही पाकिस्तान छोड़कर बचा हुआ हिंदुस्तान इतना ही सीमित मानना और उस पर द्विराष्ट्रवाद की कसौटी लगाना। सीधा प्रश्न यह उठता है के शेख अब्दुल्ला और नॅशनल कॉन्फ्रेंस यदि द्विराष्ट्रवाद से अलिप्त है, अर्थात् सॅक्यूलर है तो हिंदुस्थान में पूर्णरूप से सम्मिलीत होने मे उन्हें विरोध क्यों? कांग्रेस पक्ष का द्विराष्ट्रवाद को मानना न मानना इस बकबक से कभी भी कोई सुसंगत निष्कर्ष नहीं निकल पाया है। वे उस संज्ञा का अर्थ जहाँ जिस ओर मोडें सब लोग वही अर्थ गृहीत करें इतना ही शेष रहता है।

हिंदुस्तान की भूमि पर पाकिस्तान कभी अभिप्रेत नही था। तो भी वह भू-भाग हिंदुस्तान से तोड़ा गया। इसके पश्चात् हिंदुस्तान से संलग्न भू-भाग खोकर पाकिस्तान की भूमि विस्तार की भूख को तृप्त करना देश के लिए हितकर नहीं होगा। क्या यही विचारधारा उस समय के राज्यकर्ताओं के मन मे नही होगी? वहाँ आज मुसलमान भले ही बहुसंख्या में हों, किंतु जिस कालखंड में इन मुसलमानों के पूर्वज हिंदू-संस्कृति से भ्रष्ट हुए वह आठ सौ वर्षो का इतिहास भूलना और वह भू-भाग विनासायास अथवा दबाव से पाकिस्तान के अधीन किया जाना अपने देशके लिए हानिप्रद होगा, यह धारणा क्या उन दिनों के सरदार पटेल जैसे नेताओं को अभिप्रेत न होगी?

काश्मीर में हिंदुस्तान को सेना विमान से पहुँचाने का निर्णय दि. २६ अक्तूबर १९४७ को लिया गया। दूसरे दिन प्रातः काल लग भग सौ वायुयान उड़ान के लिए तैयार हुए। प्रातःकाल दस बजे विमानों का पहला दल श्रीनगर एअरपोर्ट पर मंडराने लगा और जैसे ही देखा कि वह यानस्थानक (Run way) उद्ध्वस्त नहीं हुआ है, हमारे वायुयान वहाँ उतर गए।

टोलीवाले बारामूला तक आ धमके थे। वे श्रीनगर के इर्दगिर्द भी पहुँचे थे। श्रीनगर में घुसने का मार्ग बारा मूलसे था। टोलीवालों की वर्ग संख्या,उनके शस्त्र, उनकी व्यापकता आदि की कल्पना भारतीय सेना को नहीं थी। लेफ्टीनेंट कर्नल राय बारा मूलाकी ओर चल पड़े। उन्होंने देखा कि ये तथाकथित टोलीवाले आधुनिक शस्त्रों से सज्ज थे। संख्याबल से भी वे कई गुना अधिक थे। इसलिए राय पट्टन तक पीछे आए और शत्रु का सामना किया। राय और उनका दल मारा गया। हमारे सैनिकों की शूरता अतुलनीय थी।

काश्मीर के गिलगिट क्षेत्र में मुस्लिम सैनिकों ने लेफ्टिनेंट कर्नल मजीदखान के अधिपत्य में ४ नवंबर १९४७ को स्वतंत्र राज्य घोषित किया। हिन्दुओं का वहाँ पर भयंकर संहार हुआ।

हमारी सेना ने बल बटोरकर चढ़ाई की और नवंबर को बारामूला स्वाधीन किया। वह गाँव चौदह सहस्र जनसंख्या का था, किंतु गाँव में शायद ही १ हजार तक लोग बचे होंगे। संपत्ति लूटी गई थी। स्त्रियों को भगाया गया था। लोग भारी संख्या में मारे गये थे। गाँव के मुसलमान टोलीवालों को मार्ग-दर्शन करने में और उनका स्वागत करने में व्यस्त रहे।

श्री मेनन ने लिखा है, "नादिरशाह ने दिल्ली धोयी ऐसा इतिहास हम पढ़ते है। उसी की पुनरावृत्ति टोलीवालों ने यहाँ पर की। किंतु मुस्लीम आक्रमण का दूसरा तंत्र ही क्या है? उनका संख्याबल कैसे बढा? तात्पर्य यह है कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती ही रहती है। यह काश्मीरका इतिहास स्पष्टतः दिखा रहा था।

रजौरी में टोलीवालो ने दि.११ नवम्बर को क्रूरता का प्रदर्शन कराया। तीन सहस्र स्त्रियों ने राजौरी के तहसील बिल्डिंग मे अग्निकुंड रचा और अग्नि प्रवेश कर जौहर किया। (The Iron Curtain in Kashmir : हीरालाल सक्सेना) हमारी सेना वहाँ पहुँची तो उनकी दृष्टि में आया हड्डिओं का ढेर।

मीरपुरमें दि. २५ नवम्बर को पंद्रह सहस्र हिंदुओ का शिरच्छेद किया गया। हमारे ही लोग संस्कृति से बाहर होनेसे मूल संस्कृति पर कैसा प्रहार करते हैं इसके ये उदाहरण हैं।

हमारी सेना ने दि. ११ नवम्बर को उरी जीत लिया। सामने खड़े हुए भयानक क्रूरकर्मियों से लडते समय हमारी सेनाने कितना मनोधैर्य दिखाया होगा, इसकी कल्पना उन्होने एक के पीछे एक शत्रुव्याप्त भाग मुक्त कराए इससे ज्ञात होता है।

दूसरी ओर दिल्ली-कराची तथा दिल्ली-लाहोर के बीच वाग्युद्ध चलता रहा। काश्मीर विषयक हलचल प्रारंभ होने के सप्ताह भर पश्चात्, अर्थात् दि.२०-११-४७

को महामंत्री पं. नेहरू ने आकाशवाणीपर भाषण किया। "परिणामोंका विचार कर ही हमने काश्मीर के प्रकरण में प्रत्येक पग उठाया है। हमारे शांत रहने का अर्थ था छलबल, घर जलाना, बलात्कार, नरसंहार, ऐसे प्रयोगों के सामने सर झुकानेसे काश्मीर का विश्वासघात होगा। यह काश्मीरका युद्ध आक्रमण-कारियोंके विरुद्ध युद्ध है, जनता का युद्ध है इसलिए एक बार वहाँ शांति प्रस्थापित हो गई तो यू. एन. ओ. जैसे त्रयस्थ के अनुशासन में लोकमत की कल्पना की जायगी और विलीनीकरण कहाँ हो यह निश्चित किया जाएगा।" पं. नेहरू का लोकप्रिय नेतृत्व का निर्देश शेख अब्दुल्ला से था।

लियाकत अली की प्रतिक्रिया लाहौर आकाशवाणी पर ध्वनित हुई। उन्होंने कहा, "गुलाबसिंह और अंग्रेजों के बीच अमृतसर में हुई उभयान्वय सन्धि यही मूलतः कुख्यात है। हिन्दुस्थान का काश्मीर पर अधिकार जताना न केवल अवैध है, अपितु अनैतिक भी। काश्मीर के महाराज के विरुद्ध विद्रोह काश्मीर के लोगों का है, किंतु बाहर के लोगों को उन काश्मीर के लोगों के साथ सहानुभूति है। इसलिए हिंदुस्तान शासन एक आभास निर्माण करने पर तुला है कि काश्मीर पर आक्रमण हुआ है जो बाहर से है। इतिहास झूठा लिखा गया है। हिंदुस्तान का उद्देश्य यह नहीं है कि काश्मीर को बचाए अपितु वहाँ को मिटनेवाली छलक राजसत्ता को बचाने का उनका हेतु है। वहाँ के भीरु राजा ने हिंदुस्थान में सम्मिलित होने का जो अनुबंध किया है वह काश्मीरी जनता से धोखा है। हिंदुस्थान ने काश्मीर को आक्रमणकारी सहायता दी है।"

यदि काश्मीर पाकिस्तान में विलीन होता तो काश्मीर के महाराज और काश्मीर के हिंदुओं की क्या दुरवस्था होती यह लियाकत अली के उपर्युक्त वक्तव्य से स्पष्ट होता है।

पं० नेहरू ने २१ नवंबर १९४७ को विधि मंडल में वक्तव्य दिया था। पिछले चार सप्ताहों की घटनाओं का उन्होंने ब्यौरा दिया और काश्मीरी जनता को अपना भवितव्य निश्चित करने का अवसर मिलेगा, यह आश्वासन भी घोषित किया था।

२६ नवंबर को दोनों देशों में बातचीत हुई। उसमें विभाजन से उत्पन्न प्रश्नों की भी चर्चा हुई। २७ नवम्बर को पचपन करोड़ रुपये देने का निर्णय हुआ, वह इस धारणा पर कि उसका कार्यवहन अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में राशि का प्रदान अन्य प्रश्नों के सुलझाव पर अवलंबित रहेगा।

किंतु इतना वचन मिलते ही पाकिस्तान ने अपना काश्मीर प्रश्न का रुख प्रखर किया। सरदार पटेल को इस स्थिति की बड़ी तीव्रता से कल्पना आ गयी।

हिंदुस्तान ने अपना पक्ष निश्चित किया। पाकिस्तान की उद्धत नीति को न चलने देने का यत्न नेताओं ने किया। एक ओर हमारे नेताओं का यह प्रयत्न था कि पाकिस्तान ही कबीलेवालों को काश्मीर पर हमला करने से रोके और उन्हें वापस खीच ले, तो दूसरी ओर यह पचपन करोड़ का आश्वासन उस प्रयत्न में रुकावटें डालने लगा।

ऐसी विपरीत अवस्था में हिंदुस्तान शासन ने पचपन करोड रुपये न देने का जो निर्णय किया था वह गांधीजी के अनशन से तोड़ना पड़ा। सद्‌भावना के कारण यह प्रदान हुआ, ऐसे ढोल कितने भी बजाये गये हों, किंतु उस सद्‌भावना को प्रतिदान नहीं प्राप्त हुआ। पचपन करोड़ के प्रदान के पश्चात् भी काश्मीर की समस्या के सुलझाव में पाकिस्तान की ओर से सहयोग नही मिला। गांधीजी की मृत्यु के बाद यू० एन० ओ० के सुरक्षामंडल में पाकिस्तान के प्रतिनिधि जफरुल्ला खाँ ने गांधीजी को गौरवपूर्ण शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित जरूर की, किंतु वे तात्कालिक उद्‌गार थे। उस वक्तव्य का पाकिस्तान की काश्मीर विषयक नीति से कुछ भी संबंध नहीं था, क्योंकि आगामी सत्र में ही उस सभा में पाकिस्तान ने अपना दुराग्रह ही चालू रखा था।

सरदार पटेल की आशंका को पाकिस्तान ने अपनी कृति से संपुष्ट कर दिया। गाधीजी के हठ से पटेल को बड़ा दु.ख हुआ था। वह दुःख उनकी अपनी प्रतिष्ठा अथवा अप्रतिष्ठा की धारणा के कारण नही था। उन्होंने अपने वक्तव्य में ही कहा था, "आर्थिक अनुबंध पाकिस्तान को सुदृढ कर देने वाला था। इसलिये पाकिस्तान ने अपनी आर्थिक स्थिरता रखने के लिये पचपन करोड़ का वचन प्राप्त किया। हिंदुस्तान की भावनाओं का प्रतिदान-बुद्धि से विचार करना उसने टाला। इसलिये जो हमारी सुरक्षा पर ही कुल्हाडी मारे अथवा हमारी (देश की) प्रतिष्ठा नष्ट करे, ऐसे प्रश्न पैसों के लेन-देन के प्रश्न में डुबाये रखना हमारे लिये हानिप्रद हैं। हमें यह देखना होगा कि जो तनातनी है उसमें वृद्धि न हो। १२ दिसंबर १९४७ को मैंने अपने वक्तव्य में कहा ही है कि हमारी सद्‌भावना से खडा किया कार्य अब खतरे में आ गया है अर्थात् हमारी सद्‌भावना को ही अब भय है। इस समय पाकिस्तान ने हमसे दुबारा सशस्त्र संघर्ष खड़ा कर रखा है। ऐसा लगता है कि उसकी व्यापकता और फैलेगी। यदि पाकिस्तान को उसकी उद्दंड नीति में यश प्राप्त हुआ तो उभयान्वय की नीव ही उखड़ जायेगी और पाकिस्तान के आक्रमण के कदम को सुलभता प्राप्त होगी।"

किंतु गांधीजी का हठ पूरा करना पड़ा। सरदार पटेल के शब्दों में राष्ट्र की अस्मिता बोल रही थी। वह अस्मिता गांधीजी के हठ में बलि चढ गयी। वल्लभभाई ने अपमान निगला और २६ जनवरी १९४८ को बम्बई की सभा में उन्होंने कहा

था "सद्भाव और दातृत्व की प्रवृत्ति से हमने यह पचपन करोड रु. प्रदान किये। यह बात पाकिस्तान के अर्थ सचिव और लंदन के अर्थशास्त्रियों ने मान ली है। हमने इस प्रदान का निर्णय लिया वह इसलिये कि गांधीजी अपनी मानसिक यातनाओं से मुक्त हों।"

क्या इस प्रदान से लड़ाई समाप्त हुई? क्या पाकिस्तान ने आक्रमण रोका? क्या निर्वासितों का तांता बंद हुआ जिसकी कथा हम हिंदुस्तान शासन के वार्ता-वितरण मंत्रालय द्वारा १९४७ में प्रकाशित 'काश्मीर का रक्षण' (Defending Kashmir) ग्रंथ में पढ़ सकते हैं। सरसरी दृष्टि से भी हमें अति भयानक दृश्य दीखने में आयेंगे।

काश्मीर के उत्तर भाग में आक्रामक बाहर से आये थे तो जम्मू के पश्चिम भाग में जो आक्रमक आये उनकी सहायता स्थानीय लोगों ने की। उनको सेना-सामग्री बाहर से प्राप्त होती थी (Defending Kashmir पृष्ठ ३७)।

अत्याचार के बलि बने सहस्रावधि हिंदु निर्वासित (मूल पुस्तक में नॉन मुस्लिम लिखा है) अपनी सेना की छाया में असहाय अवस्था में रक्षण पा रहे थे। सीमाओं की रक्षा करने में लगे काश्मीर राज्य के सैनिक टोलीवालोंसे घिर गये थे इसलिये असहाय थे। उनको सहायता पहुंचाना और निर्वासितों को छुडाना यही अपनी सेना का पहला काम रहा। पूंछ में ही केवल चालीस सहस्र शरणार्थी इकट्ठे हुए थे (पृष्ठ ३७)।

२० जनवरी १९४८ को ले० जनरल करीअप्पा ने पश्चिमी मोर्चे का नेतृत्व हाथ में लिया। नौशेरा परिसर में ६ फरवरी को घमासान लड़ाई हुई। हमारी सद्भावना हमारे ही सैनिकों पर बन्दूक की गोली द्वारा पलटा खा गयी थी। तीन आवर्तनो में पंद्रह सहस्र शत्रुसेना ने नौशेरा में लड़ाई की थी। हमारी सेना ने विलक्षण शौर्य दिखाया। शत्रु के दो सहस्र सैनिक मारे गये, किंतु उसके लिये हमारे केवल २६ सैनिकों को प्राणों से वंचित होना पडा था और नब्बे सैनिक घायल हुए थे (पृ० ४२)।

जैसे ही शीतकाल हटने लगा हमारी सेना ने शत्रुव्याप्त भूभाग को मुक्त करने का अभियान शुरू किया। राजौरी शत्रु के ही अधीन था। फिर भी वहाँ शरणार्थी इकठ्ठे हो रहे थे। हमारी सेना राजौरी की ओर चल पड़ी। १३ अप्रैल १९४८ को हमारी सेना वहां पहुँच गई और कबीलेवाले भाग निकले थे।

हमारे सैनिकों को बड़ी आशा थी कि अब राजौरी में स्थित निर्वासित हमारा स्वागत करेंगे, किंतु वहाँ देखा तो केवल बारह सौ से पंद्रह सौ तक ही निर्वासित जीवित थे। वे स्त्रियां थीं। उनमें से लगभग पांच सौ स्त्रियों को मारने के लिये जकड़ रखा था। हमलावर भाग गये, इसलिये वे स्त्रियां बच सकी थीं।

अन्य शरणार्थियों का क्या हुआ था? शासकीय प्रतिवृत्त में लिखा है कि बारामूला में हुआ नरसंहार राजौरी में हुए - नर-संहार के मुकाबले फीका रहा। नगर में सब ओर स्मशान की शांति थी।

भाग जाने से पहले हमलावरों ने हिंदू (प्रतिवृत्त के अनुसार नॉन मुस्लिम) लोगों का सार्वत्रिक संहार किया था। घरों के अस्तव्यस्त खंडहर, स्थान स्थान पर दफनाये असंख्य कलेवर, अधूरे दबे सड़ रहे शवों के ढेर, उनसे निर्मित दुर्गंध, इन बातों से हमारी सेना को ज्ञात हुआ कि वहां क्या क्या हुआ। जीवित मनुष्यों पर शस्त्रों के घाव थे। वे रेंगते – रेंगते सहारा ढूंढने आये थे।

डेढ़ सौ वर्ग फुट क्षेत्र और पंद्रह फुट गहरे तीन गड्ढे शवों से परिपूरित थे। शत्रु को समय तक न था कि इन शवों पर मिट्टी फेंके। हमारे सैनिकों को बारबार नये शव दीखते थे। एक स्थान पर टूटे कंगनों का ढेर दृष्टि में आया। पास ही स्त्रियों की कई चप्पलें भी थीं। भूमि पर रक्त फैला था। कहीं-कहीं बच्चों के अधूरे दबाये प्राणहीन हाथ आकाश की ओर निर्देश करते दीखते थे।

गाँव के आधे से अधिक घर या तो जलाये गये थे या फावड़े से गिराये गये थे। राजौरी पर यह दूसरा बलात्कार था। टोलीवालों ने जब राजौरी पहली बार नवम्बर १९४७ के प्रारम्भ में हस्तगत किया, उस समय उन्होंने अपनी क्रूरता का जो परिचय दिया उसका वर्णन पहले आ ही चुका है।

गांधीजी ने ५–११–१९४७ को अहिंसक युद्ध का स्वप्न चित्र शब्दाङ्कित किया था। यहाँ उसका स्मरण होता है। एक पृच्छक ने गांधी जी से पूछा था, "काश्मीर पर हुए आक्रमण का प्रतिकार अहिंसा से कैसे किया जाय ?" गांधी जी ने कहा: "जिन पर आक्रमण हुआ है उनको सैनिक सहायता न दी जाय। सब राज्य अहिंसक सहायता करे, और वह भी विपुल मात्रा में। भले ऐसी सहायता मिले अथवा न मिले। जो आक्रमित हैं वे नियमबद्ध सेना का, अर्थात् आक्रमणकारियों का प्रतिरोध न करें (अर्थात् अपने पर आक्रमण होने दें) आक्रमित अपने नियतस्थान पर (पोस्ट ऑफ ड्यूटी पर) क्रोध रहित और द्वेषरहित हृदय से आक्रमकों से शस्त्रों की बलि चढ़ें। शस्त्र प्रयोग न करें। हाथ की मूठी से भी प्रति प्रहार न करें। ऐसा अहिंसामय प्रतिकार इस पृथ्वी पर इतिहास को आज तक ज्ञात नहीं है, ऐसा नेत्र दीपक शूरता का दर्शन करायेगा। फिर काश्मीर पवित्र भूमि होगी। उस पवित्रता की सुगंध हिंदुस्तान में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में महकेगी।"

"यह स्वप्न मात्र है और मैं उसका कार्यान्वय करने में निष्प्रभ (इंपोटंट) हूं।" यह भी गांधी जीने कहा था। यह चित्र यदि किसी को सुदर्शन, रमणीय लगे तो भले ही लग जाय। मानवता की दृष्टि से इस जैसा क्रूर चित्र विश्व में शायद ही कहीं दीखेगा। बारामूला हो अथवा रजौरी, वहाँ के प्रतिकार अहिंसक ही हुए थे,

और उसमें हजारों प्राणों की बलि हुई थी, और हमारे सैनिक उस अहिंसक प्रतिकार का दाव देख रहे थे। क्या उस सबकी दुर्गन्ध से इस भूमि को पवित्रता आने वाली थी?

पचपन करोड़ रु. का प्रदान करने को अपने शासन को बाध्य न करने से ही अहिंसा का कुछ सीमा तक पालन हुआ होता, किंतु यह न करते हुए गांधी जी एक ओर अहिंसक युद्ध के दिवास्वप्नों में मस्त रहे और दूसरी ओर पचपन करोड़ के प्रदान के लिये उपवास में लगे। आक्रमकों को अत्याचार करने के लिये अधिक सामर्थ्य प्रदान करने वाले गांधी जी के उपचार उनके अहिंसा तत्व से पूर्णतया विसंगत सिद्ध हुए।

राजौरी खोना पड़ा। इसका प्रतिशोध लेने के लिये आक्रमकों ने १६ अप्रैल को छ: सहस्र की संख्या में झांगर पर हमला किया। हमारी सेनाने उनको मार भगाया था। २३ मई को टीटवाल, २७ मई को उरुसा, २८ मई को पोरकांटो स्थानों पर हमारी सेना ने स्वाधीनता प्राप्त की। लड़ते-लड़ते वे बड़ी संख्या में बलिदान करते रहे। भिन्न भिन्न मोर्चे पर यही स्थिति रही।

१४ अगस्त १९४८ को पाकिस्तानी सेना ने मानो मधुमक्खी के झुंड जैसा स्कार्डू स्थान पर आक्रमण किया। हमारे सैनिक लड़ते रहे, किंतु न उन्हें सहायता मिलने की आशा थी न विजय प्राप्त होने की। शत्रु की प्रचंड सेना के बीच वे दब गये। पाकिस्तानी सेना ने विजय प्राप्त की। उनके मुख्य स्थान पर उन्होंने विजय प्राप्ति का संदेश भेजा। वह क्या था? 'सब सिक्खों को गोली मारी। सब स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाय। (All Sikhs shot. All women raped!): Defending Kashmir, पृ. ७२)

यदि हममें से कोई बलात्कार का दुष्कृत्य करे तो हम उसको नीच समझते हैं और जो बलात्कार करता है उसको भी उस दुष्कृत्य पर गर्व नहीं हुआ करता। वह लज्जित रहता है, किन्तु कश्मीर में अर्थात् हिन्दुस्तान के विरुद्ध 'धर्मयुद्ध' 'जिहाद' खड़ा किये हुए मुसलमानों को उनके धर्म के अनुसार स्त्रियों के साथ बल-पूर्वक किया संभोग गौरव पूर्ण प्रतीत हुआ। वह इतना कि विजय में क्या-क्या लूट प्राप्त हुई, क्या-क्या क्रूरता दिखायी, इन बातों के कथन में इस 'धर्मकृत्य' का भी उन्होंने अपने संदेश में उल्लेख किया। कुरान का संशोधन यह इस पुस्तक का विषय नहीं है, किंतु ऐसे अपकृत्य को मुसलमानोंने 'धर्मकृत्य' माना। इस मेरे विधान से हमारे ही लोग चौकेंगे। इस सदर्भ के लिये प्रमाण रूप में कुरान का चौथा भाग (सुरा) प्रस्तुत है।

वैषयिक संबन्ध किससे विहित है, किससे निषिद्ध है, ये नीतितत्व बताने के उपक्रम में उस के 'अन् निसा' (स्त्रियाँ अथवा स्त्री विषयक) भाग में एक युद्धनीतितत्व भी बताया है। आयत २४ में उसका आशय है—

"और विवाहित स्त्रियाँ भी तुम पर हराम हैं जो किसी के निकाह में हों, सिवाय उनके जो ('लौंडी' के रूप में) तुम्हारे कब्जे में हों !"

श्री अबू सलीम महम्मद अब्दुल हई का किया कुरान का यह अनुवाद अधिकृत है। मक्तबा अलहसनात रामपूर (उत्तर प्रदेश) ने इसे प्रकाशित किया है। अरबी, उर्दू (फारसी लिपि) और नागरी लिपि में हिन्दी ऐसी प्रत्येक पृष्ठ की रचना है। उपरोक्त उद्धरण पृष्ठ २५३ पर है।

अर्थात् युद्ध में तुम्हारे हाथ में लगी स्त्रियाँ विवाहित हैं या अविवाहित यह इस्लामियों को पूछना आवश्यक नहीं है, क्योंकि जो पुरुष युद्धों में पकड़े जाते हैं उनका उनकी स्त्रियों से सम्बंध टूटता है यह 'इस्लामी कानून' है।

उद्धृत ग्रन्थ के पृष्ठ १२४३ पर 'लौंडी' का विवरण दिया है।

"लौंडी से अभिप्रेत वे स्त्रियाँ हैं जो इस्लामी युद्ध में पकड़कर आयें और राज्य की ओर से लोगों में बाँट दी जायें।" आगे लिखा है, "युद्ध में जो स्त्रियाँ कैद होकर आयेंगी उनके बारे में इस्लामी कानून यह है कि पहले उन्हें राज्य के हवाले कर दिया जायेगा। राज्य को यह अधिकार प्राप्त है कि ... उन्हें सैनिकों में बाँट दे। इस प्रकार जो स्त्री जिस व्यक्ति के हिस्से में आयेगी केवल वही उससे संभोग कर सकता है ... ।"

दिल्ली से निकलने वाले 'रेडियन्स' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक में कुरान पर चर्चा आया करती है। फरवरी १९७० के प्रकाशित अंक में उपर्युक्त विषय की चर्चा आयी है। पाठक वह सम्यक संदर्भ के लिये देखें।

स्त्रियों को अपदार्थ समझकर उन पर इस प्रकार कुप्रयोग करना एक समय रूढ़ था, किन्तु वह प्रथा मानव धर्म को ही नीच दिखाने वाली होने के कारण अनुसरण करने योग्य नहीं है, इस प्रकार का अभिप्राय क्या किसी ने व्यक्त किया है? उद्धृत ग्रन्थ के पृष्ठ १२४३ पर जो विवरण है, वह देखा जाय।

'लड़ाई में कैद होकर आने वाली स्त्रियाँ राज्य के लिए एक समस्या होती हैं, जिसे हर समझदार व्यक्ति भली-भाँति समझ सकता है। इस्लाम ने इस समस्या का समाधान बिल्कुल स्वाभाविक रूप में किया है।

उपर्युक्त ग्रंथ का तीसरा संस्करण जनवरी १९५० का है।

बीसवीं शताब्दी में बीस बाईस वर्ष-पूर्व अनुसारित इस धर्म युद्ध को 'सब स्त्रियों पर बलात्कार किया।' इस विजय पताका को इस प्रकार 'बिलकुल स्वाभाविक' रूप का स्तम्भ मिला है !!

अस्तु ! शत्रु को क्या करना चाहिए इसकी अपेक्षा हमें क्या करना चाहिए यही हमारे सम्मुख उन दिनों समस्या थी। हमारे उत्सर्जित सैनिक, अपहृत और

बलात्कारित स्त्रियां और मारे गये नागरिक निर्विवाद रूप से उस पचपन करोड़ रु. की राशि के बलि थे।

क्या केवल पचपन करोड से ही लड़ाई लड़ी जाती है? क्या यह सच नहीं है कि युद्ध में पचपन करोड़ की ऐसी कई रशियां व्यय हुआ करती हैं ? जी हां ! किन्तु दूसरी बातों पर यह निर्भर रहती है। उस समय की अवस्था में इस पचपन करोड़ की राशि से पाकिस्तान को कितना सहारा मिला, यह बात सरदार पटेल के वक्तव्य से हम देख चुके हैं। हमारे पास कई करोड़ हैं। पचपन करोड़ का क्या दुःख करना ऐसा आत्म-घातक विचार हमारे देश ने नहीं किया था। हमारे पास कई हवाई जहाज हैं। उनमें से एक विमान पाकिस्तान ने बलपूर्वक भगाया और जलाया तो उसका क्या दुःख करे, उससे पाकिस्तान पर क्यों क्रोध करे? इस प्रकार का विचार जो राष्ट्र करेगा वह स्वाभिमानी नहीं होगा। ऐसा राष्ट्र दूसरे बलवान राष्ट्रों से घोंघेके समान पैर के नीचे दबने योग्य रहेगा। इसलिये हमारा जहाज भगाया गया और जलाया गया इस घटना का क्रोध न्यूनतम शब्दों में तो भी व्यक्त करते हैं। इसी कारण उन दिनों पचपन करोड़ के प्रदान से पूरा राष्ट्र संतप्त हो उठा था।

सितम्बर १३ और १४ को मराठा और जाट सेना दलों ने बोटकूलम गंजकी ओर चढ़ाई की, किन्तु अपने उद्दिष्ट के केवल तीस यार्ड अंतर पर ही उन पर प्रचंड अग्नि वर्षा हुई। पूरी की पूरी एक कम्पनी हताहत हुई।

युद्ध बन्द हो इसलिए कई दिनों तक प्रयास चल रहा था, किन्तु प्रत्यक्ष युद्ध बन्द का कार्यवहन ३१-१२-४८ को मध्य रात्रि में हुआ। इस प्रकार सद्भावना के नाम पर पचपन करोड़ देने के निर्णय के लगभग एक वर्ष पश्चात् हमारी सेना के भाग में कुछ आया तो अग्नि वर्षा की भेंट। ★

६ घटना अेवम् अभियुक्त

अभियुक्त

दिल्ली ! हिंदुस्थानकी राजधानी ! नयी दिल्ली में है बिर्ला भवन। वहाँ की हरियाली पर उन दिनों गाधीजी प्रार्थना सभा लेते थे।

दिनांक २० जनवरी १९४८ की संध्या में उस भवनके तटकी भित्ति को सटकर एक धमाका हुवा। विस्फोटसे भित्ति में विवर बना।

दिल्ली और उनका परिसर उन दिनों रणोन्मादसे धुंधला बना था। लोगोंकी भावनायें प्रक्षुब्ध हो उठी थीं। कुछही मास पूर्व हिंदुस्थानका विभाजन हुआ था। उसीका वह परिणाम था।

'स्थान' भूमिवाचक शब्द है। पाकिस्तान (फारसी में 'पवित्र स्थान') नामसे स्वतंत्र इस्लामी राष्ट्र के निर्माण के हेतु हिंदुस्थानका कुछ भूखण्ड तराशा गया था। उर्वरित हिंदुस्थान भी उसी समय अंग्रेजोंके वर्चस्वसे मुक्त हुआ था। वह कहलाया गया 'भारत'।

हिंदुस्थानकी राष्ट्रसभा इंडियन नैशनल कांग्रेस राजनीति में अग्रसर थी। उन दिनों उस संस्थाके नेतागण हिंदू मुस्लिम एकता एवम् धर्म निरपेक्षता की भावनासे दुष्प्रभावित हुवे थे। अपने अंगीकृत तत्वों को तिलांजलि दे उन्होंने हिंदुभूमि पर मुस्लिम धर्माधिष्ठित राष्ट्रकी सिद्धि की अनुमति प्रदान की। वह उन नेताओंकी हार थी, और उनके तत्वों की भी। किंतु वे नेता बडे दाम्भिक थे। दम्भ उनका स्वभावही बना था। इसलिये उन्होंने अपने तत्व बलात् हिंदुओंपर लादे। अपनी हारको ढँकनेके हेतु उन्होने हिंदुता को राष्ट्रता माननेको सदा विरोध किया। हिंदु मात्र एक जाति है इतनाही उन्होंने प्रचार किया। मनमानी पद्धतिसे उन्होने अपना धर्मनिरपेक्षत्व उर्वरित हिंदुस्थान के गले बांधा।

वस्तुतः इंडिया यहा हिंदुस्थान इस संज्ञाका अंग्रेजोंका बनाया भ्रष्ट रूपांतर है। भारत यह भी इस देशका प्राचीन नाम है। विभाजन पूर्व पूरा हिंदुस्थान उस संज्ञा में समाहित है। किंतु जिस नाम में हिंदुओं का वर्चस्व प्रतीत हो ऐसा नाम नेतागण नही चाहते थे। उन्हें लगा कि हिंदुस्थान नाम रखनेसे मुस्लिमों की भावनाओं को ठेस पहुँचेगी। इस प्रकार धर्म निरपेक्षता का व्यवहारत अर्थ रहा मुस्लिम तुष्टीकरण।

विभाजन की वेदनाओं की पूंछ पकडे सामूहिक हत्याकाण्ड, अत्याचार और प्रचंड मात्रा में निष्कासन चलता रहा। उन दिनो वह नित्यक्रम था।

गांधीजी महात्मा उपाधिसे लोगों को ज्ञात थे। महात्मा आदर युक्त विशेषण है। उन दिनों की राजनीति में गांधीजी का प्रमुख भाग था।

विभाजन के घावोंसे विद्ध हिंदू और ऐसे पीडित हिंदुओंसे भ्रातृभाव रखने वाले हिंदू गांधीजी पर क्रुद्ध थे। इस लिये किसी संभाव्य आघातसे गांधीजी की रक्षा करने के हेतु शासनने बिर्ला भवन पर आरक्षियों की संख्या में वृद्धि की थी।

बीस जनवरी का विस्फोट गांधीजी की दिशा में नही था। गांधीजी के व्यासपीठसे वह लगभग डेढ़सौ फूट दूर था। किंतु आरक्षियोंने बाद में पता लगाया कि गांधीजी को समाप्त करने के उद्देश्य के षडयन्त्रका वह एक भाग था।

एक युवक मदनलाल पहवा उस दिन उसी स्थान पकडा गया। विभाजन के घावोंसे आहत हिंदुओंमेंसे वह एक था। मदनलाल के और भी साथी थे। आरक्षी जान गये कि उन साथियों का संकल्पित उद्देश्य उस दिन विफल होने के कारण वे वहाँ से भाग निकले, उन साथियों को पकडने के लिये आरक्षियों ने हिंदुस्थान भर में जाल बिछाया। धमाके से और इस जानकारी से अधिक सावध बन शासनने बिर्ला भवन पर आरक्षी दल और बढाया। रक्षा कार्य सतर्क बनाया।

अगले दस दिनोंमें मदनलाल के साथियों को पकडने में आरक्षियों को कुछ भी यश नहीं मिला। और यकायक ३० जनवरी १९४८ को संध्या के पांच बजे गांधीजी प्रार्थनासभा को सबोधित करने जा रहे थे कि नथूराम गोडसे ने उनपर बहुतही निकट अंतर से गोलियाँ दागीं। उस आघात का स्यात् शारीरिक सहज परिणाम था, गांधीजी के मुखसे अः जैसा क्षति अस्पष्ट स्वर निकला और उसी के साथ धराशायी हुवे। वे तत्काल अचेत हुवे और बींस एक मिनिट पश्चात उनका प्राणोत्क्रमण हुवा।

गोलियाँ दागतेही नथूरामने अपना छरिकाधारी हाथ (छरिका पिस्तौल को कहते हैं) सरसे ऊपर उठाया और उसने आरक्षियों को पाचारण किया। आरक्षियोंने उसे पकडा। २० जनवरी के विस्फोट के संबंध में आरक्षी जिन साथियो की खोज में थे उनमें से नथूराम एक था।

आरक्षियों का अन्वेषण कार्य मुख्यतया बम्बई, दिल्ली और ग्वालियर पर केंद्रित था।

अभियोग चलाने के लिये शासनने एक विशेष न्यायालय का निर्माण किया। श्री आत्मचरण अग्रवाल आय. सी. एस. को न्यायमूर्तिपद दिया गया।

यह न्यायालय उस संस्मरणीय लाल किले में था। यह तीसरा ऐतिहासिक अभियोग वहाँ चलनेवाला था। पहला अभियोग बहादुर शहा जफर और अन्य अभियुक्तों पर था। वर्ष १८५७ में इंग्रेजी राज के विरोध में वे स्वतंत्रता का युद्ध लडे थे इसलिये वह अभियोग था। दूसरा अभियोग वर्ष १९४५ में था। दूसरे जागतिक युद्ध में इंग्रेजी राज के विरोध में सैनिकी उत्थान किया गया था। नेताजी सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में स्वतंत्र हिंदुस्थान सेना के अर्थात इंडियन नैशनल आर्मी के (आई. एन. ए.) के अधिकारियों के विरुद्ध वह अभियोग था। गांधीवध की छानबीन का यह तीसरा अभियोग उसी लाल किले में चलने वाला था।

लाल किले के तट में जो कक्ष थां उसका रूपांतर कक्ष बंदी गृह में किया गया। गांधीवध के अभियुक्तों को वहाँ रखा गया।

बारह आभियुक्तो पर कई अलग अलग आरोप लगाये गये। बारह में से तीन अभियुक्त अप्राप्य थे। दिनांक २७ मई १९४८ से न्यायालय में उपस्थित किये गये अभियुक्त निम्न लिखित थे।

१ नथूराम विनायक गोडसे	आयु ३७	पुणे
२ नारायण दत्तात्रय आपटे	३४	पुणे
३ विष्णु रामकृष्ण करकरे	३७	अंबिका नगर (अहमद नगर)
४ मदनलाल काश्मीरीलाल पाहवा	२०	बम्बई (मूलतः जिला मांटगोमरीः पाकिस्तान)
५ शकर किस्तैया	२०	शोलापूर
६ गोपाल विनायक गोडसे	२७	पुणे
७ दिगंबर रामचंद्र बडगे	४०	पुणे
८ विनायक दामोदर सावरकर	६६	मुंबई
९ दत्तात्रय सदाशिव परचुरे	४७	ग्वालियर

तीन भूमिगत आभियुक्त ग्वालियर के थे। उन के नाम :-१) गंगाधर दंडवते' २) गंगाधर जाधव, ३) सूर्यदेव शर्मा।

अभियुक्त

अभियुक्त क्रमांक ७, दिगंबर बडगे क्षमादत्त साक्षी बना। इस लिये स्वातंत्र्यवीर सावरकरका क्रमांक जो आठ था वह सात हुवा। वीर सावरकर प्रज्वलन्त क्रांतिकारीके नाते परिचित हैं। उन्हें दैदीप्यमान, निःस्वार्थ, और असीम त्याग की पृष्ठभूमि थी। हिंदुस्थानके स्वातंत्र्य का इतिहास सावरकर के नामोल्लेख के बिना अधूरा रहेगा। अपने कोमल वय में ही उन्होंने स्वातंत्र्य प्राप्तिके आंदोलन में स्वयं को झोंक दिया था। उनका प्रण था, '-स्वाधीनता पाना एक पवित्र कर्तव्य है। हिंदुस्थान पर घिरा हुवा अंग्रेजों का शासन अन्याय्य बंधन है और उस जुए से छुटकारा पाने के लिये यथा साध्य साधन का प्रयोग न्यायोचितही होगा।' इटाली के स्वातंत्र्य संग्राम के अग्रणी जोसेफ मॅझिनी का तत्वज्ञान ग्रंथांकित कर वीर सावरकरने हिंदु युवकों की स्वातंत्र्यलालसा सुलगायी थी।

वर्ष १८५७ में लडे गये संघर्ष को इंग्रेजों ने एक बलवा, म्यूटिनी नाम दिया था। वीर सावरकरने सर्व प्रथम उस कुप्रचार का खंडन कर ग्रंथद्वारा प्रमाणित किया कि वह स्वातंत्र्यसमर था।

उन दिनों स्वातंत्र्यवीर सावरकर पर अंग्रेज शासनने राज द्रोहका अभियोग चलाया। उन्हें दो आजन्म कारावास का दंड दिया। ये दण्ड एक के पश्चात एक कर के भुगतने थे। वर्ष १९१० में उन्हें दंड दिया गया। उन सब बंधनों से वे वर्ष १९३७ में मुक्त हुवे। तब तक गांधीजी के नेतृत्व में कॉंग्रेस ने मुस्लिम तुष्टीकरण नीति में बडी प्रगति की थी।

सावरकर को लोगों ने स्वातंत्र्यवीर उपाधि दी थी। बंध मुक्त होते ही सावरकर ने राजनीति में प्रवेश किया और हिंदु महासभा का नेतृत्व किया। हिंदु महासभा हिदुओं के लिये न्यायोचित सम्मान और स्थान प्राप्त कर स्वाधीनता संपादित करने को कटिबद्ध राजनीतिक संस्था थी।

हिंदुस्थान का विभाजन किये बिना स्वाधीनता हाथ आनी चाहिये इस आग्रहपर सावरकर दृढ थे। विभाजन टालने का एकही उपाय उन्होंने लोगोंसे कहा, ' मुस्लिम तुष्टी करण नीति से दूर रहो।' उन्होंने हिंदू युवकों को सेना में संमिलित होने को कहा। भले हो सेना इंग्रजों के शासन में हो, सेना में प्रवेश करने सेही शस्त्रोंसे परिचय होने का दुर्लभ अवसर प्राप्त हो सकता था। और ठीक समय पाते हो उन्ही शस्त्रों का प्रयोग स्वतंत्रता के हेतु करने को उन्होंने युवको को मंत्रणा दी।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस को वीर सावरकर की क्रांतिकारी पृष्ठभूमि जॅंची। थोडेही लोग जानते है कि ब्रिटिशोंका राज नष्ट करने के हेतु नेताजी को क्या करना चाहिये इस विषय पर नेताजी और सावरकर के बीच वार्तालाप हुवा था। सावरकर जीके एक सहकारी राश बिहारी बोस उन दिनों परदेश (जापान) में थे। उनके एवम् सावरकरजी के बीच पत्राचार चलता था। यह सत्य भी बहुत थोडे लोग जानते है।

विभाजन प्रत्यक्ष रूप में होने के कई वर्ष पूर्व, वीर सावरकरने लोगों को चेतावनी दी थी कि हिंदुस्थान का अग्रसर दल कॉंग्रेस लोगो की वंचना करेगा और मुस्लिमों का अनुनय करने के हेतु देश विभाजन करेगा। उन्होंने यह भी कहा था कि स्वाधीनता के पश्चात् कॉंग्रेस उर्वरित हिंदुस्थान में पले मुस्लिमों का तुष्टी-करण करती रहेगी और हिंदुओंके न्याय्य अधिकार भी मारे जायेंगे। उदाहरण के लिये वीर सावरकर का १९४२ के कानपूर अधिवेशन का अध्यक्षीय भाषण देखें। आज उसी स्थिति का हिंदू अनुभव करते हैं। हिंदुस्थान मे भी मुसलमानों को स्वतंत्रता मिली है। हिंदुओं को नही।

इन दो परस्पर विरोधी विचार धाराओं का आपस में सदा संघर्ष होता रहा। गांधीजी ने और कॉंग्रेसने क्रांतिकारियों की निर्भर्त्सना 'अत्याचारी' कहकरके की। इसके विपरीत, सावरकर जीने

लोगोंको उपदेश दिया कि वे क्रांतिकारियों के होतारम्य में, आवृत अुच्चतम त्यागभावनाका गौरव करें और उन्हें कृतज्ञ रहें। अूपर अूपरसे देखा जाए तो क्रान्तिकार्य भलेही शस्त्रयुक्त अेवम् रक्तयुक्त हो ये कार्य मानवताके हेतु होते हैं अतः सराहनीय हैं यह अुनकी शिक्षा थी। जिसके फलस्वरूप शासनद्वारा नियुक्त अभियोजकोंको सावरकरजीको जिस अभियोगमें फँसाना सुकर हुवा। सावरकरजीकी नीतिको हीनतापूर्वक विकृत करना और उसी का आडंबर मचाना अभियोजकोंका काम रहा। जिन तत्वोंकी नींवपर सावरकर खडे थे अुन तत्वोंका तर्क से खंडन करना शासनको असंभव था।

जिस अभियोगमें लिपटे अन्य अभियुक्त हिंदुस्तानके विभाजनके कठोर विरोधी तो थे ही अुसके अतिरिक्त विभाजनको लोग निगल जायें इसलिये जो छद्‌म काँग्रेस के नेता अेकसत्ताक प्रणालिसे अपना रहे थे अुनके भी वे आलोचक थे। सभी आभियुक्त वीर सावरकर के अर्थात अुनके तत्व के अुपासक थे। अभियोगके अुपक्रममें अुन्होने जिस वस्तु स्थितिका कभी इनकार नहीं किया। सावरकरजीने भी अभियोगमें जिस सत्यको छिपाया नही कि अभियुक्त अुनके अनुयायी हैं।

जिस कारण, अभियोजकोंने अेक अस्पष्ट, काल्पनिक और निकृष्ट प्रमाण के आधारपर अेक कथा रची और न्यायालयमें निवेदन किया कि सावरकरजीके आशीर्वादसे गांधी वध संपन्न हुवा।

देश विभाजनके दुष्कृत्यसे लाख लाख लोगोंकी ध्वस्तताके कारण बने हुवे नेता लोकद्रोहके अपराधमें अभियुक्तके कठघरेमें होने चाहिए थे। किन्तु वे थे सत्ताधीश। अुन्होंने सावरकर जैसे अुज्वल लोकभक्तको आभियुक्तके कठघरेमें बद्ध किया था। यह सबसे क्रूर दैवदुर्विलास था।

अभियुक्त क्रमांक २ नारायण आपटे बी. एस्‌सी. बी. टी. थे।

वे बडेही लोकप्रिय अध्यापक थे। वे नीति शिक्षा वर्ग भी चलाते थे। पुनासे सत्तर मील दूरीपर अहमदनगर (अंबिका नगर) जिला है। वहाँ अभियुक्त क्रमांक ३ विष्णु करकरे रहते थे। आपटे पुणे में रहते थे। हिंदूराष्ट्रके कार्य में दोनोंकी लगन होनेके कारण वे आपसमें परिचित हुवे। युवकोंको शस्त्र शिक्षा देनेके हेतु आपटेने रायफल क्लब खोला था।

अुसके पश्चात वर्ष १९४४ से आपटे अेवम् नथूरामने पूनासे हिन्दुराष्ट्र दैनिक पत्र प्रारंभ किया। अुस समाचार पत्र का अुद्देश्य था हिन्दुसंगठनका प्रचार अेवम् प्रसार।

दिनांक ३१ जनवरी १९४८ को अुस पत्रका अन्तिम अंक मुद्रित हुवा। अुसमें समाचार था "गांधीजीकी हत्या हुवी। हत्या करनेवाले का नाम है नथूराम गोडसे। वह 'हिन्दुराष्ट्र' दैनिक पत्रका संपादक है।"

आपटे अेवम् नथूरामने पाँच छ: वर्ष हिन्दुमहासभा के ध्वजतल में अविरत कार्य किया।

आपटे दिनांक २० जनवरी और ३० जनवरीको बिर्लाभवन में घटना-स्थानपर अुपस्थित थे। अभियोजकोंने आपटे का वर्णन षडयन्त्रका सूत्रधार (ब्रेन विहाअिड कॉन्स्पिरसी) अैसा किया है। नथूराम गोडसे अेवम् नारायण आपटे ने अपने देशकी अेकात्मताका ध्येय अपने प्राणोंसे भी अूपरि माना था। अुस ध्येय-पूर्तिके अुपलक्षमें अुनकी मृत्यु अेकसाथ कन्धेको कन्धा मिलाकर, हाथमें हाथ गूंथकर नियतिने नियोजित की थी, और वह भी अुनके होटोंपर वन्दे मातरम् का मंत्र ध्वनित किये हुए।

आपटे सुडौल कदके थे, अुनका विवाह हुआ था। अुनके एक पुत्र था। वह बारह वर्षका होकर चल बसा। अर्थात आपटे के फाँसीके कुछ वर्ष पश्चात्।

विष्णू करकरे का अम्बिका नगर में अेक निवासालय अेवम भोजनालय था। वे स्वयं अति कर्तव्यतत्पर कार्यकर्ता थे। विभाजनके पूर्व नोआखाली विभाग (बंगाल) हिन्दुओंकी संहारशाला बना था। अब वह भूभाग बंगला देशमें (अुसके पहले पूर्वी पाकिस्तानमें) है। करकरे दस युवकोंका दल नोआखाली ले गये। हिंदुओंको संगठित कर अुनमें प्रतिकारकी भावनाका निर्माण करना अुनका उद्देश था। हिंदु-महासभा की ओरसे अुन्होंने वहाँके हिंदुओंके लिये कअी आश्रम शिबिर खडे किये। यह कार्य उन्होंने वर्ष १९४६–१९४७ में किया। प्रस्तुत घटनामें, करकर २० अेवम् ३० जनवरीको घटनास्थानपर अुपस्थित थे। वे विवाहित थे। अुनके सन्तान नहीं थी।

'गनकॉटन' नामक विस्फोटक का जिसने धमाका किया वह मदनलाल ४ क्रमांकका था। वह निर्वासित था। सार्वत्रिक हत्याकाण्ड लूटमार, आग जनी आदि घटनाएं अुसने स्वयं देखी थी। अपना अपना घरबार छोडनेको बाध्य किया मानव कअी कोसों के लम्बे जथ्येमें हिन्दुस्थान चल पडा था।

अपनेपर बीती अमानुषताका ब्योरा मदनलालने अपने निवेदनम दिया है। मदनलाल अविवाहित था।

पांचवां अभियुक्त शंकर चिस्तैया भी अविवाहित था। वह क्षमादत्त साक्षी बडगे का सेवक था। घटनास्थलपर वह दि. २० को अुपस्थित था।

गोपाल गोडसे (प्रस्तुत लेखक) नथूराम का सगा भाअी है। अुसकी क्रम-संख्या छ: थी। हिन्दुस्थानके सेनासाहित्यालयमें (ऑर्डनन्समें) अुसने आठ वर्ष सेवा की। दूसरे जागतिक युद्धमें वह परदेश गया था।

लौटनेपर अुसकी नियुक्ति पूनाके निकट खडकी में हुवी। २० जनवरी १९४८ को वह घटनास्थलपर अुपस्थित था। षडयन्त्रका घटक होनेका अुसपर आरोप था। वह विवाहित था। अुसके दो कन्यायें थीं।

दिगंवर बडगे हिंदूसंघटक था। यह शस्त्रास्त्रों का व्यापार करता था। उसकी मनोभूमिका थी कि हिंदू जहाँ अल्पसंख्यक हों वहाँ वे शस्त्रधारी हों और उनमें प्रतिकार की क्षमता हो। मदनलालने जिसका विस्फोट किया वह गन कॉटन स्लैब बडगेने दी थी ऐसा अभियोजकों ने कहा था। बडगे से और कुछ विस्फोटक एवम् शस्त्र आरक्षियों को प्राप्त हुये थे। बीस जनवरी को वह घटनास्थल पर था।

अभियुक्त क्रमांक आठ दत्तात्रय परचुरे डॉक्टर थे। वे एक कुशल हिंदू-संघटक थे। मुस्लिमों के आक्रमण उन्होंने प्रत्याक्रमण से लौटाये थे। उनपर आरोप यह था कि नथूरामने प्रयोग की छरिका उन्होंने दी थी। डॉक्टर परचुरे से आरक्षियों ने बलात् स्वीकारोक्ति (कन्फेशन) प्राप्त की। उच्च न्यायालय ने उस स्वीकारोक्ति की वैधता स्वीकार नहीं की।

श्रवण

अभियुक्तों ने अपने अपने बचाव के हेतु अभिवक्ता नियुक्त किये थे। फिर भी आरोपो के उत्तर न्यायालय को अभियुक्तो को स्वयं देने थे। उन्होंने वैसे उत्तर दिये। उसके पूर्व उन्होंने अपने अपने लिखित निवेदन भी न्यायालय को प्रस्तुत किये।

नथूरामने भी अपना लिखित निवेदन दिया। उस में विशेषकर दूसरे अध्यायसे, उसने गांधीजी को मारने के कारणो का विस्तार दिया है। शासन के पास समाचार पत्रोंका गला रुद्ध करने की शक्ति थी। उस उन्मत्त शक्तिप्रयोग से शासनने नथूराम के निवेदन के पुनर्मुद्रण पर प्रतिबंध लगाया।

इस रोक के पीछे शासनका हेतु था कि नथुराम के निवेदन द्वारा गांधीजी की राजनिति का दुर्व्यवहार प्रदर्शन लोगोंतक न पहुँचे। उनकी इच्छा थी कि हत्याकारी के संबंध में जो घृणा एवम् निंदा का वातावरण उत्पन्न हुवा था वह वैसा ही बना रहे। सत्यस्थितिका दर्शन उन्हें छुपाना था। स्यात् शासन की धारणा थी कि सत्यका गला घूटने सेही सत्यवादी गांधी को उचित श्रद्धांजलि मिलेगी।

शासन के इस दुर्व्यवहार को उन दिनों आव्हान देने का साहस कोई नही कर सकता था। आव्हान न मिलने के कारण वह निवेदन अंधेरेमेंही रहा। अन्त में जिस विधिके अंतर्गत वह प्रतिबंध था वही समाप्त हुवा। लगभग तीस वर्ष पश्चात् मूल अंग्रेजी निवेदन, May it please your Honour पुस्तक के माध्यम से पाठकों को पहुँच गया। (हिंदी 'गांधी वध क्यों ? 'पुस्तक ७।८ वर्ष पूर्वही प्रथम बार प्रकाशित हुवी थी।)

नथूरामने अपने बचाव का अभिभाषण स्वंही करने का निर्णय किया। अपने अभिभाषण में उसने हत्या के आरोप सिद्धि को प्रतिरोध नही दिया। उस के युक्तिवाद का सत्य सार प्रकाशित करने पर भी शासनका प्रतिबंध था।

निर्णय पत्र

अभियोजक १४९ साक्षी लाये। ३०दिसंबर १९४८ को श्रवण समाप्त हुवा। निर्णय दिनांक १० फरवरी १९४९ को सुनाया गया।

स्वातंत्र्यवीर सावरकर निर्दोष घोषित किये गये। दिगंबर बडगेने अपने सहाभियुक्तों के विरुद्ध साक्ष दी इसलिये उस को क्षमा प्रदत्त हुवी। किष्णु करकरे, मदनलाल पहवा, गोपाळ गोडसे, शंकर किस्तैया और डॉक्टर परचुरे को आजन्म निष्कासन सुनाया गया। उसके साथही कारावास के और भी दण्ड दिये गये।

नथूराम गोडसे एवम् नारायण आपटे को मृत्यु दंड घोषित किया गया।

ज्योंही दण्ड सुनाये गये पूरा भरा न्यायालय दंडितों के उद्घोष से गूंज उठा।

अखंड भारत अमर रहे। वन्दे मातरम्। स्वातंत्र्यलक्ष्मी की जय।

विशेष विधि का स्वरुप

वैसे लोक सत्ताक माने गये शासन में गांधीजी को विशेष स्थान था। इसलिये 'बाँबे पब्लिक सेक्युरिटी मेजर्स अॅक्ट' यह विशेष विधि दिल्ली पर लगाया गया। उस को पूर्व परिणाम (रिट्रास्पेक्टिव इफेक्टव) दिया गया।

उस विधि के अनुसार विशेष न्यायालय का आयोजन हुवा। अभियोग उस विधि के अंतर्गत चला।

नागरिक को न्याय के संमुख प्राप्त समानता इस विधि में नही थी। अभियुक्तो के कुछ अन्य अधिकार रहते हैं वे भी छिने गये थे। हिंदुस्थान का सर्वोच्च न्यायालय स्थापित नहीं हुवा था। बाद में किसी समय सर्वोच्च न्यायालयने इस विशेष विधि को असांविधानिक घोषित किया। किंतु इस अभियोग के दंडितो को उस अवैधता की घोषणा का लाभ नहीं मिल पाया।

पुनरावेदन

सभी सात दण्डितोंने अपने अपने पुनरावेदन बंदीगृह के माध्यम से पंजाब उच्च न्यायालय को प्रस्तुत किये। पहले पंजाब उच्च न्यायालय लाहोर में बैठता था। पारंपरिक धारणा है कि श्री रामचंद्रजी के पुत्र लवने लाहोर बसाया था। उसका पहला नाम था लवपुर। किंतु आज वही लाहोर, वही लवपूर एक विचित्र बिपरीत एवम् अनिष्ट संयोग से पाकिस्तान का भाग बना था। उच्च न्यायालय भी निर्वासित बना था।

विभाजित हिंदुस्थान में उस न्यायालय का तात्कालिक स्थान शिमला में था।

नथूरामने जो पुनरावेदन किया वह षड्यन्त्रकी आरोप सिद्धि के विरुद्ध, और दूसरे आरोपों की दोषसिद्धि के विरुद्ध था।

मृत्यु दण्ड के विरुद्ध उसने पुनरावेदन नहीं किया। उसने स्वयं अपना युक्तिवाद प्रस्तुत करना चाहा। उसे अनुमति मिली। उस समय तक सभी दण्डितो को लाल किले के विशेष बंदीगृह अंबाला बंदीगृह में स्थानान्तरित किया गया था।

अन्य अभियुक्तों के अपने अपने विधिज्ञ थे।

सर्वश्री भंडारी, अच्छ सलरा और खोसला का न्यायपीठ बनाया गया। मई और जून १९४९ में पुनरावेदनों का श्रवण हुवा।

अपना निर्णय न्यायपीठ ने दि. २१ जून १९४९ को घोषित किया।

शंकर किस्तैया एवम् डॉ. परचुरे निर्दोष प्रमाणित हुवे। वे बंधमुक्त किये गये।

विष्णु करकरे, मदनलाल पाहवा एवम् गोपाळ गोडसे के दंड स्थिर रहे।

नारायण आपटे का मृत्यूदंड भी स्थिर रखा गया। नथूराम का मृत्यूदंड आपही आप स्थिर रहा।

नथूराम का व्यक्तिमत्व इतना स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय नथूराम के वर्तावसे एवम् क्षमता से प्रभावित हुवा था। अपने निर्णयपत्र में न्यायालयने नथूराम के गुण विशेषो का उल्लेख किया है।

न्यायमूर्ति उच्छलराम लिखते हैं

उच्च न्यायालय में पुनरावेदन (अपील) करनेवालो में से नथूराम गोडसे ने धारा ३०२ के अनुसार हुवी दोषसिद्धि को आव्हान नही किया। फांसी के विरुद्ध भी उसने पुनरावेदन नही किया। उसने अपना पुनरावेदन और अपने युक्तिवाद उस पर प्रमाणित ठहर गये दूसरे आरोपोंकी परिधि में ही सीमित रखे। *उसने स्वयंही अपना अभिभाषण किया।*

उसने वस्तुस्तिति के घटकों का जो विवेचन दिया उस से उसकी आलक्षणीय क्षमता का साक्षात मिला। किसी भी अभिवक्ता को सराहनीय हो इस प्रकार उसमे अपने युक्तिवाद प्रस्तुत किये यह कहनाही पडेगा।

नथूराम की विचार क्षमता के संबंध में वे लिखते हैं, 'यद्यपि वह मैट्रिक परिक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया था, किंतु उसका अध्ययन गहन है। अपने प्रतिवेदन पर बहस करते हुवे उसका अंग्रेजी का गंभीर ज्ञान और सोचने विचारने की स्पष्ट क्षमता दर्शनीय थी।'

नथूरामने अपने अभिवक्तव्यमें एक भूमिका प्रस्तुत की थी, "दिनांक २० जनवरी १९४८ को, अर्थात् गांधीजी के प्रार्थना स्थलपर धमाका हुआ अुस दिन मैं वहाँ पर नहीं था। मैं पीछे रहा था क्यों कि मेरे सिरमें पीड़ा थी।" अिस भूमिकाको काटने के लिये न्यायमूर्तिने आधार लिया आँखों देखी नथूरामकी क्षमता का। न्यायमूर्तिने यह तो माना है कि अुसके मस्तिष्कमें पीड़ा होगी। किन्तु अैसे महत्वके क्षण अुसके जैसा समर्थ व्यक्ति पीछे रहा हो अिस बातको मानने के लिये वे सिद्ध नही थे। वे कहते हैं, – –

"ये पुनरावेदन हमारे सामने पाँच सप्ताहोंसे अधिक समय चले। अुस अवधिमें और विशेषकर जो आठ या नौ दिन नथूराम स्वयं अपना अभिवक्तव्य कर रहा था उस समयमें हमने उसको भली भाँति परखा है। उसके जैसा कर्तृत्ववान् मनुष्य अैसा पीछे रहने का विचार भी मनमें लायेगा यह हम सोच तक नहीं सकते।"

निर्दोष

न्यायमूर्ति श्री खोसलाने गांधीवध के लगभग पंद्रह वर्ष पश्चात् अपनी सेवानिवृत्ति होनेपर दस घटनाओं का अेक ग्रंथ लिखा। उसमें गांधीवध अर्थात नथूराम गोडसे का अभियोग यह भी अेक अध्याय है। श्री खोसला के मनपर उस समय जो मुद्रा अकित हुओ थी वह उन्होंने शब्दांकित की है। वे लिखते हैं–

"नथूराम का अभिभाषण दर्शकों के लिये अेक आकर्षक दृश्य था। खचाखच भरा न्यायालय अितना भावाकुल हुआ था कि लोगोंको आहें और सिसकियाँ सुनने में आती थी और उनके गीले गीले नेत्र और गिरनेवाले आँसू दृष्टिगोचर होते थे। न्यायालयमें उपस्थित उन प्रेक्षकोंको यदि न्यायदान का कार्य सौंपा जाता, तो मुझे तनिक संदेह नहीं है कि उन्होंने अधिक से अधिक संख्यामें यह घोषित किया होता कि नथूराम निर्दोष है।"

लाल किलेके विशेष न्यायमूर्ति श्री आत्मचरण के सामने अपना अभिभाषण करते समय भी नथूरामने उसी क्षमता का परिचय दिया था।

अनुपलब्ध अभियुक्त

डॉ. परचुरे के दांडित्य पर अथवा मुक्तता पर अनुपलब्ध अभियुक्तोंका भविष्य निर्भर था। डॉ. परचुरे मुक्त होने पर तीनों अभियुक्त गवालियर के न्यायालयमें उपस्थित हुए। उन्हें उन्मुक्त किया गया।

उस समयका 'आपत्काल'

उच्च न्यायालयमें नथूरामके किये अभिभाषणके संबंधमें भी शासनने समाचारपत्रोंको दबाये रखा था। नथूरामका भाषण भावपूर्ण अेवं रोमांचक था। अैसा संयोग कभी आता नहीं है। समाचारपत्रोंको उस बातोंमें बड़ी रुचि थी। संवाददाताओंने लघुलिपि में भाषण लिखा था। किन्तु जैसे ही न्यायाधीश अपने वेश्ममें लौटे, आरक्षी संवाददाताओं पर झपटे और उन्होंने उनकी चोपडियाँ छीनी। आरक्षी वहीं पर नहीं रुके। उन्होंने चोपडियाँ फाड डाली। अतिरिक्त, संवाददाताओंको धमकाया कि यदि अिस वक्तव्यका यथातथ्य अर्थात् सत्यस्थिति-दर्शक समाचार प्रकट करोगे, तो कठोर परिणाम भुगतना पडेगा। समाचार-पत्रोंको इस धमकीसे डरना ही अनिवार्य था। इसलिये समाचारपत्रोंने जो समाचार मुद्रित किये उनमें असंबद्धता थी और विकृतता भी।

कुछ समाचारपत्रोंमें गांधीवधकाण्डके विषयकी समालोचना थी। वह भी मृत्युदण्डके कार्यवहन के पश्चात। उन पत्रोंसे प्रतिभूति माँगी गयी। और उनको सताया भी गया। सत्यके प्रति प्रेम रहना दूर रहा, उसके विपरीत शासन सत्यसे घिन करता था। अपने को वह गांधीवादी कहलाता था। इस कारण यह विपरीतता अधिक स्पष्ट लगती थी।

फाँसीका कार्यवहन

अंबाला बंदीगृहमें दिनांक १५ नवम्बर १९४९ को प्रातः ८ बजे नथूराम गोडसे अेवं नारायण आपटे की फाँसीका कार्यवहन किया गया। तब तक गांधीवध की घटनासे साढे अिक्कीस मास बीते थे। उन दोनों के उन दिनों के व्यवहार के विषयमें या दिनक्रम के विषयमें लेखकोंने भिन्नभिन्न वर्णन दिये हैं। उनमें से कुछ बहुतही विपर्यस्त हैं। लेखक स्वयं अेवं उसके सहदण्डित विष्णु करकरे और मदनलाल पाहवा फाँसी के पूर्व २० मिनिटपर्यन्त फाँसीवालों के सान्निध्य में थे। वे दोनों निश्चल थे। स्थिर थे, शांत थे। उनकी बातचीतमें सदा की अपेक्षा कोओी भिन्नता नही थी। अिस स्थिरता को बनाये रखनेके लिये उन्हें कोओी प्रयास भी नही पडता था। उनकी मुद्राएं शात थीं। वे बोलते थे, गप्पें लगाते थे, सहज विनोद भी करते थे। वे हम सहदंडितोंसे बोलते थे, आपस में बोलते थे, और बंदीगृह के कर्मचारियोंसे भी वार्तालाप करते थे।

हम दंडितोंने अेकसाथ वहाँ चाय और कॉफी का पान किया।

• • अेक आरक्षी चायकॉफीका ट्रे लाया था। नथूरामने वहाँ उपस्थित अधीक्षक अर्जुनदास की ओर देखा और स्मित किया।

अर्जुनदास मनकी अैसी अवस्थामें नहीं थे कि स्मितको प्रतिसाद दें। अिन फाँसीवालोंको वे कुछ मिनटोंमेंहो निष्प्राण करने वाले थे। उन्हें लगता था कि उनके लिये वह बडी कठोर विपदा है। अर्जुनदास अिन दोनों के मित्र बने थे। उनकी कोठी के पास बैठकर वे घंटोंतक बातें किया करते थे। घटनाओंकी राजनीतिक नींव को वे जानते थे।

उन दो दंडितोंकी राष्ट्रीय एकात्मता की भावनाको वे पहचानते थे। वे सोचते थे, हजार मीलसे अधिक दूरीपर स्थित अिन महाराष्ट्रवासियोंको पंजाबके कटनेका दुःख क्यों हुआ ? जो लोग उध्वस्त बन निर्वासित हुअे उनके प्रति अिन महाराष्ट्रवासिओंकी समवेदना कैसे निर्माण हुअी ? अिस आगमें वे स्वयं क्यों कूद पड़े ?

अधीक्षकने स्वाधीनताकी प्रसवावस्थासेही रक्तपात देखा था। बिना रक्तके स्वाधीनता मिली अैसा बकनेवाले दांभिकों की वे भर्त्सना करते थे। वे सोचते थे; पंजाबका यह रक्तपात किसके नाम लिखा जाय ?

तिसपर यह अधीक्षक उस रक्तपातमें अिन युवकोंकी फाँसीसे अधिकता लाने वाले थे, और वह भी निर्विकार रह कर।

नथूरामके स्मितसे अर्जुनदास कुछ अन्यमनस्क हुअे। उन्होने अनायासही अेक आह निकाली। हमें लगा, उस आहसे उन्होंने मानो अपने आंसू छिपाअे। व नथूरामको प्रतिस्मित कैसे दे सकेंगे ?

किंतु उन्होंने सोचा, स्यात् इन वधस्तंभपर खडे युवकोंकी यह अन्तिम अिच्छा होगी। क्यों न उन्हें प्रसन्न रखा जाय ? उन्होंने बलात् स्मितका स्मितसे उत्तर दिया और प्रश्नार्थक मुद्रासे उन्होंने नथूरामकी ओर देखा।

नथूराम बोला, ' महोदय आपको स्मरण है ? मैंने आपसे एक बार कहा था, फाँसीकी कोअी चिंता नहीं है, किन्तु डोर में लटकनेसे पहले मुझे एक प्याली कॉफी दें। वह प्याली मेरे सम्मुख है। धन्यवाद महोदय। आभार। '

अिस सहज किन्तु भावाकुल बातने अर्जुनदासके हृदयको स्पर्श किया। उन्हें सिसकी नही आयी।

डॉक्टर की ओर नथूरामने दृष्टिक्षेप किया। उन्हें वह बोला, ' डॉक्टर छाबडा, आपकी पुस्तक मैंने उपअधीक्षक त्रिलोकसिंग के पास दी है। मेरे हस्ता-क्षर भी उस पर हैं। और हस्ताक्षर तो नहीं चाहिये ?'

अेक दिन पूर्व अपने मामासे नथूरामने कहा था, आपके एक हजार रुप (हिन्दुराष्ट्र मुद्रणालयमें स्थिर-निधिके रूपमें दिये हुअे) लौटानेका मैंने प्रबन्ध किया है। उसी सहजतासे नथूरामने डॉक्टरसे आज बात की थी।

नारायण आपटेने अपना प्रबन्ध (थीसीस) अुचित अधिकारियोंको भेजनेके लिये अधीक्षकसे कहा। 'प्रशासन व्यवस्था' अिस विषयपर आपटेने अन्तिम दस दिनोंमें अेक प्रदीर्घ निवन्ध लिखा था।

अधीक्षकने वह शासनको भेजा था। किंतु शासनने अभी तक वह आपटे की पत्नीको अथवा उनके बंधुओंको भेजा नहीं है।

जिलाधीश श्री नरोत्तम सहगल ने यह परीक्षा की कि अिन यात्रिओंके पास अज्ञात को जानेका यथायोग्य पारपत्र (पासपोर्ट) है या नहीं। अुन दोनोंका जीवनके परे जानेकी यात्राका प्रस्थान हुआ। अपने हाथमें अुन्होंने भगवत्‌गीता, अखंड हिंदुस्थानका मानचित्र और भगवा ध्वज लिये थे।

फांसी कोठीके पिछले भागमें फांसीका मंच था। अुसपर अेकसाथ तीन जनोंको फांसी देनेकी व्यवस्था थी।

शीत कालके अुस दिन प्रातःकालको धूप नाना आपटेको बडी सुखकारी लगी। बहुत दिनोंके बाद वे वह अनुभव ले रहे थे।

"पंडित ! यह हलकी धूप कितनी सुहावनी है।" अुन्होंने नथुरामसे कहा। नथुरामको वे कभी कभी पंडित करके संबोधते थे।

नथुरामने उत्तर दिया, "तुम्हें यह बहुत दिनोंके अंतरसे मिल रही है। शिमलामें अैसी धूप मानो सदाही होती है।"

"वायु मंडल बडाही प्रसन्नसा लगता है। स्वर्गीय।"

"अिस स्वर्गीय क्षणमें मातृभूमिने हमपर बरसाया यह प्रेम।"

मंचपर पहुंचतेही अुन दोनोने मातृभूमिका स्तवन किया।

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे। त्वया हिंदुभूमें सुखम् वर्धितोऽहम्॥
महामंगले पुण्यभूमे त्वदर्थे। पतत्वेपकायो नमस्ते नमस्ते॥

अुन दोनोंके हाथ पीछे बांधे हुवे थे। वधिकने डोरका फंदा अुनके गलेमें ठीक किया और डोरकी अतिरिक्त लंबाअी अुनके कन्धेपर रखी प्रत्येकके पैर के अंगूठे रस्सीसे बंधे हुअे थे।

आसपास नीरव शांतता थी। नथूराम और नारायणने जयघोष किअे जो सौ फूट की परिधिमें गूंज अुठे — 'अखंड भारत अमर रहे।' 'वन्दे मातरम।'

ध्वनि प्रतिध्वनि वायुमंडलमें लुप्त हुअे। अधीक्षकने वधको संकेत दिया। वाधकने मंचका डंडा खींचा। उसका सेतु टूटा। गुरुत्वाकर्षणसे धरतीकी ओर खीचे गये अुन दोनोंको निसर्गने अलिंगन दिया। अुनकी अन्तयात्राकी पूर्तिके लिये अुन्हें अपने अगोचर रथमें बिठाया।

यह रक्तलांछित प्रक्रिया डोरके अेक झटकेसे संपन्न हुअी, किन्तु रक्तकी अेक भी बूंद नहीं गिरी।

नथूरामकी मृत्यु तत्काल हुअी। नारायण आपटेके घुटने अेक बार ठोडीकी ओर खींचे गये। आपटे अचेतावस्थामें दो मिनट हिलते रहे। फिर सब निश्चल, शान्त हुवा।

अुपअधीक्षक श्री रामनाथ शर्माने दाह संस्कार किया। अुन दोनोंकी अपने हाथ रखी वस्तुएं प्रस्तुत लेखकको सौंपी गयीं।

दहन बंदीगृहकी परिधि में हुवा। नथूरामका लिखा मृत्युपत्र दूसरे दिन अुनके कनिष्ठ बंधू दत्तात्रयको दिया गया। (अिस पुस्तकके अन्तमें अुसका चित्र है।)

आजन्म कारावासी

अिस अभियोगके तीनों आजन्म बन्दियोंके साथ शासनका व्यवहार असाधारण क्रूरताका अेवम् प्रतिशोधक रहा। विशेषकर अुनकी मुक्तताके बारेमें शासन पराकाष्ठाका क्रूर रहा।

'आजन्म निष्कासन' ट्रान्स्पोर्टेशन फार लाअिफ' शब्दोंकी आड शासन छिप गया। यदि दंडितोंको निष्कासित किया जाता तो वे मुक्त जीवन बिताते। किन्तु शासनने अपनी सुविधाके लिये अुनका निष्कासन नही किया। तिसपर अुन तीन जनोंपर शासनकी दुष्ट आँख थी। अुन्हें बंदीगृहमें सडागलाकर निष्प्राण कर, अुस क्रूरताका आनंद लूटनेका शासनका हेतु था।

सश्रम कारावासीको दंडमें कुछ छूट मिलती है। अुसे 'रेमिशन' कहते है। दंडितका किया काम और अुसका बर्ताव अुस प्राप्त छूटसे परखे जाते है।

आजन्म दंडित सश्रम कारावासी होता है। प्राप्त छूटके अनुपातमें अुसका दण्ड घटता है।

प्रस्तुत लेखकने नियमोंकी अपेक्षाकृत पूर्ति की। उसके अतिरिक्त, अपने देशने रक्तदानके लिये आवाहन किया था तब उसने रक्तदान भी किया। प्रति रक्तदान-पर शासन दस दिनकी छूट देता है। लेखककी अितिहासपत्रिकापर वह छूट लिखी गयी। किन्तु अुसका लाभ लेखकको कभी नहीं दिया गया।

दीर्घावधि बंदियोंकी मुक्तताके लिये कुछ समितियाँ नियुक्त होती हैं। वे लेखककी मुक्तता स्थगित करती गयी और अुनकी दी तिथिके परे शासन तिथि देता गया।

सम्भवतः शासनाधिष्ठित व्यक्तियोंकी कुछ श्रद्धा होगी। अिस अभियोगके दण्डित अखण्ड हिन्दुस्थानवादी थे। अुनके साथ अिस प्रकार हीन वंचनात्मक व्यवहारसे अुनकी अहिंसक मृत्यु भी होगी और अुसमे अहिंसा व्रतकी सेवा भी होगी। शासन अिस भावुकतामार्गसे चला होगा।

यह राज गांधीवादी कहलाता था। अिन दण्डितोंकी अहिंसक मृत्युका नैवेद्य अपने गुरुको स्मृतिको अर्पित कर अुसकी कृपा प्राप्त करनेकी शासनकी मनीषा होगी। अन्यथा, बंदीगृहके किसी भी नियममें न बैठनेवाले रक्तदानके लिये बंदीको आवाहन करना और अुससे रक्तदान लेनेपर प्रतिदानमें अुसे दी गयी छूटका अेवम् रक्तका क्षुद्र मनसे अपहार कैसे समर्थनीय होगा ?

प्रस्तुत लेखकने अनुभव किया कि राज्याधिष्ठित लोग वंचक हैं, धोखा देनेवाले हैं। उसने जाना कि लेखक दुर्बल और बंदी होनेके कारणही अुन्होंने यह वंचना की है। अिसलिये अुसने शासनकी छूट लेनेसे अिनकार किया और रक्तदान किया। देशके आवाहनके प्रति वह तत्पर था। राष्ट्रके लिये अुनके मनमें आदरकी भावना थी ही। किन्तु अिन चोरोंके लिये अुसको आदर नहीं रहा। अुनके आश्वासन को मूल्यही नही रहा। सचाईसे रहो अैसा उपदेश मात्र वे करते थे। किंतु साधारण मनुष्यमें विद्यमान सचाअीका भी उनके पास अभाव था। अैसे झूठे प्रतिष्ठितोंमेंसे कुछ लोग जब राजघाट जाकर गांधीजीकी समाधिपर फूल चढ़ाते हैं और सत्य अहिंसाकी शपथ को दोहराते है, तब लगता है कि जनताको मूर्ख बनानेके लिए हिंदुस्थानमें चिरकाल पर्यन्त स्थान है।

लेखकने अपनी मुक्तताके प्रश्नपर अेकके पीछे अेक बाअीस याचिकाए सर्वोच्च न्यायालयको प्रस्तुत कीं। वह शासनके व्यक्तियोंका भ्रष्टाचार अेवम् अुनकी अप्रामाणिकताको प्रमाणित करनेमें सफल नहीं रहा। अपनेको अप्रिय दण्डित के प्राणोंपर शासनने अधिकार ।ःया था।

लेखकका अन्तिम आवेदन सर्वोच्च न्यायालयमें विचाराधीन था। लेखकने अपना कथन प्रस्तुत किया। न्यायालयने शासनको आदेश दिया कि आवेदन श्रवणके लिये क्यों न लिया जाय ? अुस बीच दिनांक १३ अक्तुबर १९६४ को लेखक और अुसके सहदण्डित करकरे अेवम् मदनलाल को मुक्त किया गया। छूटके समेत अुन सबका छब्बीस वर्षसे अधिक कालावधी हुवा था। अिन दण्डितोंकी मुक्तताके पूर्व कुछ मास पंडीत जवाहरलाल नेहरू का देहान्त हुवा था।

सर्वोच्च न्यायालयने लेखकको अनुकूल निर्णय कभी दिया नहीं था। किन्तु यह भी सत्य है कि यदि सर्वोच्च न्यायालयका अस्तित्व नहीं होता तो शासनने अिन दण्डितोंको छोडनेका कभी विचार भी नहीं किया होता।

मुक्त जीवन

श्री विष्णु करकरे अेवम लेखक के मित्रोंने अेक स्वागत समारोह पुनामें आयोजित किया था। सत्रह वर्षके पश्चात वे छूटे थे अिस हेतु आनंद व्यक्त करनेके लिए वह समारोह था। किंतु शासन अुस आनंदकी अभिव्यक्तिसेही क्रुद्ध हुवा। स्थानबद्धता के विधि अंतर्गत अुनके छूटनेके चालीस दिन पश्चात अुन्हें फिरसे बंदीगृहमें ठूंसा गया। अेक वर्ष अधिक अवधी वे अिस नये संत्रासकी बलि बने।

छूटनेपर लेखकने लेखनी हाथ में ली। गांधी वध की घटनापर अुसकी पहली पुस्तक मराठीमें 'गांधीहत्या आणि मी' नामसे प्रकाशित हुअी। अुस पुस्तकमें जो विषय है अुनमेसे अेकमें शासनके असत्यप्रयोग अेवम क्षुद्रताका विवरण दिया है। शासनने अन्य कोअी कारण दिखाकर अुस पुस्तकपर प्रतिबन्ध लगाया।

महाराष्ट्रके अुच्च न्यायालयने प्रतिबंध हटाया और आदेश दिया कि लेखकको न्यायालयीन व्ययके अुपलक्ष्यमें तीन सहस्त्र रुपये दिये जायें।

तत्पश्चात अुस ग्रंथके कअी संस्करण निकले। अन्य भाषाओंमें भी वह अनुदित हुवा। हिन्दी में नाम है 'गांधी वध और मैं।'

लेखक पूनामें वितस्ता प्रकाशन चलाता है। झेलम नदीका वेदकालीन नाम है वितस्ता।

श्री विष्णु करकरेने अहमदनगर में अपना निवासालय का व्यवसाय फिरसे प्रारंभ किया। दिनांक ६-४-१९७४ को उनका देहावसान हुवा। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती अब उस व्यवसाय में व्यस्त है।

श्री मदनलाल पाहवाने छूटनेके पश्चात महाराष्ट्रीय युवती दमयंती कवली से विवाह किया। वे बम्बई में निर्माणियों के लिये वस्तुओं के आदान प्रदान का व्यापार करते हैं।

स्वातंत्र्यवीर सावरकरने बम्बई में दिनांक २६ फरवारी १९६६ को अनशानसे आत्मार्पण किया। उन्होंने ब्रिटिश राजमें भी कठोर यातनाअें सही थी। बंदिवास भुगता था। और स्वाधीनता आनेपर भी समय समयके कांग्रेस शासन द्वारा वैसीही विपदाअें सही। उनका एकही अपराध था। हिंदुओं के न्याय्य अधिकारो का वे आग्रह रखते थे और हिंदुस्थानके विभाजनको उनका कडा विरोध था। सत्य यह है कि विभाजित हिंदुस्थानमें भी मुसलमानों को स्वाधीनता प्राप्त हुवी। हिंदु सेक्युलेरिझम के दांभिक जालमें लिपटे गये और परतंत्र रहे।

अधिकृतता :-

इसके पश्चात् नथूरामका न्यायालयीन निवेदन प्रारंभ होता है। पंजाब उच्च न्यायालयके श्रवणके हेतु गांधी हत्या कांड नामसे ग्रंथ मुद्रित हुवे। उसपर पुनरावेदन क्रमसंख्या ६६ से ७२, वर्ष १९४९ अंकित है। दूसरे खंडमें मूल निवेदन है। राष्ट्रीय अभिलेखागार नयी दिल्लीमें ये अभिलेख इस वर्षसे (वर्ष १९७९ से) परीक्षण हेतु उपलब्ध होंगे।

मान्यवर न्यायर्पि

दिल्ली लालकिले के विशेप न्यायाधीशका वह न्यायालय था। 'अभियोजक राज्य – विरुद्ध अभियुक्त विनायक नथूराम गोडसे और अन्य ' अभियोग चल रहा था।

अभियोजकोने अपने साक्षी एवम प्रमाण पूरे किये थे।

विशेप न्यायमूर्ति श्री. आत्मचरण आसनस्थ हुवे। न्यायालय नीरव हुवा। अभियुक्त कठघरेमें अपने क्रममें बैठे थे। दोनों ओरके अधिवक्ता उपस्थित थे। सवाददाता अपनी लेखनियाँ संभाले बैठे थे।

उनका कुतूहल पराकोटिको पहुँचा था। न्यायालय खचाखच भरा था। अनुमति पत्रपरही न्यायालयमें प्रवेश था।

न्यायमूर्ति उस दिन अभियुक्तोका निवेदन सुननेवाले थे। वह दिन था ८ नवबर १९४८।

आपराधिक परिन्याय संहिता (क्रिमिनल प्रोसीजर कोड) धारा ३४२ के अनुसार न्यायमूर्तिने अभियुक्तोको पूछना प्रारंभ किया। शब्द सुने गये, अभियुक्त क्रमांक एक, नथूराम विनायक गोडसे, वयस् ३७, संपादक हिंदुराष्ट्र, पुणे . . . .

अभियुक्त क्रमाक एक ये शब्द सुनतेही नथूराम उठ खडा हुवा।

न्यायमूर्ति वोले, ' अभियोजकोंके तुम्हारे विरुद्ध प्रस्तुत किये प्रमाण तुमनें सुने है। तुम्हें क्या कहना है?'

" महोदय। मुझे अपना लिखित निवेदन प्रस्तुत करना है। " नथूरामने उत्तर दिया।

" अच्छा ; पढो अपना निवेदन। " न्यायमूर्ति ने आज्ञा की।

उसी समय प्रमुख अभियोजक श्री दप्तरीने आपत्ति नठायी। उन्होंने कहा, " इस अभियोगसे सबधित निवेदन मात्र अभियुक्त करे। अन्यथा उसे निवेदन पढनेकी अनुमती न दी जाय। "

न्यायमूर्ति ने वह आपति अस्वीकार की। अपना निवेदन पढनेके हेतु नथूराम ध्वनिक्षेपकके पास खडा हुवा। नीरवतासे न्यायालयमें मानो अवकाश निर्माण हुवा था। शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे अवकाश व्याप्त करने वाले शब्द गूँजे – " मान्यवर न्यायर्पि। "

८

निवेदन

भाग १

आरोपपत्रको उत्तर –

मैं, नथूराम विनायक गोडसे, उपरिनिर्दिष्ट अभियोगमें अभियुक्त क्रमसंख्या एक, नम्रता पूर्वक निम्न निवेदन प्रस्तुत करता हूं।

१ – मुझपर जो भिन्न भिन्न आरोप लगाये गये हैं, उस संबंधमें विवेचन देनेके पूर्व मैं नम्रतासे कहना चाहता हूँ कि जिस पद्धतिसे आरोपोंको गूँथा गया है, वह पद्धतिही विधिविसंगत है। आरोपोंमें असंबद्धता है। बीस जनवरी की एवं तीस जनवरी १९४८ की घटनाको अलग अलग रखकर अभियोग चलाना चाहिये था। उन दोनों घटनाओंके लिये एक ही अभियोग चलाया गया। अतः वह दोषपूर्ण है।

२ – ऊपर दिये मेरे विधान को क्षति न देते हुये, मुझपर लगाये गये आरोपोंके विषयमें निम्न निवेदन दे रहा हूँ।

३ – अभियुक्तोंके विरुद्ध आरोपपत्रमें कई आरोप हैं। एक आरोप है कि अभियुक्तोंने व्यक्तिशः अथवा दूसरेकी सहायतासे अपराध किये हैं। भारतीय दण्डसंहिताके अनुसार (इंडियन पीनल कोड के अनुसार) और अन्य विधियोंके अनुसार दण्डनीय माने गये आरोप भी लगाये गये हैं।

४ – आरोपपत्रसे अभियोजकोंका कहना स्पष्ट होता है। बीस जनवरी एवं तीस जनवरी १९४८ की घटनाऐं एकही षडयंत्रकी शृंखला है, जिसका पर्यवसान गांधी वधमें हुआ ऐसा उनका आग्रहपूर्वक कहना है। इसलिये मैं पहले पहल कहता हूँ कि बीस जनवरी पर्यंतकी घटनाऐं अलग हैं और तत्पश्चात् घटी तीस जनवरी की घटनासे वे संबंध नहीं रखती।

५ – प्रथम और महत्वका आरोप है कि अभियुक्तोंने गांधीवध करने के हेतु षड्यंत्र रचा। इसलिये उस विषयका विवेचन मैं सर्वप्रथम करता हूँ। मेरा कहना है कि आरोपपत्रमें उल्लेखित कोई भी अपराध करनेके हेतु कोई भी षडयंत्र अभियुक्तोंने नहीं किया है। मैं यह भी स्पष्ट करता हूँ कि इनमेंसे कोई भी अपराध करनेके हेतु मैंने किसीसे गठबन्धन नहीं किया।

६ – मैं कहता हूँ कि अभियोजकोंके प्रस्तुत किये प्रमाणोंसे पडयंत्र अथवा पडयंत्र – आरोप नहीं सिद्ध हो सकता। साक्षी क्रमसंख्या ५७ दिगंबर रामचंद्र बडगे मात्र पडयंत्रके आरोपके विषयमें बोलता है। वह साक्षी पूरा पूरा अविश्वासाहं है। मेरे अधिवक्ता बडगेके कथनकी छानबीन करते समय यह स्थिति समझा देंगे।

७ – अभियुक्तोंने विना अनुमतिपत्रके शस्त्र एवं गोलाबारूद इकठ्ठा किया; और उनकी यातायात की इस बीस जनवरी के संबंधके आरोपोंका मैं इन्कार करता हूँ। मैंने गनकॉटन स्लॅब, हस्तध्वम् (हैंड ग्रेनेड) डिटोनेटर, वत्तिय छरिकाऍं (पिस्तौल) अथवा छर्रे इनकी न यातायात की न वे वस्तुऍं मेरे स्वाधीन थी। बीस जनवरीको अथवा उसके पूर्व अथवा उसके आसपास मैंने ऐसी अवैध वस्तुओंकी यातायात के हेतु किसीकी सहायता नहीं की। अतः मैंने भारतीय स्फोटक वस्तु विधिका (इंडियन एक्सप्लोझिव्ह सब्स्टन्स अॅक्ट का) कहीं भी उल्लंघन नहीं किया है। इसलियें उस विधिकी कक्षामें मैं दण्डार्ह नहीं हूँ।

८ – इस आरोप का प्रमुख साक्षी दिगंबर बडगे है। परिच्छेद ६ में मैंने कहा ही है कि वह साक्षी विश्वासार्ह नहीं है। मैं इस बडगेको पहचानता हूँ किंतु वह मेरे यहाँ क्वचित ही कभी आता था। पिछले कई वर्षोंमें मैं भी उसके यहां नहीं गया। बडगेने कहा है कि दिनांक १० जनवरी १९४८ को अभियुक्त क्रमांक २ नारायण दत्तात्रय आपटे मुझे हिंदुराष्ट्र कार्यालयमें लाया। बडगेका यह विधान पूर्णतया असत्य है। मैं यह भी नहीं स्वीकारता हूँ कि बडगेने मुझे वहाँ देखा। उसका कहना है कि वहाँ पर गनकाटनस्लैव, हस्तध्वम् आदिके विषयमें बातचीत हुई और उसे वे वस्तुऍं बम्बई ले जानी है। मैं बडगेके कथनका इन्कार करता हूँ। बडगेका यह भी कथन झूठ है कि आपटेजीने मुझे कक्षके बाहर बुलाया और मुझसे कहा कि, बडगे हस्तध्वम् आदि वस्तुऍं देनेवाला है और अपना काम बना है। यह कथा बडगेकी मनगढ़ंत है क्यो कि उसको मुझे और अन्योको षडयंत्रकी व्याख्यामें ठूँसना है। मैं यह भी कहता हूँ कि दिनांक १४ जनवरी ४८ को मैं बडगेको दादरमें मिला नहीं। मैंने उसे देखातक नहीं। मैं यह भी [illegible] नता था कि [illegible] दिन बम्बई जानेवाला था।

१० – आरोप क्रमांक ३ में ए १), ए २), बी १), बी १) में जो गठबंधन का आरोप लगाया है उसे मै स्वीकारता नहीं हूँ।

११ – आरोप क्रमांक ४, परिच्छेद २ में कहा है, -- दि. २० जनवरी को बिर्ला भवनमें मदनलाल पाहवा को गनकॉटन स्लैब का धमाका करने में मैने स्वयं सहायता दी अथवा अन्य अभियुक्तों की साँठगाँठसे सहायता की। मैं कहता हूँ कि इस आरोप को प्रस्थापित करने को प्रमाण नही है और जो प्रमाण हैं, मुझे उस आरोपमें नहीं लिपटा सकते।

१२ – आरोपपत्रमें क्रमांक पांचवां आरोप है – महात्मा गांधीको मारनेके प्रयत्नमें मैने मदनलालको सहयोग दिया। मेरा प्रतिपादन है कि मदनलालसे अथवा अन्य किसीसे मेरा इस घटनामें कोई संबंध नहीं था। इस आरोपकी संपुष्टिके लिये कोई प्रमाण नहीं है।

१३ – आरोप क्रमांक ५ के परिच्छेद १ और २ में लिखा है कि नारायण दत्तात्रय आपटे की सहायतासे मैने विना अनुमतिपत्रके छरिका प्राप्त की। मैं कहता हूँ कि मै आपटेकी सहायतासे छरिका नही लाया। उसी प्रकार डॉ. दत्तात्रय सयाशिव परपुरे एवं आपटे ने छरिका प्राप्त की अथवा उस प्राप्तिमें उन्होने मेरी सहायता की अथवा उन्होंने एक दूसरेकी सहायता की इस आरोपका भी स्वीकार नहीं करता हूँ। मेरा और भी कहना है कि, अभियोजक जो प्रमाण लाये है, वे विश्वासार्ह नही है। इन विधानोंको न काटते हुए मेरा कहना है, मान लीजिये, आरोपपत्र परिछेद ए १) और ए २) के अनुसार मैने व्यवहार किया हो तो भी उसकी चिकित्सा करनेका अधिकार इस न्यायालयको नहीं है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, यह आरोप परिच्छेद ब १) में समा सकेगा। अलगतासे नही।

१४ – परिच्छेद ब १) और ब २) में उद्धृत आरोप है कि मेरे पास क्रमसख्या ६०१८२४ की स्वयंचलित छरिका (ॲटोमेटिक पिस्तौल) थी, और छर्रे (कारतूस) थे। मैं इस आरोपको स्वीकारता हूँ, किंतु नारायण आपटे एवं विष्णु करकरे का संबंध इस छरिकाके साथ तनिक भी नही था।

१५ – आरोपपत्रके सातवें आरोप की चर्चाके पूर्व यहाँ पर यह कहना स्थानविसंगत नही होगा कि मै दिल्ली क्यों और कैसे आ गया था। मैने इस सत्यको कभी छिपाया नहीं है कि मै उस वादका अर्थात् विचार प्रणालीका समर्थक एवं अनुयायी हूँ कि जो वाद अथवा प्रणालि गांधीजी की विचार प्रणालिके विरुद्ध है। मेरी यह दृढ धारणा थी कि गांधीजीके प्रचारित किये आत्यंतिक अहिंसा के पाठ अंतमें हिंदुजातिका शक्तिक्षय करेंगे और उसके फलस्वरूप यह जाति दूसरी जातियोंके, विशेषकर मुस्लिमके अतिक्रमण एवं आक्रमणके प्रतिरोधमें अक्षम होगी। इस संकटके प्रतिरोध के हेतु मैने सार्वजनिक

आयुष्यके क्षेत्रम प्रवेश करनेका निश्चय किया और समा
गुट खडा किया। आपटेने और मैंने उसका नेतृत्व कि
के रूपमें दैनिक " अग्रणि " समाचारपत्र प्रारंभ किया
गांधीम अहिंसापाठ को उतना विरोध नही था जितना
एवं हिंदुओंके हितसंबंधोंका विनाश करनेवाली मुस्लि
व्यवहार अपनाये थे उससे था। मैंने अपना दृष्टीकोण
दिया है उसमें मैंने कई ऐसे उदाहरण दिये हैं जो य
करेंगे कि हिंदु जातिपर बीती विपदाओंको गांधीजी कि

१६ – गांधीजीके विचारों पर और उनका अ
हेतु वे जो उपवास जैसे उपाय बरतते थे, उनकी मैं
" हिंदुराष्ट्र " दैनिक पत्रमें कठोर आलोचना करता
उद्देश्यके लिये प्रार्थनासभा लेने की परिपाटि चलायी,
दर्शानेवाले किंतु शांततापूर्ण निदर्शन करनेका निश्चय
एवं दिल्लीमें हमने ऐसे शांत निदर्शन किये थे। दो वि
मुसलमानोंको एक के पीछे एक करके धर्मपरावर्तन (क
उन्हें गांधीजीका या कॉंग्रेसका अनुमतिसंकेत था,
जानबूझकर आनाकानी हुआ करती थी। गाधीजी
फलस्वरूप पंद्रह अगस्त १९४७ को देशके खंडखंड
अन्तर बढ़ता ही गया। जिन विषयोंका विस्तार मैंने
दिनांक १३ जनवरी १९४८ को मैंने जाना कि गाधी
वाले है। उस उपवास का कारण यह दिया गया
हिन्दु – मुस्लीम एकताका वचन उन्हें चाहिये। किंतु
नाही कारण उपवास के पीछें नहीं था। हिंदुस्थान
पचपन करोड़ रुपये देनेसे निश्चित रूपसे इन्कार कि
स्तानको दिलानेको हिन्दुस्थान शासनको हठात् बाध्य
हेतु था। जिस तथ्य को मैं जान गया, उसी प्रका
सहजतासे ज्ञान हुआ। उसके उत्तरमें आपटेने वही
नका मार्ग सुझाया। मैंने अनिश्चित मनसे अनुमति
मै स्पष्टरूपसे पहले ही जानता था। फिर भी मैंने
किया क्योंकि मेरे मनमें उस समयपर्यंत और कोई
जनवारी १९४८ को आपटे एवं मैं बम्बई गया उ

१७ – दिनांक १५ जनवरी १९४८ को आ
कार्यालयमें ऐसेही गये थे। अचानकही वहां हम

देखकर उसने पूछा आप बम्बई कैसे आये ? आपटेने कारण बताया । उसपर बडगेने स्वयं सिद्धता दिखायी कि वह भी निदर्शनमें भाग लेने दिल्ली जायेगा । उसने यह भी कहा कि यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो वह आयेगा । हमें घोषणाओं के हेतु और निदर्शनके लिए लोग चाहिए थे । अिसलिए उसको हमने हाँ कहा । हम कब चलेंगे यह भी हमने उससे कहा । उसपर बडगे बोला कि उसने प्रवीणचंद्र सेठियाको कुछ साहित्य देना चाहा है जो वह अेक दो दिनमें देगा और फिर दिनांक १७ जनवरी १९४८ को वह हमें मिलेगा ।

१८ – दिनांक १५ जनवारी १९४८ के पश्चात् बडगेको मैं दिनाक १७ जनवरी १९४८ की प्रात: दादर हिंदुसभा कार्यालयमें मिला ।

१९ – बडगेके कुछ विधान अिस प्रकार है – हम बडगेको साथ लेकर दीक्षितजी महाराजके यहाँ गये और उन्हे मिले । वहाँ आपटेने बडगेसे कहा कि गाधीजी और नेहरूको समाप्त करना है और यह कार्य सावरकरजीने हमपर सौंपा है । ये विधान बडगेको कल्पनामात्र है । वे पूरी पूरीं बनावटी है । आपटे अथवा मैं अिस प्रकारकी कोई बात न बडगेसे कभी बोले न ओर किसीसे ।

२० – मेरे भाई गोपालने छरिका प्राप्त करनेका अुत्तरदायित्व लिया है, उसे मिलनेके लिये मुझे पूना जानेका है, क्यों कि उसे अपने साथ दिल्ली ले जानेका है यह बडगेके विधान भी झूठ है । दिनांक १५ जनवरी को बडगे हमें मिला था । उसके साथ जो बात हुअी वह उपरी १७ वें परिच्छेदमें दी है । उसके अतिरिक्त उसके (बडगेके) साथ मेरी किसी भी विषयपर बातचीत नही हुअी । दिनांक १६ जनवरी को बडगे मुझे पूनामें मिला यह उसका विधान भी झूठ है ।

२१–ऊपर मैंने कहा है कि आपटे और मैं गांधीजीकी प्रार्थनासभामें यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र निदर्शन करना चाहते थे इसी लिये हम दोनों दिल्ली जानेवाले थे । अिस निदर्शन में बडगेने स्वयं ही संमिलित होना स्वीकार किया था अिस बातका भी मैंने परिच्छेद १७ में उल्लेख किया है । निदर्शन प्रभावी हो अिस लिये हमें स्वयंसेवक दिल्ली ले जानेकी भी तुरंत आवश्यकता थी । निदर्शनके अेवं स्वयंसेवकोंके प्रबंध के हेतु दिल्ली जानेके पूर्व धन अिकठ्ठा करनेका कार्यक्रम हमने हाथमें लिया ।

२२–दिनांक १७ जनवरी १९४८ को हम सावरकरजीसे मिले अिस बडगेके विधानका मै निश्चयपूर्वक प्रतिवाद करता हूं । उसी प्रकार सावरकरजीने हमें आशीर्वाद दिया, "यशस्वी हो जाओ" अिस बडगेके विधानका भो मैं अिन्कार करता हूं । बडगेसे इस विषयमें हमारी कुछ बात हुअी इस विधान का, अेवं बडगेके इस कथनका कि तात्या रावजीने भविष्यवाणी कही है कि गांधीजीके सौ बरस

अेक घंटा पश्चात हमने समाचार सुना कि गांधीजी की प्रार्थनासभामें विस्फोट होनेसे चितायुक्त वातावरण बना है, और किसी निर्वासित को आरक्षियोंने पकड़ा है। आपटेने सोचा कि अिस समय दिल्ली छोड़ना हितकर रहेगा। अिसलिये हम दिल्लीसे चल पड़े। दिनांक २० जानेवरीको मैं हिंदुसभा भवन में बडगेसे मिला यह अुसका कथन असत्य है। कअी साक्षियोंने कहा है कि अुन्होंने मुझे २० जनवरी को बिर्ला भवनपर देखा। मैं यह आग्रहसे कहना चाहता हूँ कि अुन्हें सम्भ्रम हुआ है। अन्य कोअी व्यक्ति और मैं अिसमें वे संभ्रमित हुअे हैं। कुछ साक्षियोंने मुझे पहचानयोगमें (आयडेंटिफिकेशन परेडमें) पहचाना है, जो अविश्वासार्ह है। क्यों कि अेक बात मैं बिर्ला भवन में उस दिन नही था और दूसरी, आरक्षियोने मेरे तुघलक रोड आरक्षी थानेके वास्तव्यमें साक्षियोंको मुझे दिखाया था। जिन अधिकारियोंने अिस बात का अिन्कार किया वे झूठ बोलते हैं। बम्बअीमें पहला पहचानयोग हुआ जब मैंने दिल्ली के साक्षियोंके विषयमें प्रतिवाद लिखवाया है।

२५ – अब निदर्शनके उपक्रम की स्थितिमें परिवर्तन आया था। मैंने दुबारा आपटे को निदर्शनके विषयमें अनुमति दी थी वह अपने मनके विरुद्ध। नयी स्थिति में बम्बअी-पूनासे कार्यतत्पर और लगन के स्वयंसेवक लाना असंभव था। हमारा द्रव्य समाप्त हुआ था। और नये सिरेसे स्वयंसेवकोंके लिये दिल्ली,बम्बअी यात्रा का व्यय हम नही कर सकते थे। अिसलिये हमने ग्वालियर के डॉक्टर परचुरे से मिलनेका निश्चय किया। उनके पास हिंदुराष्ट्र सेनाके स्वयसेवक थे। स्वयंसेवक ग्वालियरसे दिल्ली ले जाना अर्थको दृष्टिसे कुछ सुकर था। अिसलिये दिनांक २७ जनवरी १९४८ को हम विमानसे दिल्ली पहुँचे और रातको ग्वालियर के लिये चल पड़े। वह गाडी दूसरे दिन तडके ग्वालियर पहुंची। अभी अंधियारा था अतः हम गवालियर के स्थानकके निकटकी धर्मशालामें ठहरे। प्रातःकाल हम डॉ परचुरे से उनके घर मिले। वे चिकित्सालय जाने की सिद्धता में थे। उन्होने हमें अपराण्ह मिलने को कहा। हम अपराण्ह चार बजे उन्हें मिले। हमें लगा कि वे हमारी सहायता करने के अिच्छुक नही है। क्यों कि उनके स्वयंसेवक स्थानीय कार्यमें जुटे हुवे थे। मैं निराश हुआ। आपटे को मैंने बम्बअी जानेको कहा। मैंने उन्हें कहा, "वहां स्वयंसेवक अिकठ्ठे करो। मैं जाता हूँ। मैं निर्वासितों से स्वयंसेवक चुनूंगा।" आपटे और मैं छरिका अर्थात् पिस्तौल लाने गवालियर गये अिस आरोपका मै स्वीकार नही करता हूँ क्यों कि अैसे शस्त्र चोरी छुपे उपलब्ध थे। हतबल हो मैं दिल्ली लौटा। वहाँ दिल्ली के निर्वासित शिबिरोंमें गया। अुन छावनियोंमें घूमतेघामते मेरे मनमें अेक निश्चित और अंतिम योजना बनी। संयोगवश मुझे अेक निर्वासित मिला। वह शस्त्रों की लेन-देन करता था। उसने मुझे अेक छरिका दिखाअी। मैं आकृष्ट हुआ, मैंने वह छरिका उससे मोल ली। वह यही

छुरिका थी जिससे मैंने आगे चलकर गोलियां दागी। दिल्ली स्थानक पहुँचनेपर दिनांक २९ जनवरी की रात में विचारमग्न अवस्थामें था। हिन्दुओं की अधिक होनेवाली दुरवस्था और उनकी प्रचलित समय की कुंठावस्था समाप्त करने के मेरे विचारों की परिधिमें ही मेरा मस्तिष्क घूमता रहा। अब मैं वीर सावरकरजीके साथ मेरे राजनैतिक और अन्य रूपके संबंधोंके विषयकी चर्चा करूंगा। अभियोजकोंने उसका बड़ा आडंबर मचाया है।

२६. मैंने एक भक्तिपरायण ब्राह्मण वंश में जन्म लिया था, इसलिए स्वभावतः मेरे हृदय में हिन्दु धर्म, हिन्दु इतिहास और संस्कृति के लिए सम्मान था। मुझे हिन्दुत्व का अभिमान था। मैं ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया स्वतन्त्रतापूर्वक सोचता रहा। मैं कट्टरपन पर नहीं जमा रहा। इसीलिए मैंने छूत–छात और जन्मगत जातीयता को मिटाने का प्रयत्न किया। मैंने जाति–पाँति विरोधी दल में काम किया और इस निश्चय पर पहुँचा कि सब हिन्दू बराबर हैं।चाहे वे किसी भी जाति में उत्पन्न हुए हों और चाहे उनका कोई भी व्यवसाय हो। सबको एक ही सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से देखा जाना जाहिये। मैंने खुल्लम–खुल्ला बहुत बार ऐसे भोजों में भाग लिया जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अत्यजो ने साथ बैठकर भोजन किया था।

२७. मैंने दादाभाई नौरोजी, विवेकानन्द, गोखले और तिलक के साहित्य को पढ़ा है और प्राचीन एव आधुनिक भारत के इतिहास को पढा है। साथ ही संसार के बड़े-बड़े देशों–इंगलैंड, फ्रान्स, अमेरिका और रूस के इतिहास को भी पढा है। केवल यही नही प्रत्युत मैंने समाजवाद और रूस के कम्युनिज्म पर भी पुस्तकें पढ़ी है, परतु सबसे अधिक ध्यान मैंने वीर सावरकर और गांधीजी के साहित्य और विचारों पर दिया। आधुनिक भारत गत ५० वर्षों से इन्हीं दो पुरुषों के सिद्धांतों से प्रभावित रहा है।

२८. पर्याप्त पढ़ने और सोचने के पश्चात् मुझे ऐसा लगता है कि देशभक्त होने के नाते मेरा सर्वप्रथम कर्तव्य हिन्दुत्व और हिन्दू जनता की सेवा करना है, क्योंकि तीस करोड़ हिंदुओ की स्वतंत्रता और उनके अधिकारों की रक्षा करना संपूर्ण संसार के पांचवें भाग की भलाई करना है। इसी विचारधारा से प्रेरित होकर मै हिन्दू-संगठन की ओर आकृष्ट हुआ और मेरा यह विश्वास दृढ़ हो गया कि इन्ही सिद्धांतों पर चलकर मातृभूमि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता को स्थायी रखा जा सकता है।

२९. मैंने कई वर्षों तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में भी काम किया, किन्तु बाद में मैं हिन्दु महासभा में आ गया और हिन्दू ध्वज के नीचे एक सैनिक के रूप

में काम करता रहा। उस समय वीर सावरकर हिन्दू महासभा के अध्यक्ष चुने गये थे। उनके मार्गदर्शन में हिन्दू संगठन की लहर बहुत प्रखर हो गयी थी। लाखों हिन्दू उन्हें अपना सच्चा नेता मानकर उसमें से बहुत से आशाएँ रखते थे। मैं भी उनमें से एक था। मैंने बहुत परिश्रम से हिन्दू महासभा का काम किया। यहाँ तक कि सावरकर जी मुझे व्यक्तिगत रूप से जानने लग गये।

३०. कालांतर में मैंने और मेरे साथी श्री आप्टे ने एक दैनिक पत्र का प्रकाशन करने का निश्चय किया। इस पत्र के प्रकाशन का उद्देश्य हिन्दू संगठन को दृढ़ करना ही था। इस विषय में हम अनेक हिन्दू नेताओं से मिले और आर्थिक सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करके हम सावरकरजी से मिले। उन्होंने भी इस विषय में सहानुभूति दिखाई और हमें इस शर्त पर ७५ सहस्र रुपया भी दिया कि हम एक लिमिटेड फर्म बनाये जिसमें इन ७५००० रुपयों के शेअर रखे जाएँ।

३१. इस योजना के अनुसार हमने मराठी दैनिक पत्र 'अग्रणी' निकाला और कुछ दिनों बाद एक लिमिटेड फर्म भी रजिस्टर्ड करायी। इस फर्म में एक शेयर ५०० का रखा गया। कम्पनी के डाइरेक्टरों में सेठ वालचन्द हीराचन्द के भाई सेठ गुलाबचन्द, भूतपूर्व मन्त्री श्री.गिगरे, कोल्हापुरके प्रसिद्ध फिल्म निर्माता श्री. भालजी पेंढारकर और अन्य माननीय व्यक्ति थे। मैं पत्रका सम्पादक था। हमने कई वर्षों तक इस पत्र को सफलतापूर्वक चलाया एवं लोगों के सम्मुख हिंदू संघटन के पक्ष को अच्छी प्रकार रखा।

३२. इस पत्र का प्रतिनिधि होने के नाते हम हिन्दू संगठन कार्यालय में जाया करते थे जो वीर सावरकर के निवासस्थान में था। यह कार्यालय सावरकरजी के मन्त्री श्री. जी. वी. दामले और उनके अंगरक्षक श्री. अप्पा कासार के प्रबन्ध में था। हम इस कार्यालय मे सावरकरजी के मन्त्री से सावर-करजी के भाषण आदि की प्रतिलिपियाँ और उनकी यात्राओं के विषय में सूचनाएँ प्राप्त करते थे। सावरकरजी के मकान में ही 'फ्री हिन्दुस्तान' के सम्पादक भी किरायेदार के रूप में रहते थे और अनेक हिन्दुराष्ट्रवादी कार्यकर्ता एकत्र होते थे। इन कारणों से हमारा 'सावरकर सदन' में आना-जाना होता रहता था।

३३. यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जब हम 'सावरकर सदन' में जाते थे तो निचली मंजिल में ही रुक जाते थे। वीर सावरकर ऊपर की मंजिल में रहते और हम बहुत ही कम बार उनसे मिलते थे और जब मिलते थे तो उनसे समय निश्चित करके।

३४. तीन वर्षों से सावरकरजी का स्वास्थ्य खराब था और वह प्रायः बिस्तर पर पड़े रहते थे। उन्होंने अपना सार्वजनिक कार्य स्थगित (सस्पेंड) कर दिया था। इस प्रकार हिन्दू महासभा का नेतृत्व करने के लिए कोई प्रभावशाली व्यक्तित्व नहीं रह गया था और हिन्दू सभा का कार्य शिथिल होता जा रहा था। जब श्री मुकर्जी इसके अध्यक्ष बने तब हिन्दू महासभा कांग्रेस की तुलना में बहुत निर्बल हो गयी थी। उस समय एक ओर गांधी जी के अनुयायी ऐसी नीतियों पर चल रहे थे जो हिन्दू जाति के लिए घातक थी और दूसरी ओर मुस्लिम लीग हिन्दुओं का विनाश करने पर तुली हुई थी, परन्तु हिन्दू महासभा को इतनी शक्ति न थी कि दोनों को पराजित कर सके। उस समय मुझे कोई आशा नहीं रही कि महासभा की कार्य-पद्धति पर चल कर हिन्दू-संगठन सफल हो सकेगा। इसलिए मैंने यह निश्चय किया कि उन युवक कार्यकर्ताओं का संगठन करूँ जो मेरे विचारों के हों। इस प्रकार मैंने बूढ़े नेताओं का परामर्श लिए बिना ही गांधीवाद और मुस्लिम लीग के विरुद्ध लड़ने का कार्यक्रम बनाया।

३५. उन्हीं दिनों बहुत-सी घटनाएँ ऐसी हुई जिससे मुझे ऐसा विश्वास हो गया कि सावरकरजी और अन्य नेता मेरे विचारों के युवकों की उग्र नीति का समर्थन नहीं करेंगे। १९४६ में सुहरावर्दी की सरकार के समय नोआखाली (बंगाल) में मुसलमानों के हाथों हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुए उससे हमारा खून खौल गया। हमारा क्षोभ उस समय और भी उग्र हो गया जब गांधी जी ने सुहरावर्दी को शरण दी और प्रार्थना सभाओं में उसे 'शहीद साहब' के नाम से सम्बोधित करना प्रारम्भ किया। गांधी जी जब दिल्ली आये तो भंगी कालोनी के मन्दिर में अपनी प्रार्थना सभा में जनता और पुजारियों के विरोध करने पर भी उन्होंने कुरान की आयतें पढ़ी, लेकिन कभी भी वह किसी मस्जिद में (मुसलमानों के भय से) गीता न पढ़ सके। वह जानते थे कि मस्जिद में गीता पढ़ने से मुसलमानों द्वारा उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार होगा? वे सदा सहनशील हिन्दुओं को ही कुचलते रहे। मैंने गांधी जी के इन विचारों को, कि हिन्दू सहनशील होता है, नष्ट करने का निर्णय किया। मैं उनको यह सिद्ध करके दिखाना चाहता था कि जब हिन्दू का अपमान होता है, तब वह भी सहनशीलता छोड़ सकता है और ऐसा ही करने का निश्चय किया।

३६. मैंने और आपटे ने यह निश्चय किया कि उनकी प्रार्थना-सभाओं में इतने प्रदर्शन करें कि उनके लिए प्रार्थना-सभा करना असम्भव हो जाय। श्री आपटे ने कुछ शरणार्थी साथ लेकर शहर में एक जुलूस भी निकाला जिसमें गांधीजी और सुहरावर्दी के विरुद्ध नारे लगाये गये और भंगी कालोनी की प्रार्थना सभा में प्रदर्शन किया। उस समय हमारा हिंसा करने का लेशमात्र भी विचार न

था, फिर भी गांधी जी ने कायरतापूर्वक पिछले दरवाजे की शरण ली और अपने आपको सुरक्षित करने का प्रयत्न किया ।

३७. जब श्री सावरकर ने इस प्रदर्शन के विषय में पढ़ा तो उन्होंने हमारे कार्य की प्रशंसा नहीं की, प्रत्युत मुझे एकांत में ऐसे कार्य के लिए बहुत बुरा-भला कहा । यद्यपि हमने प्रदर्शन शान्तिपूर्ण किये थे तथापि उन्होंने कहा, 'जिस प्रकार मैं इस बात की निन्दा करता हूँ कि कांग्रेस से संबंध रखनेवाले लोग हमारी सभाओं और चुनाव में शांति भंग करते हैं। उसी प्रकार मुझे इस बात की भी निन्दा करनी चाहिए जब हिन्दु संगठनवादी लोग कांग्रेस वालों के किसी कार्यक्रम को भंग करते हैं । यदि गांधी जी अपनी प्रार्थना सभा में हिन्दुओं के विरुद्ध बोलते हैं तो उसी प्रकार आप भी अपनी पार्टी की सभा करें और गांधी जी के सिद्धांतों का खण्डन करें । हम सबको अपनी अपनी बात का प्रचार नियमपूर्वक करना चाहिये।"

३८. दूसरी महत्वपूर्ण घटना उस समय हुई जब भारत के विभाजन का अन्तिम निश्चय हुआ। उस समय कुछ हिन्दूभाई यह जानना चाहते थे कि विभाजित भारत की नयी कांग्रेस सरकार के साथ हिंदू महासभा का क्या व्यवहार होगा ? वीर सावरकर आदि हिन्दू नेताओं ने कहा कि नयी सरकार को किसी दल अथवा कांग्रेस की सरकार नहीं मानना चाहिये, प्रत्युत भारत की राष्ट्रीय सरकार समझना चाहिये और उसकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना चाहिये । उन्होंने कहा कि पाकिस्तान बनने का उनको दुःख तो अवश्य है, परन्तु फिर भी नयी आजादी की रक्षा करने के लिए और उसे स्थायी रखने के लिए नयी सरकार को सहयोग देना ही हमारा ध्येय होना चाहिये । यदि नयी सरकार को सहयोग न दिया तो देश में गृहयुद्ध हो जायेगा और मुसलमान अपने गुप्त ध्येय अर्थात् सारे भारत को पाकिस्तान बनाने में सफल हो जायेंगे ।

३९. मुझे और मेरे मित्रों को सावरकर जी के ये विचार सन्तोषजनक नहीं लगे । हमने सोच लिया कि हमें हिन्दू जाति के हित में सावरकरजी के नेतृत्व को छोड़ देना चाहिये, अपनी भविष्य की योजनाओं और कार्यक्रम के विषय में उनका परामर्श नहीं लेना चाहिये और न हमको अपनी भविष्य की योजनाओं का भेद उनको देना चाहिये ।

४०. कुछ समय बाद ही पंजाब और भारत के अन्य भागों में मुसलमानों के अत्याचार शुरू हो गये । कांग्रेस शासन ने बिहार, कलकत्ता, पंजाब और अन्य स्थानों पर उन हिन्दुओं को ही गोली का निशाना बनाना शुरू कर दिया जिन्होंने मुसलमानों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने का साहस किया था। जिस बात से हम डरते थे वही होकर रही । फिर भी कितनी लज्जा की बात थी कि कांग्रेस

शासन १५ अगस्त सन् ४७ को रंगरेलियाँ, रोशनी करे और आनन्दोत्सव मनाये जबकि उसी दिन पंजाब में मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं का खून बहाया जा रहा था और पूरे पंजाब में हिंदुओं के घर जल रहे थे। मेरे विचारों के हिंदू सभाइयों ने निश्चय किया कि हम उत्सव न मनायें और मुसलमानों के बढ़ते हुए अत्याचार को रोकने का प्रयत्न करें।

४१. हिंदू महासभा की कार्यकारणी और अखिल भारतीय हिंदू कनवेन्शन की सभाएं जो दस अगस्त को दिल्ली में हुई थी, जिनकी अध्यक्षता सावरकरजी ने की। मैंने, आपटे और मेरे विचारों के अन्य सदस्यों ने भरसक प्रयत्न किया कि महासभा के नेताओं श्री सावरकर, मुखर्जी और श्री भोपटकर को अपने विचारों से सहमत कराए और यह प्रस्ताव पारित करायें कि कांग्रेस से भारत-विभाजन और हिंदुओं के व्यापक विनाश के प्रश्न पर टक्कर ली जाये, परंतु महासभा वर्किंग कमेटी ने हमारे इन परामर्शों को भी नहीं माना कि हैदराबाद के विषय में विशेष रूप से कोई कार्य किया जाय, या नई कांग्रेस सरकार का बहिष्कार किया जाय। मेरे व्यक्तिगत विचार में विभाजित भारत की सरकार को वैध सरकार मानना और उसकी सहायता करना ठीक नहीं था, परंतु कार्यकारिणी ने यह प्रस्ताव पारित किया कि १५ अगस्त को जनता अपने घरों पर भगवा ध्वज लहरायें। वीर सावरकर ने स्वयं आगे बढ़कर कहा कि चक्रवाले तिरंगे झण्डे को राष्ट्रध्वज स्वीकार किया जाय। हमने इस बात का खुला विरोध किया।

४२. केवल यही नहीं, १५ अगस्त को वीर सावरकरने बहुत से हिंदू राष्ट्रवादियों की इच्छा के विरुद्ध, अपने मकान पर भगवे ध्वज के साथ चक्रवाला तिरंगा ध्वज भी लहराया, इसके साथ ही जब मुखर्जी ने ट्रंककाल से पूछा कि नई गवर्नमेंट में वे मंत्री पद स्वीकार कर लें या नहीं तब सावरकरजी ने उत्तर दिया कि नई गवर्नमेंट राष्ट्र की गवर्नमेंट है और सभी पार्टियों को इसमें सहयोग देना चाहिये, चाहे इसमें मंत्री किसी भी पार्टी के हों। हिंदूराष्ट्रवादियों को चाहिये कि यदि उनके नेता को मंत्रीपद दिया जाय तो वह उसे स्वीकार करके अपने सहयोग का प्रमाण दे। उन्होंने कांग्रेस नेताओं को इस बात पर बधाई दी कि वह मंत्रिमंडल बनाने में सबका सहयोग प्राप्त कर रहे थे और उन्होंने हिंदू सभा के नेता डॉ० मुखर्जी को भी मंत्री पद के लिए आमंत्रित किया। श्री भोपटकर का भी ऐसा ही विचार था।

४३. उस समय कांग्रेस के उच्च नेता और कुछ प्रांतीय मंत्री सावरकरजी से पत्रव्यवहार कर रहे थे। नई गवर्नमेंट सबके सहयोग से बने, यह तो सावरकरजी पहले ही निश्चय कर चुके थे। मुझे सब दलों की मिली-जुली सरकार से कोई विरोध न था, परंतु चूंकि कांग्रेस गवर्नमेंट गांधी जी के इशारों पर चलती थी, और

यदि किसी समय कांग्रेस सरकार उनकी कोई बात नही मानती थी तो वह अनशन की धमकी देकर मना लेते थे, ऐसी स्थिति में जो भी सरकार (कांग्रेस सरकार या सब की मिली-जुली सरकार) बनती उसमें कांग्रेस का बहुमत तो निश्चय ही था और यह भी तय था कि वह गांधीजी की आज्ञा में चलेगी और तब उसके द्वारा हिंदुओं के साथ अन्याय होता रहना निश्चित था।

४४. जो भी कार्य वीर सावरकर आदि ने इस दिशा में किया, मेरे मन मे उनकी इस नीति के प्रति घोर विरक्ति हो गयी और मैंने, आप्टे ने एवं अन्य हिंदू संघटनवादी नवयुवकों ने यह निश्चय किया कि सभा के पुराने नेताओं से बिना पूछे अपना कार्यक्रम बनावें और चले। हमने यह भी सोच लिया कि अपनी कोई योजना किसी को नही बतायेंगे, यहाँ तक कि सावरकर जी को भी नही।

४५. मैंने अपने दैनिक पत्र 'अग्रणी' मे हिंदू महासभा की इस नीति और वृद्ध नेताओं के कार्यों की आलोचना प्रारंभ की और हिंदू-संगठन के इच्छुक नवयुवकों का आव्हान किया कि वे हमारे कार्यक्रम को अपनायें।

४६. नया कार्यक्रम बनाने के लिये मेरे पास दो मुख्य मार्ग थे जिनसे मैं आरंभ करता। पहला तो यह था कि शांतिपूर्वक गांधी जी की प्रार्थना-सभा मे प्रदर्शन किये जायें जिससे उनको यह ज्ञान हो जाय कि हिंदू सामुहिक रूप से उनकी नीति का विरोध करते हैं, अथवा प्रार्थना-सभाओं में, जिनमें वे हिंदू विरोधी प्रचार करते थे, अपने विरोध से गडबड फैलायी जाय। दूसरा यह कि हैदराबाद के विषय में आंदोलन प्रारंभ किया जाय, जिससे हिंदू भाई-बहनों की यवनों के अत्याचार से रक्षा हो। ये कार्यक्रम गुप्त रूप से ही चल सकते थे और वह भी एक व्यक्ति की आज्ञा का पालन करने पर। इसलिये हमने यह निर्णय किया कि यह योजना केवल उन्हीं को बताई जाये जिनका इस मार्ग पर विश्वास हो और जो इस विषय मे प्रत्येक आज्ञा का पालन करने को तत्पर हो।

४७. मैंने यह सब विस्तार से इसलिए बताया है कि मुझ पर दोष लगाते हुए कहा गया है कि मैंने सब कुछ सावरकर के इशारे पर किया, स्वयं अपनी इच्छा से नहीं। ऐसा कहना कि मैं सावरकर पर निर्भर था, मेरे व्यक्तित्व का, मेरे कार्य का और निर्णय की क्षमता का अपमान है। यह सब मैं इसलिये कह रहा हूं कि मेरे विषय में जो भ्रांत धारणाएं हों वे दूर हो जायं। मैं इस बात को दोहराता हूं कि वीर सावरकर को मेरे उस कार्यक्रम का तनिक भी पता नही था जिस पर चल कर मैंने गांधी जी का वध किया। मैं इस बात को भी दोहराता हूं कि यह निरा झूठ है कि आपटे ने मेरे सामने या मैंने स्वयं बडगे को कहा कि हमें सावरकर जी ने गांधी, नेहरू और सुहरावर्दी को मारने की आज्ञा दी है। यह भी सच नहीं है कि हम ऐसी

शासन १५ अगस्त सन् ४७ को रंगरेलियाँ, रोशनी करे और आनन्दोत्सव मनायें जबकि उसी दिन पंजाब में मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं का खून बहाया जा रहा था और पूरे पंजाब में हिंदुओं के घर जल रहे थे। मेरे विचारों के हिंदू समाइयों ने निश्चय किया कि हम उत्सव न मनायें और मुसलमानों के बढ़ते हुए अत्याचार को रोकने का प्रयत्न करें।

४१. हिंदू महासभा की कार्यकारणी और अखिल भारतीय हिंदू कनवेन्शन की सभाएं जो दस अगस्त को दिल्ली में हुई थी, जिनकी अध्यक्षता सावरकरजी ने की। मैंने, आपटे और मेरे विचारों के अन्य सदस्यों ने भरसक प्रयत्न किया कि महासभा के नेताओ श्री सावरकर, मुखर्जी और श्री भोपटकर को अपने विचारों से सहमत कराएं और यह प्रस्ताव पारित करायें कि कांग्रेस से भारत-विभाजन और हिंदुओं के व्यापक विनाश के प्रश्न पर टक्कर ली जाये, परंतु महासभा वर्किंग कमेटी ने हमारे इन परामर्शों को भी नहीं माना कि हैदराबाद के विषय में विशेष रूप से कोई कार्य किया जाय, या नई कांग्रेस सरकार का बहिष्कार किया जाय। मेरे व्यक्तिगत विचार में विभाजित भारत की सरकार को वैध सरकार मानना और उसकी सहायता करना ठीक नहीं था, परंतु कार्यकारिणी ने यह प्रस्ताव पारित किया कि १५ अगस्त को जनता अपने घरों पर भगवा ध्वज लहराये। वीर सावरकर ने स्वयं आगे बढ़कर कहा कि चक्रवाले तिरंगे झण्डे को राष्ट्रध्वज स्वीकार किया जाय। हमने इस बात का खुला विरोध किया।

४२. केवल यही नहीं, १५ अगस्त को वीर सावरकरने बहुत से हिंदू राष्ट्रवादियों की इच्छा के विरुद्ध, अपने मकान पर भगवे ध्वज के साथ चक्रवाला तिरंगा ध्वज भी लहराया, इसके साथ ही जब मुखर्जी ने ट्रंककाल से पूछा कि नई गवर्नमेंट में वे मंत्री पद स्वीकार कर लें या नहीं तब सावरकरजी ने उत्तर दिया कि नई गवर्नमेंट राष्ट्र की गवर्नमेंट है और सभी पार्टियों को इसमें सहयोग देना चाहिये, चाहे इसमें मंत्री किसी भी पार्टी के हों। हिंदूराष्ट्रवादियों को चाहिये कि यदि उनके नेता को मंत्रीपद दिया जाय तो वह उसे स्वीकार करके अपने सहयोग का प्रमाण दे। उन्होंने कांग्रेस नेताओं को इस बात पर बधाई दी कि वह मंत्रिमंडल बनाने में सबका सहयोग प्राप्त कर रहे थे और उन्होंने हिंदू सभा के नेता डॉ० मुखर्जी को भी मंत्री पद के लिए आमंत्रित किया। श्री भोपटकर का भी ऐसा ही विचार था।

४३. उस समय कांग्रेस के उच्च नेता और कुछ प्रांतीय मंत्री सावरकरजी से पत्रव्यवहार कर रहे थे। नई गवर्नमेंट सबके सहयोग से बने, यह तो सावरकरजी पहले ही निश्चय कर चुके थे। मुझे सब दलों की मिली-जुली सरकार से कोई विरोध न था, परंतु चूंकि कांग्रेस गवर्नमेंट गांधी जी के इशारों पर चलती थी, और

यदि किसी समय कांग्रेस सरकार उनकी कोई बात नहीं मानती थी तो वह अनशन की धमकी देकर मना लेते थे, ऐसी स्थिति में जो भी सरकार (कांग्रेस सरकार या सब की मिली-जुली सरकार) बनती उसमें कांग्रेस का बहुमत तो निश्चय ही था और यह भी तय था कि वह गांधीजी की आज्ञा में चलेगी और तब उसके द्वारा हिंदुओं के साथ अन्याय होता रहना निश्चित था।

४४. जो भी कार्य वीर सावरकर आदि ने इस दिशा में किया, मेरे मन में उनकी इस नीति के प्रति घोर विरक्ति हो गयी और मैंने, आप्टे ने एवं अन्य हिंदू संघटनवादी नवयुवकों ने यह निश्चय किया कि सभा के पुराने नेताओं से बिना पूछे अपना कार्यक्रम बनावें और चले। हमने यह भी सोच लिया कि अपनी कोई योजना किसी को नहीं बतायेंगे, यहाँ तक कि सावरकर जी को भी नहीं।

४५. मैंने अपने दैनिक पत्र 'अग्रणी' में हिंदू महासभा की इस नीति और वृद्ध नेताओं के कार्यों की आलोचना प्रारंभ की और हिंदू-संगठन के इच्छुक नवयुवकों का आव्हान किया कि वे हमारे कार्यक्रम को अपनायें।

४६. नया कार्यक्रम बनाने के लिये मेरे पास दो मुख्य मार्ग थे जिनसे मैं आरंभ करता। पहला तो यह था कि शांतिपूर्वक गांधी जी की प्रार्थना-सभा में प्रदर्शन किये जायें जिससे उनको यह ज्ञान हो जाय कि हिंदू सामुहिक रूप से उनकी नीति का विरोध करते है, अथवा प्रार्थना सभाओं में, जिनमें वे हिंदू विरोधी प्रचार करते थे, अपने विरोध से गड़बड़ फैलायी जाय। दूसरा यह कि हैदराबाद के विषय में आंदोलन प्रारंभ किया जाय, जिससे हिंदू भाई-बहनों की यवनों के अत्याचार से रक्षा हो। ये कार्यक्रम गुप्त रूप से ही चल सकते थे और वह भी एक व्यक्ति की आज्ञा का पालन करने पर। इसलिये हमने यह निर्णय किया कि यह योजना केवल उन्हीं को बताई जाये जिनका इस मार्ग पर विश्वास हो और जो इस विषय में प्रत्येक आज्ञा का पालन करने को तत्पर हों।

४७. मैंने यह सब विस्तार से इसलिए बताया है कि मुझ पर दोष लगाते हुए कहा गया है कि मैंने सब कुछ सावरकर के इशारे पर किया, स्वयं अपनी इच्छा से नहीं। ऐसा कहना कि मैं सावरकर पर निर्भर था, मेरे व्यक्तित्व का, मेरे कार्य का और निर्णय की क्षमता का अपमान है। यह सब मैं इसलिये कह रहा हूं कि मेरे विषय में जो भ्रांत धारणाएं हों वे दूर हो जायं। मैं इस बात को दोहराता हूं कि वीर सावरकर को मेरे उस कार्यक्रम का तनिक भी पता नहीं था जिस पर चल कर मैंने गांधी जी का वध किया। मैं इस बात को भी दोहराता हूं कि यह निरा झूठ है कि आपटे ने मेरे सामने या मैंने स्वयं बडगे को कहा कि हमें सावरकर जी ने गांधी, नेहरू और सुहरावर्दी को मारने की आज्ञा दी है। यह भी सच नहीं है कि हम ऐसी

किसी योजना या षड्यंत्र के बारे में श्री बडगे के साथ सावरकर जी के अंतिम बार दर्शन करने गये हों और उन्होंने हमें आर्शीवाद के ये शब्द कहे हों– 'सफल रहो और वापिस लौटो!' यह असत्य है कि आपटे ने या मैंने बडगे को कहा कि सावरकर ने हमें कहा है कि गांधीजी के सौ बरस पूर्ण हो चुके है इसलिए तुम अवश्य सफल हो जाओगे। मैं न तो इतना अंधश्रद्ध था कि सावरकर की भविष्यवाणी के आधार पर कार्य करता और न इतना मूर्ख था कि ऐसे भविष्य कथन पर भरोसा करता।

★

९ गांधी जी की राजनीति का क्ष-दर्शन

उपभाग १

४८. दि.३० जनवरी सन् ४८ की घटना का कारण राजनैतिक और केवल राजनैतिक था। मैं इस बात को सविस्तार बताऊँगा। मुझे इनमें कोई आपत्ति नही थी कि गांधी जी हिन्दू-मुस्लिम और अन्य धर्मों की पवित्र पुस्तकों का अध्ययन करते थे या वे अपनी प्रार्थना में गीता, कुरान और बाईबिल से श्लोक पढते थे। सब धर्मों की पुस्तकें पढ़ना मैं बुरा नही समझता था। भिन्न-भिन्न धर्म ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन करना मैं गुण समझता हूँ। मेरे मतभेद के कारण और थे।

४९. उत्तर में वायव्य सीमा प्रान्त से लेकर दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक और कराची से आसाम तक इस सारी भूमि को मैं अपनी मातृभूमि मानता रहा हूँ। इतने विशाल देश में प्रत्येक धर्म के लोग रहते है। मैं समझता हूं कि उन सबको अपने धर्म पर चलने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। भारत में हिन्दुओं की संख्या सब से अधिक है इस देश से बाहर ऐसा कोई स्थान नहीं है जिसे हम अपना कह सके। भारतवर्ष प्राचीन काल से ही हिन्दुओं की मातृभूमि है और पुण्यभूमि भी। हिन्दुओ के कारण यह देश प्रसिद्ध हुआ। कला, विज्ञान, धर्म एवं संस्कृति में इसको जो ख्याति मिली, वह भी हिन्दुओं के कारण मिली। हिंदुओं के पश्चात् यहाँ मुसलमानों की जनसंख्या सबसे अधिक है। मुसलमानों ने दसवी शताब्दी से यहाँ प्रवेश करना आरम्भ किया और भिन्न-भिन्न स्थानोंपर अपने राज्य स्थापित करके भारत के बहुत बड़े भाग पर अपना अधिपत्य जमा लिया।

५०. अंग्रेजों के भारत में आने के पहले ही हिन्दू और यवन शताब्दियों के अनुभव के पश्चात् यह जान चुके थे कि मुसलमान यहाँ राजा बनकर नहीं रह

सकते और न ही उन्हें यहाँ से निकाला ही जा सकता है। दोनों यह जानते थे कि दोनों को स्थायी रूप से यहाँ रहना है। मराठों की उन्नति, राजपूतों के विद्रोह और सिखों की शक्ति के कारण मुसलमानों का आधिपत्य बहुत निर्बल हो चुका था। वैसे तो मुसलमान तब भी यहाँ राज्य जमाए रखने का इरादा किये हुए थे, परन्तु अनुभवी लोग जानते थे कि ऐसी आशाएँ निरर्थक है। दूसरी ओर अंग्रेज हिन्दुओं और मुसलमानों से युद्ध में जीते हुए थे और नीति में इन दोनों से अधिक निपुण थे। उन्होंने अपनी योग्यता और राज्य-प्रबंध से जनता के जीवन और सम्मान को सुरक्षित किया। उनको दोनों ने यहाँ का राजा स्वीकार कर लिया। हिन्दुओं और मुसलमानो में तो पहले से ही कटुता थी। अंग्रेजो ने इस कटुता का लाभ उठाया और अपने राज्य को अधिक समय तक जमाये रखने के लिए हिन्द और मुसलमानों की परस्पर कटुता को और बढ़ावा दिया। कांग्रेस, इस ध्येय से बनायी गयी थी कि जनता को उसके अधिकार दिलाये जायें। मेरे मन में प्रारम्भ से ही, जब मैं कार्यक्षेत्र में उतरा, ये विचार बहुत दृढ़ हो गये थे कि विदेशी राज्य को समाप्त करके उसके स्थान पर अपना राज्य स्थापित किया जाना चाहिये।

५१. मैंने अपने लेखों और भाषणों में सदा यही बात कही है कि चुनाव के समय या मन्त्रिमण्डल बनाते समय अथवा अन्य ऐसे कार्यों में सम्प्रदाय का प्रश्न नहीं उठाना चाहिये। स्पष्ट रूप से समझने के लिए आप हिंदू महासभा के बिलासपुर के अधिवेशन के प्रस्तावों को देख सकते है जो आगे दिये भी गए है। (प्रस्ताव पढ़े गये, परिशिष्ट देखिये) कांग्रेस के नेतृत्व में यह विचार दृढ़ होता जा रहा था, परन्तु मुसलमानों ने अग्रसर होकर इसमें भाग नहीं लिया। पीछे वे अंग्रेजों की चाल में आ गये। हिन्दू और मुसलमानो में फूट डालकर ही अंग्रेज यहाँ राज्य कर सकते थे। अंग्रेजोनें उनको सहायता की और उससे प्रोत्साहित होकर मुसलमान यह अभिलाषा करने लगे कि हिंदुओं पर आगे उनका आधिपत्य पुनः हो सकेगा। यह अभिलाषा प्रथम बार १९०६ में प्रकट हुई जब वाइसराय लार्ड मिंटो का संकेत पाकर मुसलमानो ने हिन्दुओं से अलग चुनाव के अधिकार मांगे और अंग्रेजों ने धूर्ततापूर्वक यह कहकर अलग चुनावों को स्वीकार कर लिया कि ऐसा करने से अल्प सख्या वाली जाति अर्थात् मुसलमानों के अधिकार सुरक्षित हो जायेंगे। कांग्रेस ने पहले तो इसका थोड़ासा विरोध किया, परन्तु १९३४ में उसने इस प्रस्ताव को पास कराने मे अप्रत्यक्ष सहायता की। कांग्रेस ने कहा — 'हम इस विषय में न 'हाँ' कहते है और न 'ना'।

५२. इस प्रकार देश के विभाजन की माँग की नीव पड़ी और नीव पडते ही यह माँग बढी। जो प्रारम्भ में जरा-सी बात थी, उसने अन्त में पाकिस्तान का रूप धारण कर लिया। वास्तविक गलती तो यह ई हुकि हम सबने यह सोचा कि

किसी प्रकार सब मिलजुल कर अंग्रेजों को निकाल दें फिर आपस के मतभेद स्वयं ही मिट जायेंगे।

५३. सिद्धान्ततः मैं चुनाव के अधिकारों के विभाजन के विरुद्ध था, परन्तु हमें उस समय यह सहन करना पड़ा, फिर भी मैंने इस बात पर जोर दिया जो कि दोनों जातियों की संख्या के अनुसार ही सदस्य लिये जायं।

५४. मुस्लिम लीग को एक ओर तो अंग्रेजों की सहायता मिलती रही और दूसरी ओर गांधी जी के नेतृत्ववाली कांग्रेस का आशीर्वाद मिलता रहा। उधर मुसलमानों ने मुस्लिम लीग को अपना पूरा समर्थन दिया और वह प्रतिवर्ष अपने अलग अधिकारों की मांगों को बढ़ाती गयी।

५५. जैसे मैंने पहले कहा है, कांग्रेस वैसे तो अलग चुनाव के सिद्धान्त के विरुद्ध थी, परन्तु १९१६ में उसने लखनऊ पैक्ट में मुसलमानों की अनुचित मांगों को स्वीकार कर लिया और फिर हर बार वह स्वीकार करती गयी। इस प्रकार कांग्रेस, जो अपने ध्येय से हटती गयी, आगे एक असहनीय कष्ट का कारण बनी।

५६ सन १९२० से अर्थात लोकमान्य तिलक के पश्चात् गांधी जी का प्रभाव कांग्रेस में बढ़ा और बल पकड़ता गया। उन्होंने जनता को जागृत करने के लिये जो कार्य किये उनका बहुत प्रभाव पड़ा। वे सत्य और अहिंसा के नारे लगवाते रहे। कोई भी समझदार व्यक्ति उन नारों को बुरा नहीं कह सकता था। वास्तव में इन उद्घोषों में नवीन बात न थी। प्रत्येक शांतिपूर्ण आंदोलन में ऐसे उद्घोष लगाये ही जाते हैं। यह आशा करना कि जनता साधारण जीवन में ऐसे उच्च सिद्धान्तों पर चलेगा, केवल एक स्वप्न है। वास्तविकता यह है कि अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये, अपने सम्मान की रक्षा करने के लिये और अपने आश्रितों और देश के लिए कुछ करने के लिए हमें अहिंसा छोड़कर हिंसा पर चलना पड़ेगा। मेरा अटल विश्वास है कि अत्याचारी का सामना शस्त्रों से ही किया जा सकता है। अत्याचारी शत्रु का शस्त्रों से दमन करना मैं पवित्र कर्तव्य समझता हूं। श्री रामचंद्र ने सीता को मुक्त कराने के लिये रावण को मारा। श्रीकृष्ण ने कंस के अत्याचारों का अन्त करने के लिए कंस को मारा। महाभारत में अर्जुन को भी बहुत से ऐसे व्यक्तियों को मारना पड़ा जिनमें उनके बहुत से निकट संबंधी भी थे। यहां तक कि पूजनीय भीष्म पितामह को भी मारना पड़ा क्योंकि वे अत्याचारी के पक्ष में थे। यदि कोई राम, कृष्ण और अर्जुन को हिंसक समझता है तो उसको मानवता के सिद्धान्त का ज्ञाता नहीं कहा जा सकता। ऐसा कहना चाहिए कि उसे संसार की कार्य-प्रणाली का ही ज्ञान नहीं है। यह छत्रपति [illegible] ही वीरता थी जिसने भारत में यवनों के अत्याचार को रोका। [illegible] प्रकार अफजलखां को मारा वह बिल्कुल ठीक तरीका था, अन्य

शिवाजी को मार डालता। गांधी जी, शिवाजी, प्रताप और गुरु गोविंदसिंह की निन्दा करते थे और उनको गलत पथ पर चलानेवाले कहते थे और इस प्रकार अपने बौद्धिक दिवालियापन का प्रमाण दे रहे थे।

५७. प्रत्येक देशभक्त वीर ने अपने समय में देश को अत्याचारों से बचाया। शक्ति से विदेशी आक्रमणों को रोका और मातृभूमि को मुक्त कराया। दूसरी ओर इस महात्मा के ३० साल के नेतृत्व में यह करतूतें हुई, जो पहले कभी नाही हुई थी। अधिक से अधिक मन्दिरों को अपवित्र किया गया। अधिक से अधिक लोगों को मुसलमान बनाया गया और अधिकाधिक स्त्रियों का अपमान हुआ और अन्त में देश का एक तृतीयांश हाथ से जाता रहा। मुझे आश्चर्य इस बात का है कि गांधीजी के अनुयायी उस स्पष्ट बात को भी नहीं देख सके जिसको कोई अन्धा भी देख सकता है। गांधी जी तो शिवाजी, प्रताप और गुरु गोविन्दसिंह के समक्ष कुछ भी नहीं थे। वे उन वीरों की निन्दा करते थे जो उनकी सीमा से बाहर का काम था और नितान्त अनुचित था।

५८. यह पार्टी जिसके हाथ में अंग्रेजों की दी हुई शक्ति है, जिसने मुसल-मानों की हिंसा के आगे सर झुका कर कायरता से भारत के विभाजन को स्वीकार कर लिया, आज सैकड़ों उल्टे-सीधे उचित अनुचित उपायों से अपने स्वार्थों के लिऐ प्रयत्नशील है। गांधीजी की मृत्यु भी उसकी स्वार्थ सिद्धि के उपयोग में लायी जा सकती है, परन्तु गांधीजी का ठीक स्थान कहाँ पर है, यह इतिहास ही समय आने पर बतायेगा। मेरा कहना विपरीत लगेगा, किन्तु वास्तव में गांधी एक हिंसक शालि मूर्ति थे जिन्होंने सत्य अहिंसा के नाम पर देश पर घोर आपत्तियों का भार डाल दिया, जब कि प्रताप, शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह देशवासियों के हृदयों में सदा जीवित रहेंगे, क्योंकि उन्होंने देश को रावणों से मुक्त कराया और जाति का मुख उज्ज्वल किया।

५९. गांधीजी १९१४ में इंगलैंड से आये और उसी समय उन्होंने देश के राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया। दुर्भाग्य से श्री फिरोजशाह मेहता और श्री गोखले जिनको गांधीजी अपना गुरु कहते थे, शीघ्र ही स्वर्गवासी हो गये।

गांधीजी ने अपना कार्य अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे एक आश्रम खोलकर प्रारम्भ किया। सत्य और अहिंसा के जयघोष कराये। उन्होंने स्वयं इस बात को बहुत बार स्वीकार किया कि वे अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य कर जाते हैं। मुसलमानों को खुश करने के लिए उन्हें अपने सिद्धान्त जब तोड़ने पड़ते थे तो वे इसमें कभी नहीं चूकते थे। सत्य और अहिंसा वैसे तो बहुत अच्छे सिद्धान्त हैं, परन्तु उनको जीवन में बरता जाय तभी तो वह अच्छे कहलायेंगे। मैं आगे चल कर बताऊँगा कि किस प्रकार गांधीजी स्वयं इन सिद्धान्तों को बूरी तरह तोड़ने के अपराधी हैं।

६०. गांधीजी के राजनैतिक जीवन को निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(१) १९१५ से १९३९-४० तक

(२) १९३९-४० से ३ जून १९४७ तक, जब कांग्रेस जिन्ना के सामने झुकी और इन महात्माजी के नेतृत्व में उसने पाकिस्तान स्वीकार किया।

(३) तीसरा हिस्सा देश के विभाजन से उस समय तक, जब उन्होंने पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया दिलाने के लिए आमरण अनशन करने का निश्चय किया और कुछ दिन बाद उनकी मृत्यु हो गयी।

६१. जब गांधीजी १९१४ के अन्त में भारत लौटे तब दक्षिणी अफ्रीका में भारतवासियों का नेतृत्व करने के कारण उनका काफी नाम था। वहां उन्होंने भारत के सम्मान के लिये ही संघर्ष किया था और अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध वे वहां रहनेवाले भारतवासियों के नागरिक अधिकारों के लिये लड़े थे। वहां हिन्दु, मुसलमान और पारसियों ने बिना भेदभाव के उनकी आज्ञा का पालन किया और दक्षिणी अफ्रिका में उनको बहुत बढाया। भारत में भी हम सबने उनका बहुत आदर किया।

६२. जब वे भारत में भारतवासियों के साथ मिलकर स्वतंत्रता का संघर्ष करने के लिए आए तो उनको यह आशा थी कि यहां भी उन्हें सभी वर्गों की ओर से पूर्ण विश्वास और सहयोग मिलेगा, परन्तु वे शीघ्र ही निराश हो गये। भारत दक्षिणी अफ्रीका नहीं था। अफ्रीका में भारतवासियों की केवल एक ही मांग थी कि उनको भी नागरिक अधिकार दिये जायें। उन सबको एक ही शिकायत थी। इसलिए हिंदू, मुसलमान और पारसी सब संगठित होकर शत्रु के विरुद्ध खड़े हो सके। उनका दक्षिणी अफ्रीका की सरकार के साथ और कोई झगडा नहीं था। भारत में बात और थी। यहां अपने राज्य, अपनी सरकार और स्वतंत्रता के लिए लडाई चल रही थी। यहां हम अंग्रेजों के प्रभुत्व को समाप्त करना चाहते थे जिनके पांव इस भूमिपर अच्छी तरह जम चुके थे और जो यहां जमे रहने के लिए प्रत्येक सम्भव साधन का प्रयोग कर रहे थे। हिन्दू और मुसलमानों में फूट डाली जा रही थी और बहुत सीमा तक यह नीति सफल भी होती जा रही थी। इसलिए गांधीजी को प्रारंभ में ही ऐसे प्रश्न का छेड़ना पड़ा जिसका उन्हें दक्षि[illegible] कोई अनुभव नहीं हुआ था। दक्षिण अफ्रीकामें तो उनका काम [illegible] रहा। विभिन्न जातियों का अर्थात सबका वहां एक ही [illegible] तो चुनाव भी अलग-अलग होते थे। गांधीजी के मन में [illegible] जातियों का नेतृत्व करने की महत्वाकांक्षा प्रबल रूप म[illegible] सच्ची थी, परन्तु उनको यह पता न था कि ऐसे [illegible]

जहाँ ऐसी फूट पड़ी हो। ऐसी सेना का अधिपति बनना जो परस्पर भीषण मतभेद रखती हो, मूर्खता नहीं तो और क्या है ?

६३. गांधीजी के भारत आने के बहुत समय पश्चात तक उनको सम्पूर्ण भारत की राजनीति का नेतृत्व नहीं मिला। मिलने की सम्भावना भी नहीं थी। दादाभाई नौरोजी, सर फिरोज शाह मेहता, लोकमान्य तिलक और श्री गोखले के जीवनकाल में गांधीजी यद्यपि लोकप्रिय तो हो गये थे, परन्तु इन नेताओं से वे आयु में भी कम थे और अनुभव में भी। एकाएक गांधीजी का भाग्य चमका और लोकमान्य तिलक का देहांत हो गया। उनकी मृत्यु के पश्चात् ही अन्य नेता भी स्वर्ग सिधार गये और गांधीजी के लिए रास्ता साफ हो गया। वे राजनीति के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ गये।

६४ उन्होंने देखा कि विदेशी अंग्रेज भारतवासियों में फूट डाल रहे थे और मुसलमानों में विचित्र प्रकार की इस्लाम भक्ति की भावना भर रहे थे। उन्होंने सोचा की जब तक जनता में एकता नहीं आयेगी तब तक अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ना अत्यंत कठिन है। इसलिए उन्होंने हिंदू मुसलमान एकता पर अपनी राजनीति की नीव डाली। अंग्रेजों की चालों को कुचलने के लिए उन्होंने मुसलमानों से स्नेह बढ़ाना प्रारंभ किया और उनके बहुत से वादे पूरा कर दिए, जिनमें हिंदुओं की हानी थी। इस प्रकार उन्होंने मुसलमानों की शक्ति बढ़ा दी। यह एकता बढ़ाने का कार्य उस समय तक तो ठीक था जब तक भारत की स्वतन्त्रता को मुख्य समझ कर यह किया गया, परन्तु कुछ समय पश्चात् गांधीजी ने अपना ध्येय ही मुसलमानों को संतुष्ट करना बना लिया जिसका परिणाम आज हम देख रहे हैं।

६५. सन् १९१९ तक गांधीजी निराश रहे और मुसलमानों का विश्वास ग्रहण न कर पाये। वे वादे पर वादे करते चले गये। यहाँ तक कि उन्होंने मुसलमानो की मर्जी के अनुसार सब कुछ उन्हें देने की सोच ली। उन्होंने देश में खिलाफत आंदोलन के लिए सहानुभूति उत्पन्न की, और इसी कारण खिलाफत आंदोलन को कांग्रेस की पूरी सहायता मिली। कुछ समय तक तो ऐसा प्रतीत होता रहा की गांधीजी सफल हो जायेंगें क्योंकि भारत के प्रसिद्ध मुसलमान नेता उनके अनुयायी प्रतीत होते थें। १९२०-२१ में जिन्ना साहब का कोई महत्व न था और अलीभाई (मोहम्मद अली और शौकतअली) मुसलमानों के नेता थे। गांधीजी ने अली भाइयों को बहुत चढ़ाया और उनकी बहुत प्रशंसा की। उन्हें हर प्रकार की सुविधा दी, परन्तु जो कुछ गांधीजी करना चाहते थे, वह कभी नहीं हुआ। मुसल-मान खिलाफत आंदोलन में लगे, परन्तु खिलाफत आन्दोलन को उन्होंने कांग्रेस से अलग संस्था ही समझा। उन्हीं दिनों मोपला विद्रोह हुआ और उसने यह सिद्ध कर दिया कि जिस एकता पर गांधीजी टकटकी लगाए बैठे थे उसका मुसलमानों पर

६०. गांधीजी के राजनैतिक जीवन को निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(१) १९१५ से १९३९-४० तक

(२) १९३९-४० से ३ जून १९४७ तक, जब कांग्रेस जिन्ना के सामने झुकी और इन महात्माजी के नेतृत्व में उसने पाकिस्तान स्वीकार किया।

(३) तीसरा हिस्सा देश के विभाजन से उस समय तक, जब उन्होंने पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया दिलाने के लिए आमरण अनशन करने का निश्चय किया और कुछ दिन बाद उनकी मृत्यू हो गयी।

६१. जब गांधीजी १९१४ के अन्त में भारत लौटे तब दक्षिणी अफ्रीका में भारतवासियों का नेतृत्व करने के कारण उनका काफी नाम था। वहां उन्होंने भारत के सम्मान के लिये ही संघर्ष किया था और अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध वे वहां रहनेवाले भारतवासियों के नागरिक अधिकारों के लिये लड़े थे। वहां हिन्दु, मुसलमान और पारसियों ने बिना भेदभाव के उनकी आज्ञा का पालन किया और दक्षिणी अफ्रिका में उनको बहुत बढ़ाया। भारत में भी हम सबने उनका बहुत आदर किया।

६२. जब वे भारत में भारतवासियों के साथ मिलकर स्वतंत्रता का संघर्ष करने के लिए आए तो उनको यह आशा थी कि यहां भी उन्हें सभी वर्गों की ओर से पूर्ण विश्वास और सहयोग मिलेगा, परन्तु वे शीघ्र ही निराश हो गये। भारत दक्षिणी अफ्रीका नही था। अफ्रीका में भारतवासियों की केवल एक ही मांग थी कि उनको भी नागरिक अधिकार दिये जायें। उन सबको एक ही शिकायत थी। इसलिए हिंदू, मुसलमान और पारसी सब सगठित होकर शत्रु के विरुद्ध खड़े हो सके। उनका दक्षिणी अफ्रीका की सरकार के साथ और कोई झगड़ा नही था। भारत मे बात और थी। यहां अपने राज्य, अपनी सरकार और स्वतंत्रता के लिए लड़ाई चल रही थी। यहां हम अंग्रेजों के प्रभुत्व को समाप्त करना चाहते थे जिनके पांव इस भूमिपर अच्छी तरह जम चुके थे और जो यहां जमे रहने के लिए प्रत्येक सम्भव साधन का प्रयोग कर रहे थे। हिन्दू और मुसलमानों में फूट डाली जा रही थी और बहुत सीमा तक यह नीति सफल भी होती जा रही थी। इसलिए गांधीजी को प्रारंभ में ही ऐसे प्रश्न का छेड़ना पड़ा जिसका उन्हें दक्षिण अफ्रीका में कोई अनुभव नही हुआ था। दक्षिण अफ्रीकामें तो उनका काम बिना बाधाओं से चलता रहा। विभिन्न जातियों का अर्थात सबका वहां एक ही स्वार्थ था, परन्तु भारत में तो चुनाव भी अलग-अलग होते थे। गांधीजी के मन में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों का नेतृत्व करने की महत्वाकांक्षा प्रबल रूप में थी। उनकी आकांक्षा तो सच्ची थी, परन्तु उनको यह पता न था कि ऐसे स्थानपर कैसे नेतृत्व किया जाय.

जहाँ ऐसी फूट पडी हो। ऐसी सेना का अधिपति बनना जो परस्पर भीषण मतभेद रखती हो, मूर्खता नहीं तो और क्या है ?

६३. गांधीजी के भारत आने के बहुत समय पश्चात तक उनको सम्पूर्ण भारत की राजनीति का नेतृत्व नही मिला। मिलने की सम्भावना भी नही थी। दादाभाई नौरोजी, सर फिरोज शाह मेहता, लोकमान्य तिलक और श्री गोखले के जीवनकाल में गांधीजी यद्यपि लोकप्रिय तो हो गये थे, परन्तु इन नेताओं में वे आयु मे मी कम थे और अनुभव मे भी। एकाएक गाधीजी का भाग्य चमका और लोकमान्य तिलक का देहात हो गया। उनकी मृत्यु के पश्चात् ही अन्य नेता भी स्वर्ग सिधार गये और गांधीजी के लिए रास्ता साफ हो गया। वे राजनीति के क्षेत्र में बहुत आगे बढ गये।

६४. उन्होंने देखा कि विदेशी अंग्रेज भारतवासियों में फूट डाल रहे थे और मुसलमानों मे विचित्र प्रकार की इस्लाम भक्ति की भावना भर रहे थे। उन्होंने सोचा की जब तक जनता में एकता नही आयेगी तब तक अंग्रेजो के विरुद्ध लड़ना अत्यंत कठिन है। इसलिए उन्होने हिंदू मुसलमान एकता पर अपनी राजनीति की नींव डाली। अंग्रेजो की चालों को कुचलने के लिए उन्होंने मुसलमानों से स्नेह बढ़ाना प्रारंभ किया और उनके बहुत से वादे शुरु कर दिए, जिनमें हिंदुओं को हानी थी। इस प्रकार उन्होने मुसलमानो की शक्ति बढा दी। यह एकता बढ़ाने का कार्य उस समय तक तो ठीक था जब तक भारत की स्वतन्त्रता को मुख्य समझ कर यह किया गया, परन्तु कुछ समय पश्चात् गाधीजी ने अपना ध्येय ही मुसलमानों को संतुष्ट करना बना लिया जिसका परिणाम आज हम देख रहे है।

६५. सन् १९१९ तक गांधीजी निराश रहे और मुसलमानो का विश्वास ग्रहण न कर पाये। वे वादे पर वादे करते चले गये। यहाँ तक कि उन्होंने मुसलमानो की मर्जी के अनुसार सब कुछ उन्हे देने की सोच ली। उन्होने देश में खिलाफत आंदोलन के लिए सहानुभूति उत्पन्न की, और इसी कारण खिलाफत आंदोलन को कांग्रेस की पूरी सहायता मिली। कुछ समय तक तो ऐसा प्रतीत होता रहा की गांधीजी सफल हो जायेंगें क्योंकि भारत के प्रसिद्ध मुसलमान नेता उनके अनुयायी प्रतीत होते थे। १९२०-२१ में जिन्ना साहब का कोई महत्व न था और अलीभाई (मोहम्मद अली और शौकतअली) मुसलमानों के नेता थे। गाधीजी ने अली भाइयों को बहुत चढाया और उनका बहुत प्रशंसा की। उन्हें हर प्रकार की सुविधा दी, परन्तु जो कुछ गांधीजी करना चाहते थे, वह कभी नही हुआ। मुसल-मान खिलाफत आंदोलन में लगे, परन्तु खिलाफत आन्दोलन को उन्होंने कांग्रेस से अलग संस्था ही समझा। उन्ही दिनों मोप्ला विद्रोह हुआ और उसने यह सिद्ध कर दिया कि जिस एकता पर गांधीजी टकटकी लगाए बैठे थे उसका मुसलमानों पर

लेशामत्र प्रभाव नही पडा है। मोपला विद्रोह में हिंदुओं का बड़ी संख्या में संहार हुआ। बहुतों को बलात् मुसलमान बनाया गया। उनके घर फूंक दिये गये और उनकी स्त्रियों का अपमान किया गया। अंग्रेजों पर इस विद्रोह का कुछ प्रभाव न पडा। कुछ महिनो में यह विद्रोह दबा दिया गया। गांधीजी ने देख लिया कि उनकी हिंदू मुस्लीम एकता कहाँ तक सफल हुई है।

खिलाफत आंदोलन असफल रहा, और गांधीजी की किसी ने नही सुनी। अंग्रेज अधिक शक्तिशाली हो गये और मुसलमान हिंदुओं के पक्के विरोधी हो गये, परन्तु गांधीजी अपनी एकता की जिद पर अड़े रहे। १९१९ में चुनाव के अधिकार अलग कर दिये और लेजीस्लेचर बोर्ड और कैबिनेट में भी सदस्य लेते समय जाति का ध्यान रखा जाने लगा। नौकरियाँ भी मुसलमान और हिंदू कह कर दी जाने लगी और मुसलमानों को ऊंची-ऊंची नौकरियाँ अंग्रेजों ने केवल इस कारण दी कि उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग नही लिया और वे अंग्रेजों के यहाँ रहने के पक्ष में रहे। मुसलमानो को सहायता अंग्रेजों ने यह कहकर की कि वह अल्पसंख्यक जाति की रक्षा कर रहे हैं और इस प्रकार हर मुसलमान मे हिन्दू के विरुद्ध विष भरा गया और गाधीजी के हिन्दू-मुस्लिम एकता के नारे निरर्थक रहे, परंतु अब भी वे इसी आशा में बैठे थे कि वे हिन्दू और मुसलमान दोनों का नेतृत्व करेंगे। ज्यों-ज्यों उनकी पराजय होती गयी त्यो-त्यों वे मुसलमानों के लिए अधिक बलिदान करने को तत्पर होते गये। देश की दशा बिगड़ती गयी और १९२४ में सबको यह निश्चय हो गया कि अंग्रेज सब प्रकार से सबल होकर जमे हुए हैं। हर प्रकार से अंग्रेज ही जीत में थे परन्तु जिस प्रकार हारा हुआ जुआरी दाँव पर दाँव लगाता चला जाता है उसी प्रकार गाधीजी भी दाँव लगाते चले गये। वे सिन्ध और सीमाप्रान्त को भी अलग करने पर सहमत हो गये। वे मुस्लिम लीग की माँगों को पूरा करते रहे, चाहे वे उचित रही हों अथवा नही। केवल इस आशा में कि मुसलमान स्वतन्त्रता के युद्ध में उनका नेतृत्व स्वीकार करेंगे। कालान्तर में अली भाइयों की पूछ नही रही और जिन्ना का नेतृत्व बढने लगा। जिन्ना ने काँग्रेस और अंग्रेजो के दिये हुए अधिकारों को स्वीकार करके और अधिक माँगे उग्र रूप से रख दी। राउंड टेबल कॉफ्रेंस में बम्बई से सिन्ध प्रान्त अलग कर दिय गया। मिस्टर जिन्ना फेडरेशन म उस वक्त तक अलग रहे जब तक कि गाधीजी ने स्वयं मि० मैक्डॉनल्ड (ब्रिटिश प्रधान मंत्री) को अलग-अलग चुनाव अधिकार देने के लिए नही कहा और इस प्रकार से विभाजन के बीज बो दिये गये। १९३५ के सुधारो में यह भेद और भी बढा दिया गया। जिन्ना ने हर बात का पूरा लाभ उठाया। कॉग्रेस ने पृथक्-पृथक् चुनाव के अधिकारों को मान लिया, हालांकि वह ऊपर से कहती रही कि

वह इसको न मानती है और न इन्कार करती है। सन् १९३९ के महायुद्ध में श्री जिन्नाने खुल्लम-खुल्ला कह दिया कि जब मुसलमानों के अधिकारों को माना जायगा तभी मुसलमान युद्ध में अंग्रेजो की सहायता करेगे अप्रेल १९४० मे अर्थात् युद्ध होने के छः मास के अन्दर ही जिन्ना ने दो राष्ट्रो के सिध्दान्त के आधारपर पाकिस्तान की मांग रख दी। जिन्ना ने इस बात को भुला दिया कि भारतवर्ष में अधिकांश हिन्दू और मूसलमान इकट्ठे रहते थे। किसी प्रान्त में हिन्दू या मूसलमानों की संख्या इतनी कमी न थी कि अल्पसंख्यक जाति की रक्षा का प्रश्न विभाजन से ही हल हो सकता।

६६. अंग्रेजो को पाकिस्तान की योजना बहुत पसन्द आयी, क्योंकि इस योजना से हिन्दू और मूसलमान महायुध्द काल में मिल नही सकते थे और हर प्रकार से अंग्रेज निरापद और निश्चित रह सकते थे। मूसलमान लड़ाई में मदद करते रहे और कांग्रेस कभी तो युध्द में सहायता देने का विरोध करती रही और कभी तटस्थ बनी रही। उस समय हिंदू महासभा ने यह अनुभव किया कि यह अवसर है जब हिंदू नवयुवकों को सैनिक शिक्षा दी जा सकती है और यह भी कि अंग्रेज जान बूझ कर हिंदुओं को सैनिक शिक्षा से अलग रखा रहे हैं। युद्ध के कारण हर प्रकार की सेना में जाने के द्वार खुले थे और महासभा ने यह जोर दिया को हिंदु युद्ध में भाग लेकर सैनिक शिक्षा प्राप्त करे। इसके परिणामस्वरुप १५ लाख हिंदुओं ने आधुनिक सैनिक शिक्षा प्राप्त की। आज कांग्रेस हिंदु महासभा की इस दूरदर्शिता का लाभ उठा रही है क्योंकि कांग्रेस सरकार जो सेनाए काश्मीर में भेजती रहीं वहां हिन्दु महासभा के विचारों के लोगों की कोशिश का हो परिणाम हे। सन् ४२ में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेडा। हर एक प्रांत में कांग्रेसिया ने भयानक कार्य किये। उत्तरी बिहार में एक भी रेलवे स्टेशन ऐसा न था जो कि जला न दिया गया हो या जिसे हानि न पहूंचायी गयी हो, परन्तु कांग्रेस के उग्र विरोध के अनन्तर अंग्रेज विजयी हो गये। अप्रैल १९४५ में जर्मनी हार गया और अगस्त ४५ में जपान। सन् १९४२ का 'भारत छोडो' आंदोलन असफल रहा। अंग्रेज जीत गये और कांग्रेसी नेताओं ने यह निश्चय किया कि अंग्रेजों के साथ संधि की जाय और अन्त में कांग्रेस ने यह नीति अपना ली कि कांग्रेस के हाथ में सत्ता रहे और शांति रहे, चाहे इन दो बातों के बदले कितना भी बडा मूल्य क्यों न देना पड़े। कांग्रेस ने अंग्रेजो से संधि कर ली और उनसे सत्ता ले ली। अन्ततोगत्वा वह जिन्ना की हिंसा के आगे झुक गयी और भारत का एक तिहाई भाग अलग देश मानकर उसको दे दिया गया जिसको इस्लामी देश मान लिया गया। इस कार्य में २०लाख मनुष्यों का संहार हुआ। पं० नेहरू अब यह कह रहे है कि भारत में सब जातियो का बराबर अधिकार है और जो लोग उनको याद दिलाते हैं कि गत वर्ष ही उन्होने धार्मिक

आधार पर जिन्ना के साथ संधि की थी, उनके साथ वे कठोर व्यवहार करते हैं। पं० नेहरू को अब भी भ्रम है कि वे हिंदू-मुस्लीम की एकता कर सकते है। यह उस आदमी की स्थितों है जो घर के बाहर तो संसार से डरे और अपने घर में पत्नी से। पं० नेहरू अब भी मुसलमानों से डरते है।

६७. मैं याद दिलाना चाहूँगा की कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' आदोलन को छोड़ने का वायदा किया, अंग्रेजोंको विश्वास दिलाया की कांग्रेस जापान के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता करेगी और वाइसराय लार्ड वैवल को भारतीय सरकार का प्रधान मानेगी। कांग्रेस ने कान्फ्रेंस चैम्बर में जानें के पहले इन तीन बातों को मान लिया था।

६८. अब मैं भारत के विभाजन की दुर्घटना और गांधीजी के वध की चर्चा करूँगा। मुझे इन बातों की चर्चा करके प्रसन्नता नही होती, परन्तु भारतवासियों को और सारे ससार को उन तीस वर्षों के इतिहास का पता होना चाहिए जिनसे भारत के टुकड़े किये जाने की भूमिका बनी और हिंदू मुस्लिम एकता के नाम पर गाधी के गलत मार्गदर्शन में कांग्रेस अपना वास्तविक ध्येय खो बैठी। पाच करोड मुसलमान हमारे देश से अलग हो गये है। पश्चिमी पाकिस्तान में हिंदू या तो मार डाले गये हैं या उनका सब कुछ नष्ट हो चुका है। पूर्वी पाकिस्तान में भी यही हाल हो रहा है। १५ करोड़ १० लाख आदमी बेघरबार हो गये जिनमें ४० लाख मुसलमान भी हैं और इतने भयानक परिणाम के बाद भी गांधीजी अपनी उसी नीति पर चले जा रहे थें। इस दशा को देखकर मेरा खून खौल उठा और मैं यह सहन न करे सका कि वे और कुछ समय तक देश का विध्वंस करते रहें। मैं व्यक्तिगत रूप मे गांधीजी के विरुद्ध कटु शब्दों का प्रयोग नही करना चाहता, परंतु मैं यह अवश्य कहना चाहता हूं कि मैं उनको कार्य-प्रणाली और नीति का घोर विरोधी था और हू। वास्तव में गांधीजी ने वह काम किया जो अंग्रेज हिंदू मसलमानों मे फूट डाल कर करना चाहते थे। उन्होने भारत का विभाजन करने में अंग्रेजों की सहायता की और मुझे तो अब भी विश्वास नही है कि अंग्रेज भारत से अपना सम्बन्ध तोड देने का इरादा रखते हों।

*

१० गांधी जी की राजनीति का क्ष-दर्शन

उपभाग १

६९. बत्तीस वर्षों से गांधीजी मुसलमानों के पक्ष में जो कार्य कर रहे थे और अन्त में उन्होंने जो पाकिस्तान को पचपन करोड रुपये दिलाने के लिये अनशन करने का निश्चय किया, इन बातों ने मुझे विवश किया कि गांधीजी को समाप्त कर देना चाहिए। भारत आने के पश्चात् उन्होंने ऐसी नीति पर कार्य किया और अपने निर्णय को वे इस प्रकार अंतिम निर्णय समझने लगे कि यदि देश को उनके नेतृत्व की आवश्यकता हो तो वह उनके कहने पर चले अन्यथा वे कांग्रेस से अलग होकर अपने ढंग पर व्यक्तिगत रूप से चलने पर तैयार हो जाते थे। ऐसी हालत में यही हो सकता था कि या तो उनकी सब प्रकार की अच्छी बुरी बातें मानी जायें और उनके दृष्टीकोण के अनुसार कार्य किया जाय या उनके बिना कार्य किया जाय। प्रत्येक निर्णय वे स्वयं करते थे। असहयोग आंदोलन के सब कुछ वही थे। सब अधिकार उन्होंने अपने पास ही रखे कि कब उसे प्रारंभ और समाप्त किया जाय। चाहे आंदोलन सफल हो या असफल, चाहे इसके कारण कितनी भी आपत्तियाँ आयें, परंतु गांधीजी अपनी जिद्दसे नहीं हटते थे। अन्य किसी को आंदोलन की रूपरेखा नहीं जानने देते थे। उनका सिद्धांत था एक सत्याग्रही कभी असफल हो ही नहीं सकता, परंतु सत्याग्रह की परिभाषा उन्होंने कभी स्पष्ट नहीं की। गांधीजी अपने सभी विषयों में स्वयं परामर्शदाता होते थे और स्वयं निर्णयकर्ता। गांधीजी के ऊँचे चरित्र और परिश्रम के कारण उनको ये सब बातें निभ जाती और कोई उनके दुराग्रह से टक्कर न ले सका। कांग्रेस में बहुत से लोग यह जानते थे कि गांधीजी की नीति ठीक नहीं है, परंतु उनके लिए केवल एक ही मार्ग था कि या तो कांग्रेस छोड दें या अपने आपको उनकी योजना के समक्ष अर्पण कर दें। ऐसी दशा में गांधीजी भूल करते गये, असफलता पर असफलता पाते रहे और आपत्तियां लाते रहे। नीचे मैं उनकी उन भीषण भूलों का वर्णन करूंगा जो उन्होंने अपने बत्तीस वर्ष के नेतृत्व में की जब उन्हें कोई रोकने वाला नहीं था।

७०. उन नारों ने जो गांधी जी ने देश को दिये कितनी हानी पहुँचायी और अंत में उन नारों का कितना भयानक परिणाम हुआ, यह उन्होंने कभी नहीं सोचा।

(ए) खिलाफत – पिछले युद्ध के कारण टर्की के राज्य का बहुत सा भाग अफ्रीका का मध्यपूर्व उसके हाथों से चला गया था। यूरोप में भी जो स्थान उसके

अधिकार में थे वे उसके हाथों से निकल चुके थे और केवल थोड़ा सा भूमिखंड रह गया था। तुर्क नवयुवकों ने टर्की के सुलतान को राज्य छोड़ने के लिए बाध्य कल किया और इसके साथ ही खिलाफत आंदोलन भी खत्म कर दिया। भारतीय मुसलमान बहुत ही उग्रता से खिलाफत के पक्ष में थे। उन्हें विश्वास था कि अंग्रेज ही सुलतान के पतन और खिलाफत आंदोलन के कारण थे। इसलिए उन्होंने ही खिलाफत पुनः प्रारम्भ करने के लिये आदोलन किया। गांधीजी ने सोचा कि खिलाफत आंदोलन का पक्ष लेकर वह भारत के मुसलमानो का नेतृत्व सहज में ही प्राप्त कर लेंगे और इस प्रकार यदि हिंदू मुसलमानो में एकता हो गयी तो अंग्रेज शीघ्र ही स्वराज्य दे देंगे। गांधीजी ने खिलाफत आदोलन में कांग्रेस को लगा दिया और इस प्रकार राजनैतिक आंदोलन में साम्प्रदायिकता ले आये जो कि बहुत महंगी पड़ी और भारत के लिए अत्यत आपत्ति का कारण बनी। कुछ समय तक तो खिलाफत आदोलन सफल होता दिखायी दिया जो मुसलमान खिलाफत के पक्ष में न थे उनका महत्त्व जाता रहा और जो खिलाफत के लिये कार्य कर रहे थे उनकी महत्ता बहुत अधिक बढ़ गयी। वे लोकप्रिय हो गये जिस प्रकार अली भाई। जिन्ना को तब कोई महत्त्व न था और कुछ वर्षों तक उसको और किसी ने ध्यान भी नहीं दिया था। आगे चलकर खिलाफत आदोलन को दबा दिया गया और ...मोर्ले रिफार्म की सहायता से खिलाफत के प्रभाव को सर्वथा नष्ट मुसलमानों ने कांग्रेस और खिलाफत को सदा अलग समझा के समय कांग्रेस की मदद को स्वीकार किया था, परंतु वे कां थे। जब आदोलन असफल रहा तो मुसलमानों की बहुत क्रोध उन्होंने हिंदुओं पर उतारा। भारत में विभिन्न स्थानों हुए और प्रत्येक स्थान पर हिंदुओं को हानि पहुंची। महा एकता केवल एक स्वप्न बनकर रह गयी।

(बी) मोपलाओं का उत्पात—मालाबार, पंजाब हिंदुओं पर अत्यधिक अत्याचार हुए। जिस दुर्घटना पुकारा जाता है उसमें हिंदुओं की धन सम्पत्ति और हुआ। सैकड़ों हिंदुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना किया गया, किंतु गांधीजी, अपनी नीति के कारण अत्याचारियों के विषय में उन्होने एक भी शब्द न कांडों को रोकने के लिये कोई कार्य ही करने दिया दार कर दिया कि मालाबार में हिंदुओं को मुसलम ...बना 'यंग इंडिया' में उन्होने प्रकाशित किया कि केवल एक ही ऐसी दुर्घट यद्यपि उनके अपने मुसलमान मित्रों ने स्वीकार किया कि मुसलमान बनाने की घटनाएं कई हुई है, परंतु उन्होंने अपने वक्तव्य को नही सुधारा और मोपला

मुसलमानों की सहायता के लिये निधि-संग्रह (फंड) शुरू कर दिया। इतने पर भी हिन्दू मुस्लिम एकता का ध्येय उन्हें कभी प्राप्त नहीं हो सका।

(सी) अफगानिस्तान के अमीर के साथ सहायता

जब खिलाफत आन्दोलन असफल हो गया तब अली भाइयों ने निश्चित किया कि किसी प्रकार खिलाफत आन्दोलन की भावना को जीवित रखा जाना चाहिये। उनका उद्‌घोष था– 'जो खिलाफतका शत्रु है, वह मुसलमानों का शत्रु है।' और चूंकि अंग्रेजों के कारण टर्की के सुलतान की हार हुई और उसे गद्दी छोड़नी पड़ी इसलिये हर मुसलमान अंग्रेजों का शत्रु है और प्रत्येक मुसलमान का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह अंग्रेजो का विरोध करे। इस ध्येय की पूर्ति के लिए गांधी जी और अली भाइयों ने गुप्त रूप से अमीर अफगानिस्तान को भारत पर हमला करने का निमन्त्रण दिया और उसे हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। इस षड्यन्त्र के पीछे बहुत बडा इतिहास है। अली भाई इस बात को स्वीकार करते थे कि उनका इस षड्यन्त्र में हाथ था। गांधी जी ने हिन्दू मुस्लिम एकता प्राप्त करने के लिये अली भाइयों से वादा किया कि उनको हर प्रकार की सहायता दी जायेगी। गांधी जी ने खुल्लमखुल्ला वादा किया कि खिलाफत को पुनर्जीवित करने के लिये वे मुसलमानों की पूरी सहायता करेंगे। भारत पर अमीर अफगानिस्तान के अधिकारों की योजना में भी गांधीजी ने अली भाइयों को पूरा सहयोग दिया इसके प्रमाण बिल्कुल पुष्ट हैं। स्वर्गीय श्री. श्रीनिवास शास्त्री, श्री० सी० वाई० चिन्तामणि (प्रयाग के पत्र 'लीडर' के सम्पादक) और गांधी के परम मित्र श्री सी० एफ० एण्डरयूज ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि गांधी जी के भाषणों और लेखों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे अमीर अफगानिस्तान के भारत पर आक्रमण के सम्बन्ध में अली भाइयों के साथ हैं। गांधी जी के एक लेख का अंश नीचे दिया जा रहा है जो उन्होंने उन दिनों लिखा था। इससे यह पता चलता है कि किस प्रकार गांधी जी अपनी मुस्लिम तुष्टीकरण नीति के ऊपर अपने देश तक को न्यौछावर कर देने पर तुल गये थे। वे मातृभूमि पर आक्रमण करने वाले एक विदेशी राजा की सहायता के लिए तैयार हो गये थे। गांधीजी के शब्द निम्नलिखित हैं–

"मैं नहीं समझ सकता कि जैसी खबर फैली हुई है, अली भाइयों को क्यों जेल में डाला जायगा और मैं स्वतन्त्रता से रहूँगा? उन्होंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जो मैं न करूं। यदि उन्होंने अमीर अफगानिस्तान को आक्रमण के लिए संदेश भेजा है, तो मैं भी उनके पास एक सन्देश भेज दूंगा कि जब वह भारत आयेंगे तो

जहाँ तक मेरा बस चलेगा एक भी भारतवासी उनको हिन्द से बाहर निकालने में सरकार की सहायता नहीं करेगा।"

ब्रिटिशों के गुप्तचरों ने उस षड्यन्त्र को तोड़ा। अली बन्धुओं का मनोरथ ढल गया। हिंदू मुस्लिम एकता पहिले जितनी ही दूर रही।

डी (१) आर्यसमाज पर आक्रमण

गांधी जी नें १९२४ में मुसलमानों के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करने के लिए आर्य समाज पर आक्रमण का घृणित कार्य भी किया और समाज की जी भर कर निन्दा की। यह बहुत ही पतित कार्य था जो उन्होंने किया, परन्तु गांधी जी की हार्दिक इच्छा यह थी कि मुसलमानों को खुश रखा जाय, चाहे कुछ भी करना पड़े। आर्य समाज नें बहुत ही सभ्य ढंग से जब इस निन्दा का उत्तर दिया तब गांधी जी के राजनैतिक प्रभाव विस्तार के कारण आर्य समाज निर्बल होता गया। वास्तविक्ता तो यह है कि स्वामी दयानन्द का कोई भी अनुयायी गांधी जी का शिष्य नहीं बन सकता, क्योंकि दोनों स्थितियाँ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, परन्तु कुछ लोक नेता बनने की इच्छा से दोहरी चाल चलते रहे। एक ओर वे आर्यसमाजी रहे और दूसरी ओर गांधीवादी कांग्रेसी। इसका परिणाम यह हुआ कि जब सिन्ध में 'सत्यार्थ प्रकाश' पर प्रतिबन्ध लगा था तो आर्यसमाज इस विषय में अधिक कुछ न कर सका। इसलिये आर्यसमाज का प्रभाव और भी कम हो गया। आर्यसमाज के सदस्य पक्के देशभक्त थे। लाला लजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्द दो पक्के आर्यसमाजी थे, परन्तु अन्त तक कांग्रेस के नेता रहे। वे गांधी जी के अनुयायी नहीं थे, प्रत्युत उनकी मुसलमानों का पक्ष लेने की नीति के विरोधी थे, परन्तु वे महापुरुष अब शांत हो चुके हैं। बहुत से आर्यसमाजी वैसे ही रहे जैसे कि वे थे। किन्तु प्राय: स्वार्थी लोग उनका मार्ग दर्शन करते रहे और गांधी जी के कारण आर्यसमाज की वह शक्ति न रही जो किसी समय थी।

डी (२)

गांधी जी ने जो आर्यसमाज की निन्दा की उससे गांधी जो मुसलमानो में लोकप्रिय नही हुए। प्रत्युत उनके इस आचरण ने मुसलमानों को उकसा दिया और एक मुसलमान युवक ने आरोप लगाया कि यह संस्था बुरी भावना फैलाने वाली है। यह आरोप नितांत असत्य था। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि आर्यसमाज ने हिंदूसमाज में अनेक सुधार किये। आर्यसमाज ने विधवा विवाह प्रारम्भ किये। आर्यसमाज ने जात-पांत को समाप्त करने के क्रांतिकारी प्रयत्न कियें और हिंदुओ की ही नही प्रत्युत उनकी एकता का प्रचार किया जो आर्यसमाज के सिद्धातों को मानते हों। आगे चलकर लोग इस बात को भूल गये कि गांधी जी ने आर्य समाज को कितनी हानि पहुँचायी थी। महर्षि दयानन्द जो आर्यसमाज

के निर्माता थे हिंसा और अहिंसा के प्रपञ्च में निलिप्त थे। वे तो कहते थे कि जब आवश्यकता हो तब शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। आर्य समाजियों के लिए धर्म-संकट उपस्थित हुआ कि आर्यसमाज में रहें या कांग्रेस में। क्योंकि कांग्रेस में तो उनको अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार करना पड़ता। स्वामी जी की मृत्यु हो चुकी थी और गांधी जी का सितारा चमक रहा था, इसलिए लोग गांधी जी के अनुयायी हो गए।

(ई) सिंध प्रान्त का विभक्तीकरण

१९२८ तक जिन्ना का प्रभाव बहुत बढ़ चुका था और गांधीजी ने देश और हिंदुओं को नुकसान पहुँचा कर भी जिन्ना की बहुत सी अनुचित मांगों को स्वीकार कर लिया था। गांधी जी ने सिन्ध को बम्बई से अलग करने की बात को भी मान लिया और इस प्रकार सिन्ध में हिंदुओं को साम्प्रदायिक दानवों के हाथों सौंप दिया गया। बहुत से झगड़े कराची, सक्खर, शिकारपुर और सिंध के दूसरे स्थानों पर हुए और उनमें हिंदुओं का ही व्यापक विनाश हुआ। हिंदू मुस्लिम एकता स्वप्न बन कर रह गयी।

(एफ) मुस्लिम लीग कांग्रेस से विदा

प्रत्येक पराजय के बाद गांधी जी हिंदू मुस्लिम एकता के लिए अधिक उत्साह और उग्रता से कार्य करने लगते थे। हारे हुए जुआरी की तरह वह अपने दाँव बढ़ाते गये कि किसी प्रकार जिन्ना को प्रसन्न किया जा सके और मुसलमान उनका नेतृत्व स्वीकार करें, परन्तु दिन-प्रतिदिन मुसलमान कांग्रेस से हटते गये, यहां तक कि १९२८ के बाद लीग ने कांग्रेस से कोई सम्बन्ध रखने से ही इन्कार कर दिया। १९२९ में जब कांग्रेस ने स्वतन्त्रता प्रस्ताव लाहौर में पास किया तब मुसलमान उसमें सम्मिलित नहीं हुए। इसके बाद हिंदू-मुस्लिम एकता की आशा किसी को नहीं रही, परन्तु गांधी जी अपनी जिद्द पर अड़े रहे और मुसलमानों को हिंदू हितों की अधिक बलि देते चले गए।

(जी) मंडल पटल परिषद (राऊँडटेबल कान्फ्रेंस) और जातित्व निर्णय (कम्यूनल अवार्ड)

भारत और इंगलैंड में जो अंग्रेज अधिकारी थे उन्होंने यह अनुभव किया कि भारत में कुछ ऐसे सुधारों की आवश्यकता है जो भारत के विधान पर प्रभाव डाले। क्योंकि फूट डालने की नीति से भी अंग्रेजों का राज्य यहाँ पर सुरक्षित और स्थायी नहीं हो पाया था। १९२९ के अन्त में उन्होंने मंडलपटल परिषद बुलाने का निश्चित किया और उसकी घोषणा कर दी। मैकडोनल्ड प्रधानमन्त्री थे और लेबर

पार्टी का मन्त्रीमण्डल था, परन्तु उन्हें यह परिषद करने की बात देर से सूझी। में परिषद की घोषणा के अनन्तर स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हो गया और उस परिषद का बहिष्कार कर दिया। कुछ मास पश्चात् नमक आंदोलन चला बहुत जोश फैला और नमक का कानून तोड़ने पर ७०,००० के लगभग लोग गये, परन्तु कॉंग्रेस ने शीघ्र ही पहली परिषद का बहिष्कार करने पर पश्चात किया और १९३१ में कराची में यह निर्णय हुआ कि केवल गांधी जी को की ओर से परिषद में भेजा जाय। जो भी व्यक्ति परिषद की कार्यवाही को पढ़े वह भली-भांति समझ लेगा कि इस कॉंग्रेस की असफलता के एकमात्र कारण गांधी जी ही थे। परिषद ने कोई निर्णय भारतीय जनता के पक्ष में नहीं किया फिर भी गांधी जी ने मैकडोनल्ड को हिन्दू और मुसलमानों को अलग-अलग चुनाव अधिकार दे देने के लिये कहा जिससे कि देश में वह पारस्परिक फूट जो पिछले २४ साल से चल रही थी और उग्र हो गयी। इस प्रकार गांधीजी भारतीय विधिमण्डल के लिए हिन्दु और मुसलमानोंके पृथक्-पृथक् चुनावों के लिए उत्तरदायी हुए। गांधीजीने इस प्रकार के पृथक्-पृथक् चुनावों के प्रति भी कोई विरोध नहीं किया। प्रत्युत सदस्यों को यह सलाह दी कि वे इस विषय में निष्पक्ष रहें। गांधी जी ने इस प्रकार उस हिंदू मुस्लिम एकतापर कुल्हाड़ी चलायी जिसको वे पिछले १५ वर्ष से स्थापित करने के नामपर नष्ट कर रहे थे। १९३५ के एक्ट के अनुसार प्रान्तों और केन्द्र में हिंदू और मुसलमानों के अलग-अलग अधिकारों को हमें मानना पड़ा। यह तो स्वाभाविक ही था कि जो लोग साम्प्रदायिक रूप से चुने गये थे वह कट्टर विचारों के हों और साम्प्रदायिक झगड़ों का अन्त करने का कोई प्रयास न करें। ऐसे लोग राष्ट्रीयता का क्या निर्वाह करते? इस प्रकार हिंदू और मुसलमान अलग होते गये और एक दूसरे के विरुद्ध कार्य करते रहे। प्रायः साम्प्रदायिक झगडों में हिंदूओं को ही हानि पहुँची। लोग हिंदू मुस्लिम एकता से तंग आ गये, परन्तु गांधीजी अपने सिद्धांत पर अड़े रहे।

(एच) सत्ताग्रहण और सत्तात्याग

१९३५ के ऐक्ट के अनुसार १ अप्रैल १९३७ मे प्रान्तों को अलग अधिकार मिल गये। ऐक्ट में अंग्रेजो के अधिकार पूर्णतया सुरक्षित थे। जो अंग्रेज जिन पदों पर नियुक्त थे उनको वहीं लगे रहना था। इसलिए कॉंग्रेस ने पहले तो पदों को ग्रहण नहीं किया, किन्तु जब देखा कि प्रान्तों में मन्त्रीमण्डल बन रहे हैं, प्रान्तों में भली-भांति कार्य भी कर रहे है और छः प्रान्तों में मंत्रीमण्डल अल्प संख्या में होने पर भी अच्छी तरह कार्य कर रहे हैं। तो कॉंग्रेस ने सोचा कि यदि उसने मन्त्रीमण्डलों में भाग नहीं लिया तो उसका महत्व जाता रहेगा, इसलिये उसने जुलाई १९३७ में पदग्रहण करने का फैसला किया। परन्तु पदग्रण करते समय उसने मुस्लिम लीग के

मुसलमानों को मन्त्री नहीं बनाया, प्रत्युत वे मुसल्मान लिए जो कांग्रेसी थे। यह कार्य उस दशा में ठीक था यदि चुनाव सारे देश में एक साथ और सामुदायिक आधार पर होते, किंतु चुनाव तो पृथक्-पृथक् साम्प्रदायिक आधार पर हुए थे। लीग के चुने प्रतिनिधियों को मन्त्रीमण्डल में लेने से उन मुससमानों का मन्त्रीमण्डल में कोई प्रतिनिधित्व नही रहा जिन्होंने लीगी प्रत्याशियों को चुन कर भेजा था। देश में मुसलमान अल्प-संख्या में थे, अत: यह ठीक नहीं था कि इतने मुसलमानों के चुने हुए लोग मन्त्रीमण्डल में आ ही न सके। कांग्रेस के मुसलमान वास्तव में मुसलमानों के प्रतिनिधी नहीं थे। इसलिए कांग्रेस मन्त्रीमण्डल विधान की दृष्टि में हिंदू मन्त्रीमण्डल हो गया। दूसरी ओर मुसलमान कांग्रेस के अधीन रहने के लिए तैयार न थे। मुसलमानों को अपने अधिकारोंकी रक्षा की चिन्ता नहीं थी क्योंकि गवर्नमेंट मुस्लीम लीग की सहायता के लिए सदा तैयार थी। मन्त्रीमण्डल में जो लीग के सदस्य नही लिए उससे १९३९ में, जब कांग्रेस ने त्याग पत्र दिया, जिन्ना ने बहुत लाभ उठाया। १९३५ के एक्ट की धारा ९३ के अनुसार सत्ता गवर्नरों के हाथ में आ गयी और शेष प्रान्तों में सत्ता मुस्लीम लीग के मन्त्रीयों के हाथों में रही। गवर्नरों ने मुसलमानों का पक्ष लेकर कार्य किया। क्योंकि मुसलमानों का पक्ष लेना तो अंग्रेजों की नीति का प्रमुख अंग था। हिंदू मुस्लीम एकता एक स्वप्न से अधिक कुछ नहीं थी, परन्तु गांधीजी ने इस बात की ओर फिर भी ध्यान नहीं दिया।

(आइ) महायुद्ध की परिस्थिति का लीग द्वारा उठाया हुआ लाभ

पाँच प्रांतों में तो मुस्लीम मन्त्रीमण्डल थे और ६ प्रातों में मुसलमानों के पक्ष के गवर्नर थे ऐसी दशा में मि० जिन्ना पूर्ण उग्रता से आगे बढे। कांग्रेस किसी न किसी रूप से युद्ध का विरोध करती थी, किन्तु लीग और जिन्ना कि नीति स्पष्ट थी। वे निष्पक्ष रहे। अगले वर्ष लीग ने लाहौर में यह प्रस्ताव पास किया कि मुस्लिम लीग केवल उसी हालत में युद्ध में सहयोग देगी जब कि भारत का विभाजन किया जाय और पाकिस्तान का प्रस्ताव स्वीकार किया जाय। लाहौर में लीग की बैठक के कुछ माह बाद वाइसराय लार्ड लिनलियगो द्वारा सरकार की नीति के विषय में घोषणा की गयी कि सब दलों की सहमति के बिना भारत के विषय में कोई फैसला नहीं किया जायेगा। इस प्रकार वाइसराय की घोषणा के अनुसार लीग और जिन्ना को भारत की राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने में अन्तिम निर्णय का अधिकार मिल गया। इसके पश्चात् भारत के विभाजन का कार्य और भी तीव्र हो गया। लीग ने मुसलमानों को सेनाओं में भर्ती होने से नही रोका था। इसलिए बहुत से मुसलमान भर्ती हो गये। पंजाब के मुसलमान तो यह चाहते ही नहीं थे कि उनकी संख्या सेना में किसी से कम हो। इस प्रकार मुसलमानों ने इस ध्येय से कि

सेना में भर्ती हुए मुसलमान पाकिस्तान बनाने में मदद देंगे, सेना में भर्ती के विषय में कोई बाधा न डाली। (सर सिकन्दर हयात खां का भाषण पढ़ा गया।) वह केवल एक ही बात चाहते थे कि उनकी स्वीकृति के बिना भारत का विधान बनाने में कोई परिवर्तन न किया जाय और वर्ष १९४० में हो उनकी सबसे बड़ी इच्छा पाकिस्तान की स्थापना थी।

(जे) क्रिप्स विभाजन योजना को मान्यता

कांग्रेस को स्वयं यह पता न था कि वह युद्ध का विरोध करे या न करे? पक्ष में रहे या विपक्ष में? ऐसा आचरण कांग्रेस ने बार-बार किया। कभी भाषणों के रूप में कभी लेखों के रूप में और कभी प्रस्तावों के रूप में। कांग्रेस के विषय में सरकार जानती थी कि गवर्नमेंट की नीतियों पर टीका-टिप्पणी के अतिरिक्त वह और कुछ नहीं करना चाहती। १९४२ तक युद्ध बड़ी सफलता से और बिना किसी बाधा के चलता रहा। सरकार को जितनी सामग्री, धन और मनुष्यों की लड़ाई के लिए आवश्यकता हुई, उसको मिलते रहे। सरकार ने जो ऋण मांगे वे भी मिलते रहे। १९४२ में क्रिप्स अपनी योजना लेकर आया जिसमें भारत-विभाजन का प्रस्ताव भी था। क्रिप्स की योजना असफल रही, किन्तु कांग्रेस कार्य-समिती ने बाद में विभाजन के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् ही इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में बहुमत से विभाजन को ठुकरा दिया गया। जो लोग इसके पक्ष में थे वे बहुत थोड़े थे। इनमें राजगोपालाचार्य और उनके साथी थे। मौलाना आज़ाद उस समय कांग्रेस के सभापति थे।

इलाहाबाद के प्रस्ताव के कुछ ही मास बाद उन्होंने घोषणा की कि कांग्रेस की कार्यसमिति ने पहले जो प्रस्ताव विभाजन के सिद्धांत को मानते हुए पास किया था उस पर इलाहाबाद के प्रस्ताव का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उस समय कांग्रेस की समझ में कुछ नहीं आता था कि क्या उचित अथवा क्या अनुचित है। सरकार *मुस्लिम मन्त्रीमण्डलों और मुसलमानों का पक्ष लेने वाले गवर्नरों पर अच्छी* प्रकार अपना अधिकार जमाये हुए थी। रियासतों के राजाओं ने युद्ध में सहायता की थी। पूंजीवादी वैसे तो कांग्रेस के साथ सहानुभूति दिखाते थे, परन्तु वास्तव में सरकार की जरूरत को पूरा करके सरकार का पक्ष ले रहे थे। खद्दर का प्रचार करने वाले भी सरकार के हाथों कम्बल बेच रहे थे। कांग्रेस देख रही थी कि उसका प्रभाव समाप्त हो रहा है *क्योंकि कांग्रेसने पदों से त्याग-पत्र दे दिया था और फिर भी सरकार अच्छी प्रकार चल रही थी।*

(के) कांग्रेस का 'भारत छोडो आंदोलन और लीग का विभाजन करो और 'भारत छोडो' आंदोलन

जब गांधी जी निराश हो गये तब उन्होंने 'भारत छोडो' आंदोलन की

योजना प्रस्तुत की जिसे कांग्रेस ने मान लिया। यह विदेशी राज्य के विरुद्ध सबसे बड़ा विद्रोह समझा गया। गांधी जी ने जनता को आज्ञा दी-'करो या मरो'। बड़ी श्रेणी वाले नेताओं को सरकार ने जेल में डाल दिया। कुछ सप्ताहों तक कांग्रेसियों ने यत्र-तत्र कुछ गड़बड़ की और हिंसा की ओर बढ़े, परन्तु तीन सप्ताह में सरकार ने सम्पूर्ण आन्दोलन को कुचल दिया और आंदोलन का अन्त हो गया। कांग्रेस से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति और समाचार-पत्र नेताओं को छोड़ने की अपील करने लगे। गांधी जी ने छूटने के लिए व्रत रखा, परन्तु अंग्रेजों ने दो साल तक जब तक जर्मनी नहीं हार गया, भारतीय नेताओं को नहीं छोड़ा। जिन्ना ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का विरोध किया, क्योंकि वह मुसलमानों के लिए उसे हानिकारक समझता था। इसलिए उसने यह नारे लगवाने शुरू किये-'भारत का विभाजन करो और जाओ।'यह हुआ गांधी जी की हिन्दू मुस्लिम एकता का अन्त।

(एल) हिन्दी के विरुद्ध हिन्दुस्तानी

राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर भी गांधी जी ने मुसलमानों का जिस प्रकार अनुचित पक्ष लिया उसका कोई और उदाहरण नहीं मिलता। किसी भी दृष्टि से देखा जाय हिन्दी का अधिकार राष्ट्रभाषा बनने के लिये सबसे पहले है। जब गांधीजीने भारत में सार्वजनिक कार्य प्रारम्भ किया तो उन्होंने भी हिन्दी को ही महत्व दिया था परन्तु जब उन्होंने देखा कि मुसलमान हिन्दी को पसन्द नहीं करते तो उन्होंने अपनी नीति भी बदल दी और हिंदुस्तानी का प्रचार करने लगे। हिन्दुस्तान का प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि हिंदुस्तानी नाम की कोई भाषा कहीं नहीं है, न उस भाषा का कोई व्याकरण है और न शब्दावली। यह केवल हिन्दी और उर्दू की खिचड़ी है। गांधीजी पूरे प्रयत्न करके भी इस खिचड़ी को लोकप्रिय न बना सके। मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि हिन्दुस्तानी को ही राष्ट्रभाषा बनाया जाय। अन्धे अनुयायी इसी भाषा का प्रचार करने लगे और यत्र-तत्र इस भाषा का प्रयोग भी किया जाने लगा। 'बादशाह राम' और 'बेगम सीता' जैसे शब्दों का प्रयोग होने लगा, परन्तु इस महात्मा में इतना साहस न था कि मिस्टर जिन्ना को महाशय जिन्ना कहकर पुकारे और मौलाना आजाद को पण्डित आजाद कहे। उन्होंने जितने भी अनुभव प्राप्त किये वे हिन्दुओं को बलि देकर ही किये। वे हिन्दू मुस्लिम एकता की खोज में बढ़ते जा रहे थे। मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए हिन्दी के सौंदर्य और मधुरता को नष्ट कर दिया गया, परन्तु बहुत से कांग्रेसी भी इस खिचड़ी को नहीं पचा सके। गांधीजी अपनी हिन्दुस्तानी की जिद पर जमे रहे, परन्तु हिन्दू अपनी संस्कृति और मातृभाषा के ही भक्त रहे। वे गांधी के झांसें में न आये। उसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में गांधी की धाक न चली और उन्हें संस्था से त्यागपत्र देना पड़ा।

किन्तु गाधी का विषैला प्रभाव अब भी शेष है और आज भी भारत की सरकार यह निर्णय करते हुए झिझकती है कि देश की राष्ट्र भाषा हिन्दी को बनाया जाय या हिन्दुस्तानी को ? साधारण बुद्धिवाले लोग भी स्पष्ट रूप से देख सकते है कि राष्ट्रभाषा वही हो सकती है जो ८० प्रतिशत जनता की भाषा हो; न कि वह जिसको २० प्रतिशत भी न जानते हों। फिर भी गांधीजी मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए यह अनुचित कार्य करते थे। कितनी प्रसन्नता की बात है कि अब करोडो देशवासी हिन्दी और देवनागरी के पक्षपाती हैं। संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) में हिन्दी को प्रांत की भाषा भी मान लिया गया है। भारत सरकार ने जो कमेटी बनाई है उसने विधान का शुद्ध हिन्दी में अनुवाद कर दिया है, अब यह देखना है कि कांग्रेस 'लेजिस्लेचर' में हिन्दी को स्वीकार करती है या गाधी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए एक विदेशी भाषा को भारत जैसे विशाल देश पर थोपती है। वास्तव में हिन्दुस्तानी उर्दू ही है। केवल नाम का ही भेद है। गांधीजी में इतना साहस नही था कि हिन्दी की प्रतियोगिता में उर्दू का प्रचार कर सके, इसलिये उन्होने उर्दू को हिन्दुस्तानी के नाम से चलाने की घृणित चाल चली। उर्दू पर किसी भी देशभक्त ने प्रतिबन्ध नही लगाया, परन्तु उर्दू को हिन्दुस्तानी के नाम से लादना एक धोखा है और अपराध है। यह थी गाधीजी की करतूतें हैं। हिन्दुस्तानी के रूप में एक ऐसी भाषा, जिसका कोई अस्तित्व नही, गांधीजी के कहने पर स्कूलों में पढ़ायी जाने लगी। इसलिए नही कि इससे कोई लाभ था, प्रत्युत इसलिये कि इससे मुसलमान खुश हो सकते थे। इससे अधिक साम्प्रदायिक अत्याचार और क्या होगा ? यही हैं गांधीजी की सेवाएँ, हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए।

(एम) न गाओ 'वन्देमातरम्'।

गांधीजी का सबसे बड़ा गुण यह था कि सम्पूर्ण हिन्दूराष्ट्र के सम्मान और भावनाओं को ठेस पहुँचाकर, न्याय और अन्याय का विचार न करके वे मुसलमानों के लिए सब कुछ कर देना चाहते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि वे मुसलमानों के लीडर बनें। यह कितनी लज्जाजनक बात है कि मुसलमान यह पसन्द नहीं करते थे कि 'वन्देमातरम्' का राष्ट्रीय गीत गाया जाय, इसलिए गांधीजी ने जहां वे कर सकते थे, उसे बन्द करा दिया। यह गीत पिछले सौ वर्षों से देश का लोकप्रिय गीत रहा है। बंगाली भारतीयों के लिए तो यह बहुत ही महत्व रखता है। यह गीत लोगों को देश के लिए संगठित होने की प्रेरणा देता है। १९०५ में जब बगाल के विभाजन का विरोध हुआ तब से यह गीत बहुत लोकप्रिय है। बंगाली इसी गीत से मातृभूमि की सेवा के लिए शपथ लेते थे। प्रत्येक राष्ट्रीय समारोह का प्रारम्भ इसी पवित्र गीत से होता था। इसके सम्मान की रक्षा के लिए अनेक

देशभक्तों ने अपार कष्ट सहे और अपने प्राणों का बलिदान दिया। अंग्रेज अधिकारी इस गीत के वास्तविक अर्थ को नही समझते थे। इसका अभिप्राय केवल मातृभूमि की वन्दना है। ४० वर्ष पूर्व सरकार ने कुछ समय तक इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, परन्तु उस प्रतिबन्ध से यह गीत सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय बन गया। तभी से यह गीत कांग्रेस और अन्य राष्ट्रीय अधिवेशनों में गाया जाने लगा किन्तु जब एक मुसलमान ने इस पर आपत्ति की तब गांधीजी ने सारे राष्ट्र की भावना को ठुकरा कर कांग्रेस पर दबाव डाला कि इस गीत के बिना ही काम चलाया जाय। इसलिए आज हम रवीन्द्रनाथ का 'जन गण मन' गीत गाते हैं और 'वंदेमातरम्' बन्द कर दिया गया है। क्या इससे भी पतित कोई काम हो सकता है कि ऐसे विश्व प्रसिद्ध गीत को केवल इसलिए बन्द कर दिया जाय कि एक अज्ञानी हठधर्मी समुदाय उसे पसन्द नही करता। यदि इस विषय को उचित ढंग से लिया जाता तो अज्ञानियों का अज्ञान मिट जाता और उनको प्रकाश मिलता, परन्तु अपने ३० वर्षों के नेतृत्व में गांधीजी को ऐसा साहस कभी नहीं हुआ। उनकी हिन्दू मुस्लिम एकता की नीति का एक ही अर्थ था कि मुसलमानों के आगे मस्तक झुकाते जाये और वे जो कुछ माँगें वह सब कुछ उन्हें दे दिया जाय, परन्तु इस प्रकार एकता न तो आयी, न आ सकती थी।

(एन्) शिवाबावनीपर प्रतिबंध

गांधीजी ने 'शिवाबावनी' जैसी साहित्यिक और ऐतिहासिक रचना पर भी प्रतिबन्ध लगवा दिया कि उसे लोगों के बीच न पढ़ा जाय। 'शिवा बावनी' ५२ छंदों का एक संग्रह है जिसमें छत्रपति शिवाजी महाराज की प्रशंसा गायी गयी है और इस बात का वर्णन है किस प्रकार उन्होने हिन्दू धर्म और राष्ट्र की रक्षा की। 'शिवा बावनी' में एक छन्द है कि यदि शिवाजी न होते तो सारा देश मुसलमान हो जाता—

कुम्भकरण असुर अवतारी औरंगजेब,
काशी प्रयाग में दुहाई फेरी रब की।
तोड डाले देवी देव शहर मुहल्लों के,
लाखों मुसलमाँ किये माला तोडी सब की।
'भूषण' भणत भाग्यो काशीपति विश्वनाथ।
और कौन गिनती में भूली गति भव की।
काशी कर्बला होती मथुरा मदीना होती।
शिवाजी न होते तो सुन्नत होती सब की।

यह 'शिवा बावनी' लाखों के लिए आनंद और स्फूर्ति का स्रोत है एवं साहित्य और इतिहास में अद्वितीय महत्व रखती है, परंतु गांधीजी तो अपनी हिंदू मुस्लिम एकता की धुन में लगे हुए थे और इस ध्येय की पूर्ति के लिए हिंदू संस्कृति इतिहास और धर्म के दमन के अतिरिक्त उनके सामने कोई सरल मार्ग न था।

(ओ) सुहरावर्दी को संरक्षण

मुस्लिम लीग ने उस केन्द्रीय अस्थायी मंत्रीमंडल में सम्मिलित होने से इंकार कर दिया, जिसको बनाने के लिए लार्ड वेवल ने नेहरू को आमंत्रित किया था और नेहरू सरकार के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करने के लिए कौंसिल बनायी। नेहरू मंत्रीमंडल के निर्माण के दो सप्ताह पूर्व अर्थात् १५ अगस्त १९४६ को कलकत्ता में हिंदुओं का व्यापक संहार किया गया जो बिना किसी रोकटोक के तीन दिन तक चलता रहा। इन दिनों की भयानक घटनाओं के रोमाचकारी चित्र प्रसिद्ध समाचार पत्र 'स्टेट्समैन' ने प्रकाशित किये थे। उस समय यह सोचा जाने लगा कि जिस सरकार के काल में इतने अत्याचार हुए हो उसको पद से अलग कर देना चाहिए। यह सरकार सुहरावर्दी की थी परंतु साम्यवादी गवर्नर ने भारत सरकार की एक्ट धारा के अनुसार गवर्नमेंट सम्हालने से इंकार कर दिया। उस समय गांधीजी कलकत्ता गये और इन सब अत्याचारो की जड़ सुहरावर्दी से उन्होंने मित्रता स्थापित कर ली। वास्तव में गांधीजी वहाँ सुहरावर्दी और मुस्लिम लीग का पक्ष लेकर ही गये थे। इन तीन दिनों में जब कि वहाँ पर हिंदुओं का सर्वनाश हुआ, पुलिस ने लोगों की रक्षा करने के लिए कोई प्रयत्न नही किया और जिन लोगों का कर्तव्य जनता की रक्षा करना है उन्ही की आँखों के सामने अत्याचार हुए, परंतु गांधीजी ने इस पैशाचिक काड को साधारण घटना समझा। उन्होंने सुहरावर्दी की बहुत अधिक प्रशंसा की और उनको शहीद अर्थात् 'हुतात्मा' कहकर पुकारा। प्रायः दो ही मास पीछे नोआखाली और टिप्पेरा जिलो में कांड हुए। आर्यसमाज के प्रतिवृत्त के अनुसार ३०,००० स्त्रियों को बलपूर्वक हिंदु से मुसलमान बनाया गया। तीन लाख लोक मारे गये और करोडों रुपयों की सम्पत्ति लूट ली गयी। यह सब हो जाने के पश्चात् गांधीजी ने नोआखाली का दौरा करने का निश्चय किया। यह सब जानते है कि सुहरावर्दी ने वहाँ उनकी रक्षा की, परंतु इस संरक्षण के होते हुए भी गांधीजी को इतना साहस न हुआ कि वे नोआखाली जिले की घटनाओं पर निर्भयता पूर्वक कुछ कह सकें। यह सब अत्याचार संपत्ति की लूट, मनुष्यों का संहार आदि सुहरावर्दी प्रधानमंत्री होते वहाँ हुए थे, किंतु इस महासंहार पर आयोजक सुहरावर्दी को गांधीजी ने 'शहीद साहब' की पदवी दी।

(पी) हिंदू और मुस्लिम राजाओं में अंतर

गांधीजी के अनुयायियों ने राजकोट और भावनगर के राजाओं के कथित अत्याचारों की पर्याप्त निंदा की। गांधीजी के अनुयायियों ने ही काश्मीर में मुसलमानों को प्रोत्साहित किया कि वे हिंदू राजा के विरुद्ध विद्रोह करें, परंतु गांधीजी ने ऐसा कोई कार्य मुस्लिम रियासतों में नहीं किया। ग्वालियर में मुस्लिम लीग ने एक षड्यंत्र रचा जिसका परिणाम यह हुआ कि महाराज सिंधिया विवश हो गये कि विक्रम संवत्सर को दो सहस्रवीं अर्प गाठ न मनाएँ। यह घटना चार वर्ष पहले की है। यह विद्रोह सांप्रदायिक उद्देश्य से किया गया था। वहाँ के महाराज बहुत उदार और दूरदर्शी थे, किंतु कुछ समय पूर्व जब ग्वालियर में उपद्रव हुआ और मुसलमानों को थोड़ी सी हानि पहुँची तब गांधीजी ने अनुचित रूप से महाराज की निंदा की।

(क्यू) गांधीजी का यथाशक्ति अनशन

१९४३ में जेल में गांधीजी ने जब अनशन किया तो किसी व्यक्ति को भी राजनैतिक समस्याओं के विषय में उनसे मिलने नहीं दिया जाता था। केवल उनके निकट संबंधी ही स्वास्थ्य के विषय में जानने के लिए उनसे मिलते थे। उन दिनों श्री राजगोपालाचार्य उनसे मिले और पाकिस्तान बनाने की योजना का उन्हें परामर्श दिया। गांधीजी ने उनको इस विषय में जिन्ना से बातचीत करने की आज्ञा दी। फिर १९४४ में गांधीजी तीन सप्ताह तक जिन्ना से बातचीत करते रहे और वर्तमान पाकिस्तान जैसी ही योजना उनके सामने रखी। गांधीजी प्रतिदिन जिन्ना के घर जाते थे और उनकी प्रशंसा करते थे, उनसे गले मिलते थे, परंतु जिन्ना अपनी पाकिस्तान की माँग से एक इन्च न हटा। गांधीजी हिंदू मुस्लिम एकता चाहते थे, परंतु सब कुछ इसके विपरीत हो रहा था।

(आर) देसाई लियाकत संधिपत्र

सन् १९४५ में देसाई और लियाकत की कुख्यात संधि हुई। इसके पश्चात् तो कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था रही ही नहीं। केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेंबली के कांग्रेस दल के नेता श्री भुलाभाई देसाई और मुस्लिम लीगी दल के नेता मियाँ लियाकत अली ने अंग्रेजों से माँग की कि उन समस्याओं को सुलझाया जाय जो युद्ध समाप्ति के पश्चात् उग्र रूप धारण कर रही है। श्री देसाई ने यह काम किसी कांग्रेस नेता का परामर्श बिना लिये ही किया था क्योंकि कांग्रेसी नेतागण तो १९४२ के भारत छोड़ो प्रस्ताव के कारण बंदीगृह में पड़े थे। श्री देसाई ने बताया कि वे इस आधार पर वाइसराय से मिले कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग को समान पद मिले। लार्ड

वेवल के पास यह प्रार्थना पत्र पहुंचा तो वे हवाई जहाज से लेबर गवर्नमेंट से इस सम्मेलन की आज्ञा लेने लन्दन गये और इस विषय में जो घोषणा हुई उसने तो सारे देश को मूर्ख बना दिया। वस्तुतः इससे कांग्रेस ने प्रजातन्त्र और राष्ट्रीयता के साथ बडा अनर्थ कर डाला। इससे भारत में प्रजातन्त्र का सदा के लिए अंत हो गया, और न्याय का नाम ही न रहा। कांग्रेस के अनुयायियों को यह योजना माननी पड़ी। कुछ समय पीछे यह पता चला कि इस संधि की आड में तो गांधीजी खेल रहे थे और उन्हीं के आशीर्वाद से यह सब कुछ हुआ था।

कांग्रेस ने यह भलीभांति स्वीकार कर लिया के मुसलमानों को ५० प्रतिशत अधिकार दे दिये जाये। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मुसलमानो का अनुपात २५ प्रतिशत था और हिन्दुओं का ७५ प्रतिशत, किन्तु गांधीजी ने दोनों को बराबर कर दिया। वाइसराय ने कान्फ्रेंस करने से पहले और भी कुछ शर्तें रख दी जो कि निम्नलिखित थी–

(१) कांग्रेस और अन्य सब पार्टियां उस समय तक युद्ध में सहायता दें जब तक जपान पर विजय प्राप्त न हो।

(२) एक मिली–जुली सरकार बनायी जाय जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के पांच–पांच सदस्य हों और अल्प–संख्यक जातियों, अर्थात सिखों और अछूतों के प्रतिनिधि अलग लिये जायें।

(३) भारत छोड़ो आन्दोलन को बिना शर्त के वापिस ले लिया जाय। जो लीडर जेल में हैं उन सब को छोड दिया जायगा।

(४) जो कुछ भी सुझाव रखे जाये वे १९३५ के ऐक्ट की सीमा से बाहर न हों।

(५) वाइसराय और गवर्नर जनरल की पदवी ज्यों की त्यों रहे। अर्थात वे नयी सरकार में भी सर्वोपरि सत्ताधीश हों।

(६) युद्ध समाप्त होने पर आजादी की समस्या 'कौन्स्टीटयूएण्ट असेम्बली द्वारा सुलझायी जाय।

(७) यदि वर्तमान स्थिति में कोई परिवर्तन न किया गया तो वाइसराय फिर से मंत्रिमडल बना लेंगे। जिसके सब सदस्य भारतवासी ही होंगे।

(८) जिन लोगों ने तीन वर्ष पहले पूर्ण स्वतंत्रता के लिये भारत छोड़ो आंदोलन खड़ा किया था और 'करो या मरो' के सिद्धात पर चलकर विद्रोह किया था, उन्होने चुपके से अंग्रेजों की सब शर्तें मानकर पद संभाल लिये। वास्तव में भारत छोड़ो आन्दोलन असफल ही चुका था और कांग्रेस के पास और कोई प्रोग्राम न था। इसलिये जैसी स्थिति उस समय थी कांग्रेस को वही स्वीकार करनी पडी।

कांग्रेस का अस्तित्व एक प्रकार से मिट चुका था। इससे केवल जिन्ना को लाभ हुआ। द्विराष्ट्र सिद्धान्त और पाकिस्तान मांग को प्रोत्साहन मिल गया। यद्यपि कांग्रेस असफल रही और गांधी जी को हिन्दू-मुस्लिम एकता प्राप्त न हो सकी।

(एस्) कैबिनट मिशनकी चाल

१९४६ के प्रारम्भ में कैबीनेट मिशन भारत आया। इसमें इंग्लैंड में भारत मन्त्री श्री लारेंज, श्री अैलंग्जेण्डर और श्री क्रिप्स थे। इसके भारत आने के विषय में मन्त्री श्री एटली ने पार्लियामेंट मे एक भाषण दिया और कहा कि अंग्रेजो गवर्नमेंट भारत की बागड़ोर भारतवासियों को हो सौंपना चाहती है, परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि सब भारतवासी एक निर्णय पर पहुच जायें। मिशन का घोषित कार्य सब दलों में संधि कराना था, परन्तु जो कुछ मिशन ने किया वह भारत के लिए बहुत हानिकारक रहा। कांग्रेस सगठित भारत चाहती थी, परन्तु कांग्रेस को अपने ध्येय और अपनी मांग पर आत्मविश्वास न था। दूसरी ओर जिन्ना विभाजित भारत चाहता था और वह अपनी मांग पर अडा हुआ था। ऐसी समस्याओं को सुलझाने में बहुत कठिनाई दिखाई देती थी इसलिए मिशन ने सबसे बात की और फिर १५ मई १९४६ को अपने निर्णय की घोषणा कर दी। मिशन ने प्रकट रूप में तो सगठित भारत के प्रति शुभ कामना प्रकट की, किन्तु प्रकारान्तर से अपनी योजना में पाकिस्तान के पूर्ण अंश भर दिये। उसने ५ धाराएँ ऐसी रखीं जिनको मानने पर भारत के दो टुकड़े हुए बिना नहीं रह सकते थे। चाहे यह विधान परिषद चुने हुए व्यक्तियों से बना हो फिर भी उसके द्वारा पूर्ण स्वतन्त्रता का विधान नहीं बनाया जा सकता था। कांग्रेस 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की असफलता के बाद इतनी निराश हो चुकी थी कि वह कोई भी ऐसी योजना मानने को तत्पर थी जिसमें तनिक भी राष्ट्रीयता की झलक हो। इसलिए, इस योजना को स्वीकार करके कांग्रेस ने प्रकारांतर से पाकिस्तान मान लिया, परन्तु योजना में पाकिस्तान शब्द का नाम न होने से वह सन्तुष्ट थी। कांग्रेस ने योजना को तो स्वीकार कर लिया, परन्तु केन्द्रीय सरकार बनाने को तैयार न हुई। अन्त में कांग्रेस को सरकार बनानी पड़ी और बिना शर्त सारी योजना को स्वीकार करना पडा। जिन्ना ने अंग्रेजों को अन्यायी बताकर उनकी निन्दा प्रारम्भ कर दी। उधर मुस्लिम लीग ने 'सीधी कार्यवाही' प्रारम्भ की। बंगाल, पजाब, बम्बई और अन्य स्थानों पर मुसलमानो ने ऐसे रक्तपात, लूटपाट और अग्निकांड किये कि इतिहास में कहीं भी उनका उदाहरण देखने को नहीं मिलता। हानि केवल हिंदुओं की ही हुई। कांग्रेस ने उस समय अद्भुत नपुंसकता का परिचय दिया और वह किसी स्थान पर भी हिंदुओं की रक्षा कर न सकी। गवर्नर जनरल को १९३५ के ऐक्ट के अनुसार यह अधिकार था कि भारत के किसी भी भाग में शांति भंग होने पर वह हस्तक्षेप कर सकता था, परन्तु वह भी निश्चित और निर्द्वंद्व सब

वेवल के पास यह प्रार्थना पत्र पहुंचा तो वे हवाई जहाज से लेबर गवर्नमेंट से इस सम्मेलन की आज्ञा लेने लन्दन गये और इस विषय में जो घोषणा हुई उसने तो सारे देश को मूर्ख बना दिया। वस्तुत: इससे कांग्रेस ने प्रजातन्त्र और राष्ट्रीयता के साथ बड़ा अनर्थ कर डाला। इससे भारत में प्रजातन्त्र का सदा के लिए अंत हो गया, और न्याय का नाम ही न रहा। कांग्रेस के अनुयायियों को यह योजना माननी पड़ी। कुछ समय पीछे यह पता चला कि इस संधि की आड में तो गांधीजी खेल रहे थे और उन्ही के आशीर्वाद से यह सब कुछ हुआ था।

काग्रेस ने यह भलीभाति स्वीकार कर लिया के मुसलमानों को ५० प्रतिशत अधिकार दे दिये जाये। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मुसलमानों का अनुपात २५ प्रतिशत था और हिन्दुओं का ७५ प्रतिशत, किन्तु गांधीजी ने दोनों को बराबर कर दिया। वाइसराय ने कान्फ्रेंस करने से पहले और भी कुछ शर्तें रख दी जो कि निम्नलिखित थी–

(१) कांग्रेस और अन्य सब पार्टियाँ उस समय तक युद्ध में सहायता दें जब तक जपान पर विजय प्राप्त न हो।

(२) एक मिली–जुली सरकार बनायी जाय जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के पाँच–पांच सदस्य हों और अल्प–संख्यक जातियों, अर्थात सिखों और अछूतों के प्रतिनिधि अलग लिये जायें।

(३) भारत छोड़ो आन्दोलन को बिना शर्त के वापिस ले लिया जाय। जो लीडर जेल में हैं उन सब को छोड दिया जायगा।

(४) जो कुछ भी सुझाव रखे जाये वे १९३५ के ऐक्ट की सीमा से बाहर न हों।

(५) वाइसराय और गवर्नर जनरल की पदवी ज्यों की त्यों रहे। अर्थात वे नयी सरकार में भी सर्वोपरि सत्ताधीश हों।

(६) युद्ध समाप्त होने पर आजादी की समस्या 'कौन्स्टीटयूएण्ट असेम्बली द्वारा सुलझायी जाय।

(७) यदि वर्तमान स्थिति में कोई परिवर्तन न किया गया तो वाइसराय फिर से मंत्रिमडल बना लेंगे। जिसके सब सदस्य भारतवासी ही होगें।

(८) जिन लोगों ने तीन वर्ष पहले पूर्ण स्वतंत्रता के लिये भारत छोड़ो आदोलन खड़ा किया था और 'करो या मरो' के सिद्धांत पर चलकर विद्रोह किया था, उन्होने चुपके से अंग्रेजों की सब शर्तें मानकर पद संभाल लिये। वास्तव में भारत छोड़ो आन्दोलन असफल ही चुका था और कांग्रेस के पास और कोई प्रोग्राम न था। इसलिये जैसी स्थिति उस समय थी काग्रेस को वही स्वीकार करनी पडी।

कांग्रेस का अस्तित्व एक प्रकार से मिट चुका था। इससे केवल जिन्ना को लाभ हुआ। द्विराष्ट्र सिद्धान्त और पाकिस्तान मांग को प्रोत्साहन मिल गया। यद्यपि कांग्रेस असफल रही और गांधी जी को हिन्दू-मुस्लिम एकता प्राप्त न हो सकी।

(एस्) कैबिनट मिशनकी चाल

१९४६ के प्रारम्भ में कैबीनेट मिशन भारत आया। इसमें इंग्लैंड में भारत मन्त्री श्री लारेंज, श्री अलेक्जेण्डर और श्री क्रिप्स थे। इसके भारत आने के विषय में मन्त्री श्री एटली ने पार्लियामेंट में एक भाषण दिया और कहा कि अंग्रेजी गवर्नमेंट भारत की बागडोर भारतवासियों को ही सौंपना चाहती है, परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि सब भारतवासी एक निर्णय पर पहुंच जायें। मिशन का घोषित कार्य सब दलों में संधि कराना था, परन्तु जो कुछ मिशन ने किया वह भारत के लिए बहुत हानिकारक रहा। कांग्रेस संगठित भारत चाहती थी, परन्तु कांग्रेस को अपने ध्येय और अपनी मांग पर आत्मविश्वास न था। दूसरी ओर जिन्ना विभाजित भारत चाहता था और वह अपनी मांग पर अड़ा हुआ था। ऐसी समस्याओं को सुलझाने में बहुत कठिनाई दिखाई देती थी इसलिए मिशन ने सबसे बात की और फिर १५ मई १९४६ को अपने निर्णय की घोषणा कर दी। मिशन ने प्रकट रूप में तो संगठित भारत के प्रति शुभ कामना प्रकट की, किन्तु प्रकारान्तर से अपनी योजना में पाकिस्तान के पूर्ण अंश भर दिये। उसने ५ धाराएँ ऐसी रखी जिनको मानने पर भारत के दो टुकड़े हुए बिना नहीं रह सकते थे। चाहे वह विधान परिषद चुने हुए व्यक्तियों से बना हो फिर भी उसके द्वारा पूर्ण स्वतन्त्रता का विधान नहीं बनाया जा सकता था। कांग्रेस 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की असफलता के बाद इतनी निराश हो चुकी थी कि वह कोई भी ऐसी योजना मानने को तत्पर थी जिसमें तनिक भी राष्ट्रीयता की झलक हो। इसलिए, इस योजना को स्वीकार करके कांग्रेस ने प्रकारांतर से पाकिस्तान मान लिया, परन्तु योजना में पाकिस्तान शब्द का नाम न होने से वह सन्तुष्ट थी। कांग्रेस ने योजना को तो स्वीकार कर लिया, परन्तु केन्द्रीय सरकार बनाने को तैयार न हुई। अन्त में कांग्रेस को सरकार बनानी पड़ी और बिना शर्त सारी योजना को स्वीकार करना पड़ा। जिन्ना ने अंग्रेजों को अन्यायी बताकर उनकी निन्दा प्रारम्भ कर दी। उधर मुस्लिम लीग ने 'सीधी कार्यवाही' प्रारम्भ की। बंगाल, पंजाब, बम्बई और अन्य स्थानों पर मुसलमानों ने ऐसे रक्तपात, लूटपाट और अग्निकांड किये कि इतिहास में कहीं भी उनका उदाहरण देखने को नहीं मिलता। हानि केवल हिंदुओं की ही हुई। कांग्रेस ने उस समय अद्भुत नपुंसकता का परिचय दिया और वह किसी स्थान पर भी हिंदुओं की रक्षा कर न सकी। गवर्नर जनरल को १९३५ के ऐक्ट के अनुसार यह अधिकार था कि भारत के किसी भी भाग में शांति भंग होने पर वह हस्तक्षेप कर सकता था, परन्तु वह भी निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व सब

घटनाओं को देखता रहा। लाखों हिंदू मारे गये। सहस्त्रों हिंदू स्त्रियों और बच्चों को उठा लिया गया जिनमें से बहुत कम वापिस आये। करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति लूट ली गई, जला दी गई या नष्ट कर दी गयी, किन्तु गांधी जी को हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रेम अब भी उतना ही दूर रहा जितना पहले था।

(टी) कांग्रेस जिन्ना की शरण में

अगले वर्ष ही कांग्रेस जिन्ना की तलवार के आगे झुक गयी। पाकिस्तान मान लिया गया। जो कुछ उसके पश्चात् हुआ वह सबको भलि-भांति ज्ञात है। गांधी जी फिर भी मुसलमानों का पक्ष लेते रहे। जो लाखों हिंदू लुटे-पिटे और नष्ट हुए, इस महात्मा ने उनके लिये एक शब्द भी न कहा। यह स्वयं को मानवता का सेवक कहता था, किन्तु उसके लिए मानवता के एकमात्र प्रतीक मुसलमान थे। हिंदू उसकी मानवता के क्षेत्र में नहीं आते थे। इस विचित्र 'साधुवृत्ति' को देखकर मुझ को अत्यन्त क्षोभ हुआ।

(यू) पाकिस्तान पर सन्दिग्ध भाष्य

अपने एक लेख में गांधी जी ने पाकिस्तान की कल्पना का कड़ा विरोध प्रकट किया, किन्तु यह दिखावा मात्र था। क्योंकि उसी लेख में वे स्पष्ट रूप में कहते हैं कि मुसलमान किसी भी मूल्य पर पाकिस्तान चाहते हों तो यह प्राप्त करने में उन्हें कौन रुकावट डाल सकेगा ? इस कथन का अर्थ केवल महात्मा ही जाने। क्या यह पाकिस्तान का पुरस्कार था ? क्या यह पाकिस्तान की घोषणा थी ? क्या यह पाकिस्तान की मांग का प्रतिरोध था ?

(वी) काश्मीर के महाराज को दुरुपदेश

काश्मीर के विषय में गांधी जी सदा यह परामर्श देते रहे कि सत्ता शेख अब्दुला को सौंप दी जाय। केवल इसलिये कि काश्मीर में मुसलमान अधिक संख्या में हैं। इसलिये गांधी जी का मत था कि महाराज हरीसिंह को संन्यास लेकर काशी चले जाना चाहिये, परन्तु हैदराबाद के विषय में गांधी की नीति भिन्न थी। यद्यपि वहाँ हिंदुओं की संख्या अधिक थी, परन्तु गांधी जी ने कभी यह न कहा कि निज़ाम फकीरी लेकर मक्का चले जायें।

(डब्ल्यू) माउंटबेटन ने हिन्दुस्तान का विभाजन किया

१५ अगस्त सन ४६ के पश्चात् मुस्लिम लीग के गुण्डों ने हिंदुओं को लूटना प्रारम्भ कर दिया और जहां कहीं उसको अवसर मिला, वे नहीं चूके। लार्ड वेवेल को यह दशा देखकर औपचारिक दुःख तो हुआ, परन्तु उसने इन अत्याचारों को

रोकने के लिए कहीं भी अपने हस्तक्षेप-अधिकारों का प्रयोग नहीं किया जो उसे १९३५ के गवर्नमेंट-ऍक्ट के अनुसार प्राप्त थे। कराची से बंगाल तक हिंदुओं का रक्त बहाया जाने लगा। केवल दक्षिण में मुसलमानों को किंचित उत्तर मिला। दो सितम्बर १९४६ के पश्चात् कांग्रेस और मुस्लिम लीग के सदस्यों की मिली-जुली सरकार चलती रही, परंतु दोनो दलों में सहयोग से काम नही होता था। मुसलमान सदस्यों ने यथासम्भव प्रयत्न किये कि किसी प्रकार सरकार काम न चला पाये। वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि मिली-जुली हुकूमत काम नहीं कर सकती, परन्तु उन्होंने जितना असहयोग किया गांधी जी ने उनकी ही अधिक खुशामद की। लार्ड वेवेल दोनों पक्षों में समझौता नही करा सके। इसलिये उसे त्याग-पत्र देना पडा। उस की आत्मा यह नहीं मानती थी कि भारत का विभाजन किया जाय। उसने स्पष्ट रूप से कहा भी कि विभाजन की कोई आवश्यकता नही है। उसकें पश्चात लार्ड माउंटबेटन आया। लार्ड माउंटबैटन दक्षिण पूर्व कमाण्ड का कमाण्डर था। वह एक सैनिकवृत्ति का व्यक्ति था। बहुत साहसी और धुन का पक्का था। वह भारत इस उद्देश्य से आया था कि कुछ न कुछ करना हैं और जो कुछ उसने किया वह था भारत का विभाजन। उसे रक्तपात की कोई चिन्ता न थी। उसकी आँखो के सामने रक्त की नदियाँ बही। स्यात् उसका विचार था कि जितने हिन्दू मर रहे हैं उतने शत्रु ही कम हो रहे हैं, क्योंकि हिन्दू ही उसकी योजना की पूर्ति में बाधा डाल रहे थे, इस बात की ओर उसने लेश मात्र ध्यान नही दिया। जून १९४८ भारत को सत्ता सौंपने का समय बताया गया। उससे पहले हिन्दुओं और मुसलमानों का खूब रक्त बह चुका था। कांग्रेस जो राष्ट्रीयता का जयघोष कर रही थी जिन्ना की तलवार के आगे झुक गयी और गुप्त रूप से उसने पूर्ण पाकिस्तान स्वीकार कर लिया। सम्पूर्ण प्रजातंत्र रखा रह गया। भारत के टुकडे कर दिये गये। १५ अगस्त १९४७ से भारत की तिहाई भूमि विदेशी बन गयी। कांग्रेस क्षेत्र में लार्ड माउंटबेटन को सब वाइसरायों में महान वाइसराय और गवर्नर जनरल बताया जाने लगा। क्योंकि उसने हिन्दुस्तान के तीन टुकडे करके ३० जून १९४८ से १० मास पहले ही काग्रेस को सत्ता दे दी। यही वह उपलब्धि है जो गांधी जी से ३० वर्षो में प्राप्त हुई। इसी को कांग्रेस स्वतंत्रता के नाम से पुकारती है। इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नही कि इतना रक्तपात हुआ भी और फिर भी उसके परिणाम को शांतिपूर्वक सत्ता हस्तांतरण का नाम दिया जाय और उसे स्वतन्त्रता के नाम से पुकारा जाय। यदि १९४६, ४७ और ४८ की घटनाएँ भी शांति की द्योतक है तो पता नहीं अशांति किसे कहते है ? हिन्दू मुस्लिम एकता का बुलबुला अन्त में फूट गया और सांप्रदायिक आधार पर अलग देश बन गया जिसको संयुक्त भारत का नाम दिया गया। पं० नेहरू और उसके साथी इस

स्वतन्त्रता का श्रेय अपने तथाकथित बलिदानों को देते हैं, परन्तु वास्तविक बलिदान तो जिनके हैं उन्हीं के रहेंगे।

(एक्स) गांधी जी और गोवध

गांधी जी गोरक्षा के लिये बड़ी तीव्र इच्छा प्रकट किया करते थे, परन्तु वास्तव में उन्होंने इस विषय में कुछ नहीं किया। प्रार्थना सभा में वे जो भाषण देते थे उनमें एक भाषण में उन्होंने स्पष्ट रूप से यह मान लिया है कि वे गोरक्षा म असफल रहे हैं। उनके उस भाषण का अंश नीचे उद्धृत है :–

"आज राजेन्द्रबाबू ने मुझे सूचना दी है कि उनके पास ५० हजार पोस्ट कार्ड और पच्चीस-तीस हजार के लगभग तार आये हैं कि गोहत्या को कानून द्वारा बन्द कर दिया जाय। इस विषय में मैंने पहले भी एक बार कुछ कहा था। पता नही इतने पोस्ट कार्ड और तार क्यों भेजे गये है, इनका कोई लाभ नहीं। भारत में गोहत्या रोकने के लिए कानून नहीं बनाया जा सकता। मैं अपनी इच्छा को उस मनुष्य पर कैसे लाद सकता हूँ जो अपनी इच्छा से गोहत्या नहीं छोडना चाहता ? हिन्दुस्तान केवल हिन्दुओं का ही देश नही। यहाँ पर मुसलमान, ईसाई और पारसी, सब लोग रहते हैं। हिन्दुओं का यह सोचना कि हिन्दुस्तान केवल हिन्दुओं का ही देश है, बिलकुल गलत हैं। यह देश उन सबका है जो यहाँ रहते है। मुझे एक कट्टर वैष्णव की बात याद है जो अपने पुत्र को गौ के मांस का रस दिया करते थे।"

(वाइ) तिरंगे ध्वज का उच्चाटन

कांग्रेस ने गांधी जी का सम्मान करने के लिए चरखे वाले झण्डे को राष्ट्रध्वज बनाया। सभी अवसरों पर इसी झण्डे को प्रणाम किया जाता था। प्रत्येक अधिवेशन में प्रचुर संख्या में तिरंगे लहराये जाते थे इस ध्वज के बिना प्रभात-फेरी अधूरी मानी जाती थी। जब कांग्रेस की कोई विजय होती थी, चाहे वह वास्तविक हो या अवास्तविक, सब लोगों के भवन और दुकाने तिरंगे ध्वजों से सजायी जाती थी। यदि कोई हिंदू शिवाजी महाराज के भगवे ध्वज को सम्मान देता था जिस भगवे ध्वज ने भारत को मुसलमानों के आधिपत्य से मुक्त कराया था, तो उस व्यक्ति को साम्प्रदायिक कहा जाता था। तिरंगे झण्डे ने न तो किसी हिन्दु स्त्री की लाज बचायी और न ही किसी हिन्दू मन्दिर को अपवित्र होने से बचाया, परन्तु फिर भी एक बार स्वर्गीय भाई परमान्द द्वारा इस ध्वज को प्रणाम न किये जाने पर कांग्रेसी देशभक्तों ने उन्हें बुरा भला कहा और सामूहिक रूप से उन पर आक्रमण भी किया गया। छात्रो ने तिरंगे ध्वज को विश्वविद्यालयो के भवनों पर लहरा कर इसका सम्मान किया था। बम्बई के एक मेजर की अपनी 'सर' की

पदवी से केवल इस लिए हाथ धोना पड़ा कि उसकी स्त्री ने ध्वज को कार्पोरेशन बिल्डिंग पर लहरा दिया था। इस राष्ट्रध्वज के साथ कांग्रेस का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि जब नोआखाली और टिपेरा के १९४६ के कांडों के पश्चात् गांधी जी नोआखाली का दौरा कर रहे थे तो यह ध्वज उनकी कुटिया पर भी लहरा रहा था, परन्तु जब एक मुसलमान को उस ध्वज के वहाँ ठहराये जाने पर आपत्ति हुई तो गांधीजी ने तत्काल उसे उतरवा दिया। लाखों कांग्रेसियों एवं करोड़ों देशवासियों को इस ध्वज के प्रति श्रद्धा को उन्होंने इस प्रकार अपमानित किया। केवल इसलिए कि उस ध्वज को उतारने से एक कट्टर मुसलमान खुश होता था। फिर भी गांधी जी हिन्दू-मुसलमान एकता के ध्येय को प्राप्त नहीं कर सके।

११ गांधीजी और स्वराज्य

७१. बड़ी संख्या में लोग इस भ्रम में है कि भारतीय स्वतन्त्रताका आंदोलन १९१४-१५ में उस समय प्रारंभ हुआ जब गांधीजो जेल में गये और १५ अगस्त १९४७ को समाप्त हो गया जब 'राष्ट्रपिता' गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता मिल गयी। सहस्रों वर्षों के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जब इतने अधिक लोगों को धोखे में रखा गया हो और वे उस धोखे पर विश्वास करते गये हों। स्वतंत्रता दिलाना तो दूर, गांधीजी ने भारत को ऐसी दशा म लाकर छोड दिया कि उसके खण्ड खण्ड हो गये और स्थान-स्थान पर रक्तपात होने लग गया। भारत में गांधीजी के पूर्व शताब्दियों में एक ऐसा स्वतन्त्रता आंदोलन चल रहा था जो कुचला नहीं गया।१८१८ में जब मराठा शक्ति क्षीण हो गयी तो अंग्रेजों ने यह सोचा कि भारत में स्वतंत्रता युद्ध समाप्त हो गया है, परन्तु उत्तरी भारत में सिखों की शक्ति उभर उठी। कालांतर में सिख परास्त हो गये तो १८५७ के विद्रोह की तैयारियाँ होने लगी। वह विद्रोह इतना अकस्मात और इतनी तेजी से आया कि अंग्रेज कांप उठे। उन्होंने कई बार सोचा कि भारत को छोड दिया जाए। वीर सावरकर के '१८५७ का स्वातन्त्र्य समर' नामक ग्रंथ के अनुसार भारतवासियों ने अंग्रेजो के आधिपत्य का अन्त करने के लिए प्रचंड पराक्रम किया और जब अंग्रेजों ने पुनः पैर जमाए तो कांग्रेस ने जन्म लिया और उसके मंच से देश ने अंग्रेजो को भारत पर राज्य करने के स्वप्न को चुनौती दी। १८८५ से ही आहत राष्ट्र स्वतंत्रता के लिए पुनः प्रयत्न करने लगा। पहले वैधानिक रूप से ये प्रयत्न किए गऐ और पीछे शस्त्रों द्वारा भी अंग्रेजों

का प्रतिकार किया जाने लगा। खुदीराम बोस ने १९०९ में बम फेंक कर देश की भावना को व्यक्त कर दिया।

७२. गांधीजी भारत में १९१४-१५ में आए। इसके आठ वर्ष पूर्व ही भारत के अधिकांश भाग में क्रांतिकारी आंदोलन फैल चुका था। स्वतंत्रता संग्राम का अभी अंत नहीं हुआ था। वह अब भी चिंगारियों की भांति सुलग रहा था। गांधीजी और उनके अहिंसा और सत्य के सिद्धांतों से यह आंदोलन दुर्बल होने लगा, किंतु नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और महाराष्ट्र, पंजाब और बंगाल के अन्य क्रांतिकारी नेताओं को धन्यवाद देना चाहिए कि लोकमान्य तिलक की मृत्यु के बाद गांधीजी का प्रभाव ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, क्रांतिकारी आंदोलन भी साथ ही साथ प्रगति करता गया।

७३. इन लोगों ने जो कांग्रेस में थे और बीच की नीति पर वैधानिक रूप से चलते थे स्वतन्त्रता की ओर किंचित कुछ प्रगति की। १८९२ में अंग्रेज विवश हो गए कि लेजिस्लेटिव कौंसिल बनावें। उसके पश्चात् १९०९ में मिन्टोमोरले सुधारों द्वारा जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को यह अधिकार मिले कि वे लैजिस्लेचर के काम में भाग ले। उसके बारह वर्ष पश्चात् प्रथम महायुद्ध के उपरान्त मौंटेग्यू चेम्स-फोर्ड सुधार आए, जिससे प्रांतों को अधिकार मिले और निर्वाचित सदस्योंकी संख्या बढ़ा दी गई और इस प्रकार स्थायी रूप से केंद्र और प्रांतों में उनको बहुमत मिल गया। १९३५ में प्रांतों को पूर्ण अधिकार मिले। विदेशी विभाग, सेना और किसी सीमा तक अर्थ विभाग को छोड़कर शेष विभागों में केंद्र में उत्तरदायित्व – पूर्ण अधिकार मिल गए। गांधीजी को पार्लियामेंट के दलोंमें कोई रुचि न थी और उन्होंने सदा उनका 'बायकाट' किया, फिर भी वैधानिक उन्नति १९३५ तक थोड़ी ही सही, हुई। १९३५ के ऐक्ट में वास्तव में बहुत त्रुटियां थी। सबसे बड़ी त्रुटि तो यह थी कि अंग्रेजों के स्वार्थ को उस ऐक्ट ने पूर्ण रूप से सुरक्षित कर दिया और साम्प्र-दायिक तथ्यों को अधिक प्रोत्साहन दिया गया।

७४. इस ऐक्ट में दूसरा दोष यह था का इसके अनुसार गवर्नरों एवं गवर्नर जनरल को 'वीटो' अर्थात् अन्तिम निर्णय का अधिकार दे दिया गया था। फिर भी यह अवश्य है कि यदि गांधीजी उसका बायकाट न करते तो हमको यह स्वतन्त्रता जो *अब तक एक तिहाई भारत* को खोकर मिली, बहुत पहले अखण्ड रूप मे मिल जाती।

७५. मैं उस क्रांतिकारी दल का पहले ही उल्लेख कर चुका हूं जो कांग्रेस से अलग था। बहुत से प्रसिद्ध कांग्रेसी इससे सहानुभूति रखते थे। यह दल सदा अंग्रेजों की दासता दूर करने में लगा रहा। सन १९१८-१९ में प्रथम युद्ध के काल मे कांग्रेस पार्टी वैधानिक ढंग से लड़ती रही और क्रांतिकारी दल अपना कार्य

करता रहा। साथ ही साथ यूरोप और अमेरिका में गदर पार्टी जर्मनी आदि देशों की सहायता से भारत से अंग्रेजों को निकालनेकी योजना बना रही थी। 'कामागाटा मारु' की घटना को सब भलीभांति जानते है और यह भी सच है कि मद्रास के पास जो गोलाबारी हुई वह जर्मन कमांडर की सहायता से हुई, परंतु १९२० से गांधीजीने शस्त्र के प्रयोग की निरन्तर निन्दा की, और वे भूल गये कि कुछ वर्ष पहले उन्होंने ही अंग्रेजों की सेना में सैनिक प्रविष्ट कराने में कितना परिश्रम किया है। फिर भी रौलट रिपोर्ट में लिखा गया कि हिंदुस्थान में क्रांतिकारियों की संख्या अधिक है। १९०९ से १९१८ तक क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों और उनके पिट्ठूओं को गोली का निशाना बनाया और अंग्रेज भयभीत रहने लगे। वे यहाँ अपना जीवन सुरक्षित नहीं समझते थे। उसके बाद मौंटेग्यू भारत मंत्री होकर आया, भारत को अधिकार देने का वादा किया, किंतु वह क्रांतिकारी जोश को ठंडा न कर सका। १९१९ में सुधार आए, परतु इसके पश्चात् ही जलियांवाले बाग की दुर्घटना हुई जिसमें निःशस्त्र जनता की सभा पर डायर ने यह कह कर गोलियां चलवायीं कि सभा रोलट एक्ट के विरोध में हो रही थी। सर मायकल ओडवायर ने उन लोगों को कुचल दिया जिन्होंने रोलट एक्ट के विरुद्ध आवाज उठायी, किंतु २० वर्ष पश्चात् उसे अपनी करतूओं का फल चखना पड़ा,जब सरदार उधमसिंह ने लदन में उसे गोलीसे उड़ा दिया। मदनलाल ढींगरा, भगतसिंह, बी० के० दत्त, चंद्रशेखर आजाद, राजगुरु और सुखदेव उन वीरों में से है जिन्होंने विदेशी राज्य को प्रकंपित किया। कुछ ने तो उस समय काम किया था जब महात्मा गांधी को कोई नहीं जानता था। कुछ ने तब काम किया था जब गांधीजी कांग्रेस के वैधानिक आंदोलन के नेता थे।

७६. मैं पहिले ही कह चुका हूँ कि क्रांतिकारी आंदोलन बंगाल और महाराष्ट्र से चलकर पंजाब तक पहुँच चुका था। जो लोग इस आंदोलन में काम करते थे वे ऐसे-वैसे घरों के बालक न थे। वे पढ़े-लिखे थे और संभ्रांत समाज से संबंध रखते थे। मातृभूमि की स्वतंत्रता की वेदी पर अपने सुख-सुविधाओं में पले हुए जीवन की बलि देने वाले वे वीर सच्चे हुतात्मा थे। जिनके रक्त से भारत के स्वतंत्रता के मंदिर की नींव सींची गई है। लोकमान्य टिलक ने स्वतंत्रता आंदोलन को संगठित किया। महात्मा ने तो बने बनाए का लाभ प्राप्त किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि १९०९ से १९३५ तक विधान में जितने भी सुधार हुए वे क्रांतिकारी आन्दोलन के कारण हुए।

७७. शांति की नीति पर चलनेवाले लोग क्रांतिकारी आंदोलन को निंदनीय समझते थे। गांधीजी ने क्रांतिकारी आंदोलन की अपने प्रत्येक भाषण और लेख में निंदा की, परंतु समस्त जनता हृदय से क्रांतिकारियों की सराहना करती थी।

क्रांतिकारियों की तो एक ही नीति थी कि राष्ट्र को विदेशी विजेता के विरुद्ध युद्ध करना चाहिए। *विजेता के साथ कोई संधि नहीं हो सकती। विदेशी अधिपत्य उसके* लिए चुनौती है। क्रांतिकारी की दृष्टि में विदेशी राजा को यहां का नागरिक मानना या उससे संधि करना मूर्खता है। गांधीजी ने स्वतंत्रता प्राप्ति में शस्त्र प्रयोग की जितनी निंदा की उतना ही क्रांतिकारी आंदोलन लोकप्रिय होता गया। यह बात मार्च १९३१ के कांग्रेस के कराची अधिवेशन से स्पष्ट है। गांधीजी के कठोर विरोध के अनन्तर भगतसिंह के उस साहस की प्रशंसा करते हुए एक प्रस्ताव पास किया गया जो उन्होंने १९२९ में लैजिस्लेटिव असेम्बली में बम फेंककर दिखाया था। गांधीजी इस पराजय को नहीं भूले और कुछ मास पश्चात् जब श्री गोगटे ने बम्बई के गवर्नर हाटसन पर गोली चलाई तब उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की *बैठक में कहा कि हाटसन पर गोली चलाने का मुख्य कारण वह प्रशंसा का प्रस्ताव* है जो कराची में भगतसिंह के लिए पास किया गया था। गांधीजी के इस कथन का विरोध श्री सुभाषचंद्र बोस ने उसी बैठक में किया। इसी से गांधीजी उनको अपना विरोधी समझने लगे। भारत की स्वतंत्रता में क्रांतिकारी दल को सर्वाधिक श्रेय है। जो लोग यह कहते हैं कि गांधीजी के परिश्रम से स्वतन्त्रता मिली, वे केवल कृतघ्नता ही नहीं करते प्रत्युत एक झूठा इतिहास बनाना चाहते हैं। १८९५ के बाद स्वतन्त्रता के युद्ध का सच्चा इतिहास उस समय तक नहीं लिखा जा सकेगा जब तक सत्ता गांधीवादियों के हाथ में है तब तक देशभक्त नवयुवकों के महान कार्य को अन्धकार में ही रखा जाएगा, परंतु यह बिलकुल सत्य है कि उन्होंने बहुत ही *प्रशंसनीय कार्य किया था।*

७८. गांधीजी केवल उन्हीं का विरोध नहीं करते थे जो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए शस्त्र प्रयोग करना चाहते थे बल्कि उन लोगों का भी कड़ा विरोध करते थे जिनके विचार गांधीजी के विचारों से भिन्न थे। गांधीजी की अप्रसंन्नता के एक *पात्र सुभाषचंद्र बोस भी थे। जहां तक मुझे पता है सुभाषचंद्र छः वर्षों तक जब* बाहर रहे तो गांधीजी ने उन पर प्रतिबंध का कोई विरोध नहीं किया। सुभाषचंद्र बोस अध्यक्ष पद पर रहते हुए गांधीजी की नीति पर नहीं चले। फिर भी सुभाषचंद्र बोस इतने लोकप्रिय हुए कि गांधीजी की इच्छा के विपरीत डॉ० पट्टाभि सीतारमैया के विरोध में प्रबल बहुमत से चुने गये और डा० पट्टाभि सितारमैया के आंध्र से भी सुभाष बोस को ही अधिक मत मिले। गांधीजी को क्षोभ हुआ, उन्होंने कहा कि "सुभाष की जीत गांधी की हार है।" गांधीजी के मन में विष भर आया और द्वेषाग्नि में जलते हुए वे त्रिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में नहीं गए और राजकोट में धूर्ततापूर्वक अनशन और सत्याग्रह छेड़ दिया। जिस समय तक सुभाष बोस को कांग्रेस की गद्दी से नहीं उतार दिया गया तब तक उनका क्रोध शांत नहीं हुआ।

७९ सुभाष बोस के दूसरी बार कांग्रेस अध्यक्ष चुने जाने और यहाँ से बाहर जाने की घटनाएँ यह प्रकट करती है कि गांधीजी किस प्रकार धूर्ततापूर्वक कांग्रेस से अपना काम निकाल लेते थे। १९३४ के बाद गांधीजी बार - बार यही कहते थे कि वे तो कांग्रेस के चार आने के सदस्य भी नहीं है और उनका कांग्रेस से कोई संबंध नही है, किंतु सुभाष जब दूसरी बार कांग्रेस अध्यक्ष चुने गए तब गांधी जी के क्रोध से यह पता चला कि कांग्रेस कार्य में खूब हस्तक्षेप करते थे जब कि वे कहते यह थे कि उनका कांग्रेस से कोई संबंध नही है और वह उनके सदस्य भी नहीं है। झूठ बोलने का इससे सुंदर उदाहरण और कहाँ मिलेगा ?

८० जब ८ अगस्त १९४२ को गांधीजी ने कांग्रेस से भारत छोड़ो आंदोलन करवाया तो नेताओं को सरकार ने तत्काल जेल भेज दिया और वे कुछ भी न कर पाए। आंदोलन वहीं कुचल दिया गया। कांग्रेस में कुछ लोग ऐसे थे जो गुप्त रूप से काम करने लगे। ये लोग गांधी के सिद्धान्तों पर चलकर जेल नहीं जाना चाहते थे बल्कि बाहर रहकर यह चाहते थे कि लूट-पाट और तोड़फोड़ से सरकार को जितनी हानि पहुंचाई जा सके पहुचायी जाए। ये लोग शस्त्र प्रयोग करने को भी तैयार थे और अंग्रेजों का संहार भी उनके कार्यक्रम के बाहर नही था। गांधी ने कहा था- 'करो या मरो' जिसका अर्थ इस दल ने लगाया कि जितनी बाधाएँ सरकार के मार्ग में डाली जा सकें, डाली जाएं। वास्तव में उन्होने वह सब कुछ किया जिससे युद्ध की तैयारी में बाधा पड़े। पुलिस थानों को जला दिया। डाकखानों को बेकार कर दिया। उत्तरी बिहार और अन्य स्थानों पर ६०० स्टेशनों को या तो फूंक दिया या बेकार कर दिया गया और राज्य प्रबन्ध का कुछ समय के लिये तो अन्त हो ही गया।

८१. यह बल प्रयोग अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धान्तों के विरुद्ध था, लेकिन गांधी इस विषय में मौन रहे। यदि वे इसका विरोध करते तो जनता में अलोकप्रिय होते। क्योंकि जनता अहिंसा आदि का विचार नहीं कर रही थी और यदि वे इसको प्रोत्साहन देते तो अहिंसा का सिद्धांत टूटता था। वास्तव में भारत छोड़ो आंदोलन का महत्व ही यह है कि उस समय लूट-मार और विनाश कार्य हुए। यह आदोलन प्रारंभ होने के कुछ सप्ताहों में ही गांधीजीकी अहिंसा का अन्त हो गया। अगस्त १९४२ के बाद कुछ सप्ताहों में जो भी हुआ वह गांधीजी की विचारधारा के प्रतिकूल था। गांधीजीकी यह विचित्र अहिंसा थी कि वे करने या मरने के लिए कह रहे थे। गांधीजी को इस हिंसा की उस समय निंदा करनी पड़ी जब ४३में लार्ड लिनलिथगो ने अपने पत्र-व्यवहार में स्पष्टरूप से पूछा कि वे १९४२ की हिंसाको उचित समझते है या नहीं। जो हानि या तोड़-फोड़ हुई और युद्ध की तयारी में बाधा आयी वह हिंसा चाहनेवाले कांग्रेसियों द्वारा आयी न कि अहिंसा के पुजारी गांधीवादियों द्वारा। उनकी अहिंसा असफल हो गई थी, किंतु किसी सीमा तक सफल

हुई। जेल में गांधीजी को हिंसा की निंदा करनी पड़ी। आजादी के लिए क्रांतिकारी संघर्ष को गांधीजी ने निर्बल कर दिया। गांधीजी का अन्त तो अगस्त सन ४२ के पश्चात् ही हो चुका था।

८२ उस समय तक सुभाष जो भारत से जनवरी ४१ से गुप्तरुप से चले गए थे अफगानिस्तान के मार्ग से बर्लिन होते हुए जापान पहुँचे। सुभाष बोस को काबुल जाने मे और फिर बर्लिन जाने में जो कठिनाइयाँ हुई वे उत्तमचंद्र मल्होत्रा ने अपनी पुस्तक 'नेताजी जियाउद्दीन के रूप में' भली भाँति लिखी है। बोस ने बर्लिन पहुँचने में बड़ी कठिनाइयो का सामना किया। रोमांचकारी साहस किया। ४२ मे जब क्रिप्स भारत आया तो सुभाष जापान पहुँच चुके थे और भारतपर हमले की तैयारी कर रहे थे। जब सुभाष बर्लिन गए तो हिटलर ने भारत के सर्वोच्च शासक की उपाधि उन्हें प्रदान की और जापान पहुँचे तो उन्होने जापानियों को अंग्रेजो के विरुद्ध भारत पर हमले में सहायता के लिए तैयार पाया। जापान पहले ही अमरीका के पर्ल हारबर पर आक्रमण करके जर्मनी की ओर से युद्ध में सम्मिलित हो चुका था। जर्मनी ने रूस के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा कर दी। जापान, मलाया की रियासतों और पूर्व के अन्य भागों में जो भारतवासी रहते थे उन्होंने सुभाष का हृदय खोलकर स्वागत किया। उनकी पूरी सहायता की।

८३ जापान ने बर्मा, डचों के पूर्वी टापू, मलाया और अंडमान टापुओं पर अपना अधिकार जमा लिया था। सुभाष ने भारतसे सम्बंधित स्थानों पर अस्थायी सरकार चलायी और १९४४ में वे इस योग्य हो गये की जापानियो की सहायता से भारतपर आक्रमण कर दें। सुभाष के नेतृत्व मे भारतीय सेना देश के द्वारपर गरज रही थी और मणिपूर और आसाम के कुछ हिस्सों मे घुस चुकी थी। आजाद हिंद में वे लोग थे जो या तो जापान की कैद से आकर सेना में प्रविष्ट हो गये थे या वहाँ पर पहले से रहते थे। माना कि आजाद हिंद सेना हार गयी, परन्तु सुभाष का कोई दोष न था। बड़ी वीरता से लड़े, किन्तु सुभाष की सेना के पास आधुनिक लडाई की सामग्री न थी। बहुत आदमी भूख और रोगों से मर गए। क्योंकि औषधियों का भी उचित प्रबन्ध न था, परन्तु जो भावनाएँ सुभाष ने उन लोगों में भर दी थी, आश्चर्यजनक थी। लोग उनको प्यार से नेताजी कहते थे और सारे देश ने उनका उपघोष 'जय हिंद' मंत्र के समान ग्रहण कर लिया था।

८४. गांधी जी इस बात के विरोधी थे कि सुभाष बोस भारत पर आक्रमण करें। नेहरुजी को भी यह बात पसंद न थी कि भारत पर जापान की सहायता से आक्रमण किया जाय। चाहे भारतीय नेताओं और सुभाष के बीच कितने ही मतभेद रहे हों जनता के हृदय मे जितना स्नेह सुभाष के प्रति था उतना किसी दूसरे के प्रति नहीं था। यदि ४५ में सुभाष भारत आ जाते तो सारादेश उनके चरणों में आंखें बिछा

देता और सबको छोडकर उनकें पीछे हो लेता, परन्तु गांधी का भाग्य फिर चमका। १९२० में लोकमान्य तिलक की मृत्यु हुई और गांधी जी सारे देश के नेता बन गए। सुभाष की विजय गांधी को कुचल देनेवाली पराजय सिद्ध होती, किंतु यहां भी गाधी के भाग्य ने साथ दिया। सुभाष की मृत्यु भारत से बाहर हो गयी। तब कांग्रेस के लिए यह सरल हो गया कि सुभाष और उनके साथियों की प्रशंसा करे और आजाद हिंद सेना के जिन अफसरोंपर लालकिले में मुकदमा चलाया जा रहा था उनको बचाने का यत्न करके सुभाष प्रेमी प्रशंसा प्राप्त करे। अब तो नेहरू ने भी सुभाष चन्द्र के उद्घोष 'जय हिंद' को अपना लिया। सुभाष और आजाद हिंद सेना के नाम पर अपने स्वार्थ सिद्ध किये और इन्ही नामों के बल पर ४६ के चुनाव जीते। इसके अलावा उन्होंनें आश्वासन दिया कि हम पाकिस्तान का विरोध करेंगे। इन दो अभिवचनों के लिए आय एन ए ने सुभाष सेना को निश्चित ही आदर दिलवाया और अंत में पाकिस्तान के सामने झुके और वचनभंग किया।

८५. मुस्लिम लीग देश की शांति को भंग कर रही थी और हिंदुओं पर अत्याचार कर रही थी। ऐसा मालूम होता था कि लार्ड वैवेल का इन बातोंसे कुछ संबध नही है। कांग्रेस इन अत्याचारों को रोकने के लिए कुछ करना नहीं चाहती थी, क्योंकि वह मुसलमानों को प्रसंन्न रखना चाहती थी। गांधीजी जिस बात पर अपने को अनुकूल नही पाते थे, उसे दबा देते थे। इसीलिए मुझे यह सुनकर आश्चर्य होता है कि आजादी गांधी ने प्राप्त की। मेरा विचार है मुसलमानों के आगे झुकना आजादी के लिए युद्ध करना नहीं था। इससे तो अपना ही सत्यानाश हुआ और देश का एक तिहाई भाग हाथ से जाता रहा। स्वराज्य प्राप्त करने में गांधीजी का कोई हाथ नहीं है। वह देशभक्त थे, परतु उनके प्रचार का प्रभाव विपरीत हुआ। उनके नेतृत्व ने देश को उल्लू बनाया। मेरे विचार में देशभक्त सुभाष थे जिन्होंने देशभक्ति की सच्ची ज्वाला प्रज्वलित की और जब आवश्यकता समझी तो शक्ति का भी प्रयोग किया। गांधी और उनके साथी सुभाष को नष्ट करना चाहते थे। इसलिये यह कहना तो सरासर झूठ है।

८६. अंग्रेजों के भारत छोड़ने के तीन कारण है और उनमें गाधी जी को कोई भूमिका नही है। इन तीन कारणों का विवरण इस प्रकार है —

१) १८५७ से १९३२ तक का क्रांतिकारी आंदोलन और उसके पश्चात गांधी जी के सिद्धांतो के विरुद्ध १९४२ का विद्रोह और तदुपरात सुभाष बोस के महानतम कार्य जिससे भारतीय सेनाओं में विद्रोह की भावना जागृत हुई और अंग्रेजी राज्य की जड़े सुखाई जा सकी। गांधी जी सबके विरुद्ध रहे, प्रारम्भ से अंत तक।

२) स्वतंत्रता का दूसरा श्रेय उनको है जो असेम्बली में वैधानिक रूप से अधिकारों के लिये लड़े। इस श्रेणी का यह सिद्धान्त था कि जो कुछ मिले उसे ले

लिया जाय और अधिक के लिये मांग की जाय। इनमें थे लोकमान्य तिलक, एन.सी. केलकर, श्री० सी० आर० दास, विठ्ठल भाई पटेल, पू० मदनमोहन मालवीय और भाई परमानंद जो गत दस वर्षों से हिंदू महासभा के नेता रहे, लेकिन इस श्रेणी का गांधी ने सदा मजाक उड़ाया। वे कहते रहे कि यह लोग नौकरियों के पीछे फिरते हैं। परंतु अंत में गांधी ने भी वही सब कुछ किया जो ये लोग कहते और करते रहे थे।

३) तीसरा महत्वपूर्ण कारण है इंगलैंड में लेबर पार्टी के हाथ में सत्ता का आना। चर्चिल के हाथ से सत्ता चली गई और युद्ध के खर्चे के भार से इंगलंड की आर्थिक स्थिती दयनीय हो गयी। यह प्रबलतम कारण था जिससे अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा।

८७ जब तक देश गांधी की नीति पर चलता रहा, वह उलझनों में ही पडा रहा। गांधी ने क्रांतिकारी आंदोलन का, व्यक्तियों का और दलों का विरोध किया और चरखा, अहिंसा और सत्याग्रह जैसी निरर्थक वस्तुओं को महत्व दिया। २४ वर्ष तक गाधी जी चरखे की रट लगाते रहे लेकिन उसका केवल यही एक परिणाम हुआ कि सर्व-साधारण द्वारा मशीन से बना हुआ कपड़ा तीन गुनी मात्रा में बरता जाने लगा। चर्खे के कपड़े से अब भी एक प्रतिशत आदमियों का काम नही चल सकता। जहां तक अहिंसा का बंधन है, यह सोचना तो बड़ी मूर्खता है कि ४० करोड़ आदमी इतने उच्च विचारो के हो जायें कि वे अहिंसा के अनुसार आचरण करने लगें। इस अहिंसा की दुर्दशा सन् ४२ में हुई। जहां तक सत्य का संबंध है एक साधारण कांग्रेसी भी उतना सत्यवादी है जितना अन्य कोई व्यक्ति और कई बार तो जो कुछ कांग्रेसी कहते हैं, वास्तव में असत्य होता है, यद्यपि ऊपर से वह सत्य दिखाई देता है।

*

१२ | ध्येय भंजन

(Frustration of Ideal)

८८. गांधीजी के हिन्दू मुस्लीम एकता सिद्धान्त का महत्व तो उसी समय नष्ट हो गया था जिस समय पाकिस्तान बना। प्रारंभ से मुस्लीम लीग का मत था कि भारतवर्ष एक देश नही है। हिन्दू मुस्लीम एकता से गांधीजी का अभिप्राय यह था कि दोनों मिलकर आजादी की लडाई में काम करें। हिन्दू तो उनके परामर्श पर

चलते रहे, किंतु मुसलमानों ने गांधी की ओर ध्यान नही दिया और अपने व्यवहार से वे सदा हिंदुओं का अपमान और अहित करते रहे और अन्त में देश दो टुकडो में विभक्त हो गया।

८९. गांधी और जिन्ना के परस्पर संबंध भी ध्यान देने योग्य है। जब १९२० में जिन्ना राष्ट्रीय विचारोंको छोडकर कांग्रेससे अलग हो गया और अलग मुस्लीम लीग बना ली तो स्पष्ट शब्दो में घोषणा की कि मुसलमानों को कांग्रेस का विश्वास नही करना चाहिये। जिन्ना ने स्वयं को मुसलमानों का हितैषी घोषित करते हुए यह प्रचार प्रारंभ किया कि मुसलमानों को कांग्रेस के साथ स्वतंत्रता युद्ध में हिंदुओं की सहायता नही करनी चाहिये। उसने यह सब खुल्लमखुल्ला कहा और पाकिस्तान की मांग सामने रखी। वह स्पष्ट शब्दों में कहता था कि देश के टुकडे करो।

९०. गांधीजी जिन्ना से बहुत बार मिलने गये। वह सदा उसको भाई जिन्ना या 'कायदेआजम' कहकर पुकारते रहे, परन्तु ऐसा अवसर कभी नही आया जब जिन्ना ने उनसे सहयोग की इच्छा प्रकट की हो जबकि गांधी ने उसे सारे भारत की बागडोर सौंप देने तक का प्रस्ताव रख दिया।

९१. गांधीजी की आध्यात्मिक शक्ति और उनकी अहिंसा, उनकी महिमा में बहुत कुछ कहा जाता है, जिन्ना की दृढता के आगे वह शक्तिहीन सिद्ध हुई।

९२. जब गांधीजी यह देख चुके थे कि वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति से जिन्ना को प्रभावित नही कर सकते तो उन्हें चाहिए था कि या तो अपनी नीति बदल देते या हार मान लेते और दूसरों को अवसर देते कि वे जिन्ना और मुस्लीम लीग से निपटे। गांधीजी इतने प्रामाणिक नही थे कि वे राष्ट्र की भलाई के लिए अपनी महत्वाकांक्षा को छोड़ देते। इसलिए कोई गुंजाइश ही नही रही कि कुछ किया जा सके क्योंकि गांधीजी के शब्दो में ही 'हिमालय पर्वत जितनी बडी' गलतियाँ गांधीजी कर चुके थे।

९३. नोआखाली कांड के एक वर्ष पश्चात् तक देश में रक्तपात होता रहा। मुसलमानों ने निर्दयता से हिंदुओ का संहार किया। कई स्थानों पर हिंदुओं ने भी उत्तर दिया। बिहार, दिल्ली और पंजाब में हिंदुओं ने जो कुछ किया वह केवल प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही थी। गांधीजी यह भली भाँति जानते थे कि यह सब कुछ मुसलमानो के हिंदुओ पर अत्याचारों के परिणामस्वरूप हो रहा है, लेकिन वे इस विषय में सदा सर्वदा हिंदुओं की ही निंदा करते रहे और कांग्रेस सरकार ने तो बिहार के हिंदुओं पर गोलियाँ भी बरसायी। यह बात भुला दी गयी कि यह सब नोआखली और अन्य स्थानों के काण्डों के परिणामस्वरूप हो रहा है। गांधी ने

अपनी प्रार्थना सभा के भाषणों में यह प्रचार किया कि भारत में हिंदुओं को चाहिये कि वे मुसलमानों के साथ बहुत आदर और उदारता का व्यवहार करें और सुहरावर्दी को भले ही वह गुंडों का सरदार हो दिल्ली में स्वतंत्रतापूर्वक सैर करने दिया जाय और उसे कुछ न कहा जाय। गांधी के निम्नलिखित भाषणों से यह भली भांति ज्ञात होता है—

(ए) "हमें शांतिपूर्वक यह विचारना चाहिये कि हम कहां बहे जा रहे हैं ? हिंदुओं को मुसलमानों के विरुद्ध क्रोध नही करना चाहिये, चाहे मुसलमान उन्हें मिटाने का विचार ही क्यों न रखते हो। अगर मुसलमान सभी को मार डाले तो हम बहादुरी से मर जायें। इस दुनिया में भले उन्ही का राज हो जाय, हम नई दुनिया के बसने वाले हो जायेंगे। कम से कम मरने से हमें बिलकुल नही डरना चाहियें। जन्म और मरण तो हमारे नसीब मे लिखा हुआ हैं, फिर उसमे हर्ष शोक क्यो करे। अगर हम हँसते हँसते मरेंगें तो सचमुच एक नये जीवन में प्रवेश करेंगे। एक नये हिंदुस्तान का निर्माण करेंगे। (दिनांक ६-४-१९४७)

(बी) मेरे पास रावलपिंडी से जो भाई आज आ गये वे तो तगड़े थे, बहादुर थे और बड़ी तिजारत करने वाले थे। मैंने तो उस भाई से कहा आप शात रहे और आखिर मे तो ईश्वर बड़ा है। ऐसी कोई जगह नहीं जहां ईश्वर न हो। उसका भजन करो और उसका नाम लो, सब अच्छा हो जाएगा। उन्होने कहा, वहा पाकिस्तान में जो पड़े है उनका क्या करें ? मैंने उसको कहा, आप यहाँ आये क्यों, वहाँ मर क्यों नही गये ? मैं तो इसी चीज पर कायम हूँ कि हम पर जुल्म हो तो भी हम जहा पड़े है वही पड़े रहें, मर जायें। लोग मार डालें तो मर जायें। यह न कहे कि हम अब क्या कर सकते हैं। मकान नही, कुछ नही। मकान तो पड़े हैं, धरती माता हमारा मकान है, ऊपर आकाश है। जो मुसलमान डर से भाग गये, उनके मकान पड़े हैं, जमीन पड़ी है तो क्या मैं कहूँ कि आप मुसलमानों के घरों में चले जायें ? मेरी जुबान से ऐसा नही निकल सकता। मुसलमानों के घर कल तक थे, वे आज उनके है। उसमें जो हमारे शरणार्थी है वे अपने आप चले जायें, यह तो अच्छा नहीं। मैं आपसे यह कहूँगा, रावलपिंडीवालों से भी कहा कि आप वहाँ जाये और जो सिख और हिंदू शरणार्थी हैं उनको मिले, उनसे कहें कि भाई, आप वापिस जायें और अपने-आप, आप पुलिस के मारफत नही, मिलटरी के मारफत नही।"

सी) 'जो लोग पंजाब में मर चुके है उनमें से एक भी वापिस नही आ सकता। हमें भी अंत में मरना है। यह सच है कि वे कत्ल कर दिये गये लेकिन कोई बात नहीं है। बहुत से हैजे और दूसरे कारणो से मर जाते हैं। यदि वे कत्ल हुए तो वीरता से मरे, उन्होंने कुछ खोया नही, है। लेकिन प्रश्न यह है कि उनका

क्या होगा जिन्होंने संहार किया ? यह समझ लो कि मनुष्य बड़ी भूले करता है। पंजाब में अंग्रजी सेना ने हमारी रक्षा की, परंतु यह कोई रक्षा नही है। लोगों को चाहिये खुद अपनी रक्षा करे और मौत से न डरे। मरनेवाले तो हमारे मुस्लिम भाई है। हमारे भाई अपना धर्म बदल दें तो क्या वे अपने भाई न रहेंगे ? क्या हम भी उन जैसा व्यवहार नही करते ? हमने स्त्रियो के साथ बिहार में क्या कुछ नहीं किया ? "

९४. गांधीजी को सोचना चाहिए था कि हिंदुओं में जो प्रतिशोधाग्नि भड़क रही है वह स्वाभाविक है। यवनों के प्रांतों में हजारो हिंदुओं को केवल हिंदु होने के कारण मार दिया गया और सरकार इन भाग्यहीन लोगों की मदद और रक्षा के लिये कुछ न कर सकी, तब क्या यह संभव है कि हिंदू प्रांतो में जोश न आये और दुःख न हो ? इस प्रकार का जोश तो प्रत्येक व्यक्ति को आना चाहिये। केवल इसी ध्येय से हिंदुओं ने मुसलमानों के साथ कठोर व्यवहार किया कि ऐसा करने से पाकिस्तान में हिंदुओं की रक्षा हो सकती थी। जब हिंदुओं ने देखा कि भारत सरकार पाकिस्तान के हिंदुओ की रक्षा करने मे अयोग्य है तब उन्होंने स्वयं यह कार्य करने का निश्चय किया। पाकिस्तान में जो अत्याचार हूए उनसे प्रतिशोध की भावना फैलना उतना ही आवश्यक था जितना आवश्यक अन्य अवसरों पर दया होती है।

९५. बहुत से आंदोलन केवल इसी प्रकार की भावनाओं से सफल हुए है। प्रतिशोध की भावना लोगो में न आये तो समाज से अत्याचारियों का अंत हो नही सकता। भारत के प्राचीन इतिहास, रामायण और महाभारत की घटनाओ और आधुनिक इंगलैंड, अमेरिका, जर्मनी के सबंधों में यही एक भावना पाई जाती है। चाहे यह अच्छी हो या बुरी। यह मनुष्यता के लिये अनिवार्य है।

९६. मैं पहले बता चुका हूँ कि भारत की राजनीति में गांधीजी ने स्वतंत्रता प्राप्त करने के मार्ग में किस प्रकार बाधाएँ डाली है। वे अपनी नीति पर दृढ नही रहा करते थे। उनका व्यवहार युद्ध में तो ऐसा था, जैसे उन्होने सब कुछ बिना सोचे समझे किया हो। वास्तविकता भी यही थी।

९७. पहले तो उन्होंने कहा कि इंगलैंड और जर्मनी के युद्ध में अंग्रेजो की मदद न की जाए क्योंकि लड़ाई में हिंसा होती है। हिंसा के कार्य में सहायता कैसी दी जाता सकती है ? परंतु गांधीजी के धनी मित्रों ने सरकार से ठेके लिए और उसे युद्ध का सामान देकर खूब धन कमाया। यहाँ उन धनिकों के नाम लेने की आवश्यकता नही है। क्योंकि बिड़ला, डालमिया, बालचंद हीराचंद और नानजीभाई कालीदासको सभी जानते हैं। गांधीजी और उनके साथियों की इन लोगों ने बड़ी सहायता की, परंतु गांधीजी ने इनसे धन कभी अस्वीकार नहीं किया, यद्यपि यह धन युद्ध

द्वारा कमाया गया था। गांधीजी ने इन लोगों को सरकार से ठेके लेने और माल देने से रोका नही। यही नही गांधीजी ने कॅांग्रेसी खादी भंडार को सेना के लिए कम्बल देने की स्वयं अनुमति दी थी।

९८. गांधीजी सन् ४४ में जेल से छूटे तो अन्य लीडर भी छोड़ दिए गए, लेकिन सबको इस शर्त पर छोड़ा गया कि कांग्रेस अंग्रेजों को जापान के विरुद्ध लड़ाई में सहायता देगी। गांधीजी नें इसका विरोध करना तो दूर सरकारी शर्तें को अक्षरशः स्वीकार कर लिया।

९९. गाधी की नीति में स्थिरता का तो नाम भी नही था। सत्य की परिभाषा तो उन्हीं पर निर्भर थी ही। उनकी राजनीति आत्मिक शक्ति, व्रत,पार्थना और हृदय की शुद्धता जैसे अंध विश्वासो के आधार पर चलती थी।

१००. गांधीजी ने एक बार कहा था – "अहिंसा से १००० वर्ष पीछे प्राप्त की हुई स्वतंत्रता उस स्वतंत्रता से अच्छी है जो हिंसा से इस समय ली जाए," किंतु यह तो ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि वे कहते कुछ थे और करते कुछ और थे।

१०१. उनके अहिंसा के सिद्धांत की अस्थिरता का पता एक घटना से चलता है। पाकिस्तान के बाद काश्मीर का प्रश्न आया। पाकिस्तान ने काश्मीर को हड़पने के लिए काश्मीर पर हमला किया। महाराजा ने नेहरू सरकार से मदद माँगी और इस शर्त पर सहायता देना निश्चित हुआ कि सत्ता शेख अब्दुल्ला के हाथो में दे दी जाए और नेहरू ने काश्मीर के बचाने के लिए गांधीजी से पूछकर सेनाएँ भेज दी।

१०२. हमारे नेता यह जानते है कि काश्मीर पर हुए हमले में पाकिस्तान की पूरी मदद थी, इसलिए सेना भेजने का तात्पर्य स्पष्टतया पाकिस्तात से लड़ना था। गाधीजी लडाई के विरुद्ध थे,परंतु काश्मीर में सेना भेजने की उन्होंने आज्ञा दे दी। महात्मा के अहिंसक नेतृत्व में जो आजादी मिली उसमें प्रथम हिंसक घटना हुई कि काश्मीर में भीषण रक्तपात हुआ और गांधीनें उसमें कोई आपत्ति नही की।

१०३. यदि गांधीजी को अपने अहिंसा के सिद्धान्त पर दृढ विश्वास होता तो वे काश्मीर में सेना के स्थान पर सत्याग्रही, राईफलों के स्थान पर तकलियां और बंदूकों के स्थान पर चरखे भिजवाने का आदेश निकलवा देते। यह गाधीजी के लिए सत्याग्रह की शक्ति दिखाने और स्वतंत्रता मिलते ही अनुभव करने का सुंदर अवसर था।

१०४. परंतु गाधीजी ने उसे गॅंवा दिया। उन्होने स्वतंत्र भारत का जन्म होते ही एक हिंसात्मक संघर्ष को अपनी सहमति प्रदान की। इस विसंगति का क्या अर्थ था ? मेरे विचार में गांधीजी के समक्ष काश्मीर की नही शेख अब्दुल्ला के अधिकारों की रक्षा का प्रश्न था और इसलिए उन्होंने इस युद्ध को अपनी स्वीकृति दी।

काश्मीर के हिंदू महाराजा से सत्ता छीनकर शेख और उसके बहाने मुसलमानों को काश्मीर का दान, यह गांधीवादी सरकार का उद्देश्य था। इसलिए गांधीजी ने आज्ञा दे दी कि काश्मीर से सेना द्वारा आक्रमणकारियों को निकाला जाए। गांधीजी काश्मीर के युद्ध की भयानक कहानी प्रतिदिन पढ़ रहे थे,, लेकिन फिर भी इसलिए व्रत रखे हुए थे कि उनकी दृष्टी में दिल्ली में थोड़े से मुसलमान असुरक्षित थे। उन्होंने काश्मीर पर आक्रमण करनेवालों के सामने न ही व्रत किया, न वहाँ सत्याग्रह ही किया। उनके सब व्रत केवल हिन्दुओं को कुचलने के लिए थे।

१०५. मैंने इस तथ्य को बहुत दुर्भाग्यपूर्ण समझा था कि एक बहुरूपिए को सारे भारत का नेता मान लिया जाए। जिस महात्मा के मन पर उन अत्याचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा जो हैदराबाद में हिन्दुओं पर हुए। जिस महात्मा ने निजाम हैदराबाद को अत्याचार छोड़ने के लिए कभी नहीं कहा। यदि भारत गांधीजी के कहने पर चलता रहा तो विभाजित भारत की स्वतंत्रता भी सकट में पड़ जाएगी, इस प्रकार के विचार मेरे मन में आ रहे थे। इन्ही दिनों गांधीजी ने हिंदु-मुस्लिम एकता के लिए १३ जनवरी १९४८ को उपवास की घोषणा कर दी, यह मैं सहन न कर सका।

१०६. गत चार वर्षो से मैं एक दैनिक समाचार-पत्र का सपादक था और उससे पहले भी सार्वजनिक कार्यकर्ता था, इसलिए मुझे राजनैतिक घटनाओं के संबंध में पूरी जानकरी रहती थी।

१०७ मुझे तीन राजनैतिक दलो के परस्पर संबंध का भलीभाँति ज्ञान था। लीग काग्रेस को हिन्दू दल कहती थी, लेकिन काग्रेसियो को हिन्दू कह देना तो मानो उनको गाली देना है।

१०८. यदि कोई दल किसी विशेप जाती के हित का ध्यान रखे और राष्ट्रीयता को हानि न पहूँचाए तो उसे साम्प्रदायिक कहकर बुरा समझना ठीक नहीं है, लेकिन यदि कोई ऐसी पार्टी राष्ट्रीयता को भी हानि पहूँचाती है तो उसकी निन्दा की जानी चाहिए। कांग्रेस लीग की हर माँग के सामने झुकती गई, किन्तु महासभा के नेताओं की राष्ट्रीयता तथा नीति की, निंदा करती रही।

१०९. जब कांग्रेस ने मुस्लिम लीग को मुस्लिम दल मान लिया तो उसे चाहिए था कि महासभा को हिंदुओं का प्रतिनिधि मानती या घोषणा करती कि हिंदुओं के हितों की रक्षा महासभा करेगी या स्वयं कांग्रेस करेगी, किंतु कांग्रेस ने ऐसी कोई घोषणा नही की। जिसका परिणाम यह हूआ कि एक ओर तो शक्तिशाली मुस्लिम लीग मुसलमानों के हितों की रक्षा करती रही; दूसरी ओर कांग्रेस के मुसलमान भी मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा करते रहे। हिंदुओं की रक्षा

करने वाला कोई न था। कांग्रेसने जो महासभा को साम्प्रदायिक दल कहकर बुरा बताती थी, लार्ड वैवेल द्वारा बुलायी गई शिमला कांग्रेस में यह मान लिया कि ५० प्रतिशत अधिकार मुस्लिम लीग को दे दिए जाएँ। महात्मा के कहने पर कांग्रेसी लीडर इस बात पर भी तैयार हो गए थे कि उनको हिंदुओं का प्रतिनिधि मान लिया जाए। स्पष्ट है कि कांग्रेस की नीति साम्प्रदायिक थी और केवल मुसलमानों को संतुष्ट करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था।

११०. हमारे त्यागी और दूरदर्शी नेताओं ने संपूर्ण देश की स्वाधीनता के लिए स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। पंजाब, बगाल, सीमा प्रांत और सिंध ने भी संपूर्ण देश में प्रजातंत्र की स्थापना के लिए बलिदान किए थे, किंतु देश के टुकडे करने से यह संयुक्त राष्ट्रीय प्रयत्न विफल हो गया। जिन देशभक्त क्रांतिकारियों ने प्रसंन्नतापूर्वक फाँसी के फंदे को गले लगाए था, जिन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए आजीवन कारावास और देशनिष्कासन की यातनाएँ भोगी थी, क्या वे लोग इसी विभाजित देश की स्वतंत्रता के लिए लड़े थे? उनके बलिदानों का क्या यही परिणाम उचित था कि देश खंडित हो जाए और उसके एक हिस्से पर एक विदेशी संप्रदाय राज्य करे?

१११. गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने लीग की सब माँगे स्वीकार कर ली। जिन्ना की १४ माँगों से पाकिस्तान बनने की माँग तक सभी माँगे पूर्ण कर दी। क्या यह दुःख का विषय नहीं है कि कांग्रेस राज्य मिलने पर खुशियाँ मनाए जब कि पूर्व पश्चिम में पाकिस्तान के रूप में देश के टुकडे हो गये थे और बीच में हैदराबाद का काटा चुभ रहा था? गांधी के नेतृत्व म कांग्रेस का यह पतन देखकर मुझे भर्तृहरि का एक श्लोक स्मरण आ रहा है — जिसका अर्थ है कि गंगा स्वर्ग में शिव के मस्तक पर आयी। वहाँ से हिमालय पर्वत पर, वहाँ से भूमि पर और वहाँ से समुद्र में जाकर विलीन हो गई। यह सत्य है कि अव्यवस्थित मनुष्य के पतन के अनेक मार्ग है।

11619
21/9/50

१३ राष्ट्रविरोधी तुष्टीकरण की परिसीमा

११२. मैं ने गांधी जी को राजनैतिक क्षेत्र से सदा के लिए हटाने का निश्चय किया। मै जानता था वैयक्तिक स्तर पर मेरा सब कुछ नष्ट हो जाएगा। मै धनी नही हूँ। मध्य श्रेणी मेरा स्थान है। मै अपने प्रांत में सार्वजनिक कार्य करता था।

मैंने जो सेवा की उसके कारण मुझे अपने प्रांत में आदर और संमान मिला। सभ्यता और संस्कृति के संस्कारों से मैं पूरा परिचित था। मैं जो योजनाएँ बनाता गया उसे पूरा करने की शक्ति मुझमें थी। मेरा शरीर सबल है। न कोई अंग विकार है, न मुझे व्यसन है। यद्यपि मैं विद्वान नहीं हूँ, परंतु विद्वानों के लिये हृदय में आदर है।

११३. १९२९–३० में कांग्रेस ने जब असहयोग आंदोलन शुरू किया तब मैंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। मैं तब विद्यार्थी था। इस आंदोलन के संबंध के भाषण जो पत्रों में छपे थे, मैंने पढ़े और मैं प्रभावित हुआ। मैंने आंदोलन में भाग लेने का विचार किया। कुछ समय बाद आंदोलन असफल हो गया तो मुसलमानों के संबंध की समस्याएँ बहुत महत्व पकड़ गयी। हिंदू महासभा के नेता डॉ० मुंजे, भाई परमानंद और मालवीयजी आदि हिंदू समाज नेता हिंदुओं के संगठन में लग गये।

११४. सन् ३२ के लगभग स्वर्गीय डॉ० हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नींव डाली। उनके भाषणों का मुझ पर प्रभाव पड़ा। मैं स्वयंसेवक बना। मैं महाराष्ट्र के उन युवकों में था जिन्होंने संघ में उसके प्रारंभ से भाग लिया। कुछ वर्षों तक मैंने संघ में काम किया। कुछ दिन पश्चात् मैंने सोचा कि वैधानिक रूप से हिंदुओं के अधिकारों की रक्षा के लिए राजनीति में भाग लेना चाहिए। जिस कारण मैं संघ को छोड़ कर हिंदू सभा में आ गया।

११५. सन् ३८ में महासभा ने हैदराबाद में आंदोलन किया तो मैं पहला जत्था लेकर गया। मुझे एक वर्ष का कारावास मिला। मुझे हैदराबाद निजाम की बर्बरता और दानवता का व्यक्तिगत अनुभव है। मुझे वंदेमातरम् गाने पर वहाँ कई बार बेंते लगाई गयी थीं।

११६. सन् ४३ में बिहार सरकार ने आदेश दिया कि भागलपुर में महासभा का अधिवेशन न हो। महासभा ने उनका उल्लंघन करने का निश्चय किया, क्योंकि सरकार की यह आज्ञा अनुचित थी। सरकार के प्रयत्नों के होते हुए अधिवेशन हुआ। अधिवेशन की तैयारी कराने के लिए मैं लगभग एक मास भूमिगत होकर काम करता रहा। मैंने समाचारपत्रों में अपने कार्य की प्रशंसा पढ़ी और देखा कि जनता ने उस समय मेरे सार्वजनिक कार्य को सराहा। मेरी प्रकृति में हिंसा नहीं थी। बडगे ने जो कहा है कि मैंने श्री भोपटकर को चाकू निकाला था झूठ है। श्री भोपटकर हमारे पक्ष के वकील हैं यदि मैं उन पर चाकू निकालता तो क्या वे हमारी सहायता कर सकते थे? यदि वह घटना सही होती तो मैं श्री भोपटकर की सहायता लेता भी नहीं।

११७. जो मेरे व्यक्तित्व से परिचित है वे मेरी शान्त प्रकृति को जानते है, किंतु जब उच्च नेताओं ने गांधीजी की सहमति से मातृभूमि के टुकडे कर डाले तब मेरा हृदय क्षोभ से भर गया। मैं स्पष्ट कहना चाहता हूं कि मैं कांग्रेस का शत्रु नहीं। मैं इस संस्था को सबसे अधिक महत्व देता रहा, क्योंकि उसने देश की आजादी के लिये काम किया था। मेरा नेताओं से मतभेद था तथा अब तक है। यह मेरे २८ फरवरी १९३८ के सावरकर के नाम पत्र से भली-भाँति विदित होता है। आज भी मेरे वही विचार है।

११८. गांधीजी से मेरी शत्रुता नही थी। लोग कहते है कि पाकिस्तान योजना मे उनका मन शुद्ध था। मैं यह बताना चाहता हूं कि मेरे मन में देशप्रेम के अतिरिक्त कुछ न था। मुझे इस कारण हाथ उठाना पड़ा कि पकिस्तान बनने पर जो भयंकर घटनाऐं हुई उनके उत्तरदायी केवल गांधी जी थे। मुझे यह पता था कि हत्या के बाद लोगों के विचार मेरे विषय में बदल जायेंगे। समाज में जितना मेरा आदर है वह नष्ट हो जाएगा। मैं जानता था कि समाचार-पत्र बुरी तरह मेरी निन्दा करेंगे, किंतु मैं नही जानता था कि अखबार इतने पतित हो जायेंगे कि सत्य का गला घोट देंगे।

११९. समाचार-पत्रो ने कभी निष्पक्षता से न लिखा। यदि वे देश के हित का अधिक ध्यान रखते और एक मनुष्य की व्यक्तिगत इच्छाओं को ओर कम ध्यान देते तो देश के नेता पाकिस्तान स्वीकार न करते। समाचार-पत्रों की यह नीति थी कि लीडरो की गलतियां को प्रकट न होने दिया जाय। देश का विभाजन इससे सरल हो गया। ऐसे भ्रष्ट समाचार-पत्रो के डर से मैंने अपने निश्चय की दृढता को विचलित नही होने दिया।

१२०. कुछ लोग कहते है कि यदि पाकिस्तान न बनता तो आजादी न मिलती। मैं इस विचार को ठीक नही मानता। लीडरो ने अपने पाप को छिपाने के लिये यह बहाना बनाया है। गांधीवादी कहते है कि उन्होने अपनी शक्ति से स्वराज्य पाया। यदि उन्होने अपनी शक्ति से स्वराज्य लिया है तो उन्होने हारे हुए अंग्रेजो को पाकिस्तान की शर्त क्यो रखने दी और शक्ति से क्यो न रोका? मेरे विचार से महात्मा और उनके अनुयायियो की एक ही 'पालिसी' रही। और वह यह की पहले यवनो की मांगो पर विरोध दर्शाना, फिर हिचकन दिखाना और अंत में मान लेना। इसी प्रकार पाकिस्तान की रूप-रेखा स्वीकार कर ली गयी।

१२१. १५ आगस्त ४७ को छलपूर्वक पाकिस्तान स्वीकार कर लिया गया। पंजाब, बंगाल, सीमाप्रांत और सिंध के हिंदुओ का कोई विचार नही किया गया। देशके टुकडे करके एक मजहबी धर्माधिष्ठित मुस्लिम राज्य बना दिया गया।

मुसलमानों को अपने अराष्ट्रीय कार्यों का फल पाकिस्तान के रूप में मिल गया। गांधीवादी नेताओं ने उन लोगों को देशद्रोही, साम्प्रदायिक कह कर पुकारा जिन्होंने पाकिस्तान का विरोध किया था और पाकिस्तान स्वयं स्वीकार करके जिन्ना की सब बातें मान लीं। इस दुर्घटना से मेरे मन की शांति भंग हो गयी। पाकिस्तान बनाने के बाद कॉंग्रेस सरकार पाकिस्तान के हिंदुओं की रक्षा करती तो मेरा क्रोध शांत हो जाता। मैं नहीं देख सकता था कि जनता को धोखा दिया जाय। करोड़ो हिंदुओं को मुसलमानों की दया पर छोड़ कर गांधीवादी कहते रहे कि हिंदुओं को पाकिस्तान से नहीं आना चाहिए और वहीं रहना चाहिए। इस प्रकार हिंदू मुसलमानों के चंगुल में फंस गये और विकट विपत्तियों के शिकार हुए। जब मुझे इन घटनाओं की याद आती है तो मैं कांप उठता हूं।

१२२. प्रतिदिन सहस्त्रों हिंदुओं का संहार होता था। १५००० सिखों को गोलियों से भून दिया गया। हिंदू स्त्रियों को नग्न करके जुलूस निकाले गये। उनको बेचा गया। लाखों हिंदुओं को धर्म बचानेको भागना पड़ा। चालीस मील लंबा हिंदु-निराश्रितों का जत्था हिंदुस्तान की ओर आ रहा था। हिंदुस्थान शासन इस भयानक कृत्य का कैसा भयानक निवारण करता था ? उन निराश्रितों को वायुयान से रोटियाँ फेंककर हमने स्वराज्य जीता !

१२३. भारत सरकार पाकिस्तान से अत्याचार रोकने के लिये अनुरोध करती या धमकी देती कि यदि पाकिस्तान में अत्याचार बंद नहीं हुआ तो भारत में भी मुसलमानों की बुरी दशा होगी तो इतने अत्याचार न होते. । भारत सरकार गांधी जी के इशारो पर चलती थी और उसकी नीति कुछ और ही थी। यदि पाकिस्तान के हिंदुओं की रक्षा के लिए समाचार-पत्र कुछ लिख देते थे तो यह अर्थ लिया जाता था कि हिंदू मुसलमानों में मतभेद फैलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसे कार्यों को अपराध माना जाने लगा और प्रेस इमरजैन्सी ऐक्ट की धाराएँ लागू करके जमानत माँगी जाने लगी। बम्बई में ऐसी ९९० घटनाएँ हुई। गृहमंत्री मुरारजी देसाई ने स्वयं बताया कि समाचार-पत्रों की एक न सुनी गयी जब कि प्रेस प्रतिनिधियों ने मंत्रियों से भेंट की। इस प्रकार मुझे आशा न रही कि गांधीवादी कॉंग्रेस सरकार पर शांतिमय ढंग से दबाव डाला जा सकता है।

१२४. जब इस प्रकार की घटनाएँ हो रही थी तब पाकिस्तान या मुसलमानों के विरुद्ध एक भी शब्द नहीं कहा। हिंदू जाति और संस्कृति को मिटाने के लिए मुसलमानों ने जो अत्याचार किये उनका मूल कारण गांधी हैं। यदि भारत की राज्यनीति को भलीभांति सम्भाला जाता तो ऐसा संहार कभी न होता जैसा अब हुआ और जिसका उदाहरण इतिहास में कहीं नहीं मिलता।

१२५. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मुसलमानों से संबंध रखने वाली समस्याओं में गांधीजी ने कभी जनता के विचारों की ओर ध्यान नहीं दिया। गांधी जी की अहिंसा को आड़ में इतना रक्तपात हो चुका था कि जनता पाकिस्तान के पक्ष के किसी भी विचार का स्वागत करने के लिए तय्यार न थी। स्पष्ट था कि जब तक पाकिस्तान में धर्मांध मुस्लिम राज्य है तब तक भारत में शांति नहीं हो सकती। फिर भी गांधीजी इस प्रकार का प्रचार कर रहे थे और इस तरह के विचार पाकिस्तान के पक्ष में फैला रहे थे, जैसा कर सकने में कोई कट्टर लीगी नेता भी सफल न हो पाता।

१२६. इन्हीं दिनों उन्होंने आमरण अनशन की घोषणा करते हुए जो शर्तें रखीं वे सब भी केवल हिंदुओं के विरुद्ध और मुसलमानों के पक्ष में थीं।

१२७. गांधीजी के अनशन की जो शर्तें थीं उनमें पहली यह थी कि दिल्ली की मस्जिदों में रह रहे हिंदू शरणार्थियों को बाहर निकाला जाय और मस्जिदें मुसलमानों को सौंप दी जायें। गांधीजी ने अपनी शर्तें सरकार और अन्य नेताओं को अनशन की धमकी देकर स्वीकार करायी। जिस दिन यह घटना हुई, उस दिन मैं दिल्ली में था। मैंने देखा कि किस प्रकार गांधी जी की जिद्द को पूरा किया गया। वे शीत के दिन थे। जिस दिन गांधीजीने अनशन खोला उस दिन वर्षा हो रही थी। ऐसी असाधारण सर्दी और वर्षा में अच्छे स्थानों पर रहने वाले लोग भी कांप रहे थे। उस समय निराश्रित शरणार्थियों के कुटुम्ब के कुटुम्ब मस्जिदों से सर्दी के मारे कांपते हुए निकाले गये। उनकी रक्षा का कोई प्रबंध नहीं किया गया। कुछ शरणार्थी तो कुटुब और स्त्रियों सहित बिरला हाऊस गये और उन्होंने नारे लगाये– 'गांधीजी हमें स्थान दो।' उस भव्य भवन में रहने वाले गांधी तक उन निराश्रितों की आवाज नहीं पहुंच सकी। मैंने यह दृश्य अपनी आखों से देखा, जिसे देखकर कठोर से कठोर व्यक्ति का हृदय भी पिघल जाता। मेरे मस्तिष्क में इससे अनेक विचार आने लगे। मैंने सोचा कि क्या शरणार्थियों ने प्रसंनता से इन मस्जिदों में डेरे डाले थे ? नही-नही ! गांधी को भी उन स्थितियों का पूरा पता था, जिनसे बाध्य हो कर उन्हें अपने घर छोड़ कर इन मस्जिदों की शरण लेनी पड़ी। पाकिस्तान में एक भी मंदिर या गुरुद्वारा सुरक्षित नही रहा। शरणार्थियों ने अपनी आंखों से देखा था कि किस प्रकार मुसलमानों ने, केवल हिंदू मंदिरों और गुरुद्वारों को अपवित्र किया। जो हिंदू शरणार्थी दिल्ली शरण लेने के लिए आये थे उन्हें यहाँ कोई स्थान नहीं मिला तो इसमें क्या आश्चर्य की बात है यदि उन लोगों ने पेड़ों के नीचे और गली कूचों में न पड़े रह पंजाब में बीती हुई दुर्घटनाओं को स्मरण करके दिल्ली की व्यर्थ खाली पड़ी मस्जिदों में शरण ली। मेरे विचार में इस प्रकार

मस्जिदें मानवता की भलाई के लिए काम आ रही थी। गांधी जी ने यह निश्चय किया कि मस्जिदों को खाली कराया जाय, वहाँ उनके रहने का दूसरा प्रबंध क्यों नहीं कराया ? उन्होने पाकिस्तान के मंदिर हिंदुओं को सौंपने की मांग क्यों नहीं की ? जिससे पता चलता कि गांधी वस्तुतः अहिंसा के पुजारी हैं, हिंदू मुस्लिम एकता के इच्छुक हैं और उनमें निष्पक्ष आत्मशक्ति है। गांधी ने पूरी चालाकी की और अपने अनशन को खोलने के लिए पाकिस्तान के लिए एक भी शर्त न रखी। यदि वे रखते तो संसार देखता कि गांधी जी अनशन करते हुए स्वर्ग सिधार जाते; और पाकिस्तान के एक भी मुसलमान को लेशमात्र दुःख न होता। उन्होने अपने अनुभव से देख लिया था कि उनके व्रत का जिन्ना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और लीग उनकी आत्मशक्ति की परवाह नहीं करती।

१२८. अन्त में यह बताना अनुचित न होगा कि गांधी के फूल (अस्थि) भारत और विदेशों की बहुत सी नदियों में बहाये गये, परंतु यह अस्थि पाकिस्तान की सिंधु नदी में नहीं बहायी जा सकी। इस संबंध में पाकिस्तान में भारत के राजदूत श्री श्रीप्रकाश जी का प्रयत्न निष्फल रहा।

१२९. अब ५५ करोड़ रुपयों की बात लीजिये। उप-प्रधानमंत्री का निवेदन देखिये। गांधी जी ने स्वयं कहा है कि किसी गवर्नमेंट से उसका निर्णय बदलवाना कठिन हो जाता है। लेकिन भारत सरकार ने गांधी जी के अनशन के कारण पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपये न देने का अपना निर्णय बदल दिया। (गांधी जी का २१।१।४८ का प्रार्थना प्रवचन देखिये)। सरकार ने ५५ करोड न देने का निर्णय जनता की प्रतिनिधि होने के नाते किया था, लेकिन गांधी जी के अनशन ने इस निर्णय को बदल दिया तब मुझे यह ज्ञात हुआ कि गांधी जी की पाकिस्तान परस्ती के आगे जनता मत का कोई महत्त्व नहीं है।

अपने प्रतिवृत्त के पहले खंड के पृष्ठ १४३ पर न्या० कपूर ने उस समय वृत्तपत्रों की इस संबंध की प्रतिक्रिया का एक उदाहरण दिया है। छेदक १२ ए ४५ इस प्रकार है।

'बंबई के साप्ताहिक नेशनल गार्डियन ने अपने दि० १७ जनवरी १९४७ के अंक में "नेहरू शासन से हिंदुस्तान की घोर वंचना। पाकिस्तान धौंस से जो पा न सका वह गांधी जी के हठाग्रह से पा सका।" ऐसे शीर्षक के नीचे दिया था। 'अपने राष्ट्रीय जनों का जिससे नरसंहार होगा वह पैसे देने का कृत्य हम नहीं करेंगे' ऐसी गर्जना चल रही थी और सरदार वल्लभभाई पटेल के 'धौंस को और दबाव को भीख नहीं डालेंगे' ऐसे वीरत्व के शब्द सुनने में आते थे। इतने में ही गांधी ने

अनशन करके पाकिस्तान को करोड़ों रुपये देने को नेहरू शासन को बाध्य किया। ५५ करोड़ प्रदान से लोग कैसे प्रक्षुब्ध थे इसका यह निदर्शक है।

१३०. मुसलमानों ने स्वतंत्रता आंदोलन का विरोध किया, इसलिए पाकिस्तान बना। जिन्होंने पाकिस्तान का पक्ष लिया उनको पांचवें स्तंभ का आदमी कहा गया है। उनकी निंदा की गई है, परंतु मेरी दृष्टि में गांधी जी ने पाकिस्तान का पक्ष सबसे अधिक लिया और कोई शक्ति उनको नहीं रोक सकी।

१३१. इस स्थिति में हिंदुओं को मुसलमानों के अत्याचारों से बचाने का एक ही उपाय था कि गांधी जी का अंत कर दिया जाय।

१३२. गांधी जी राष्ट्रपिता के नाम से पुकारे जाते हैं जो अत्यन्त संमान का पद है। पर वे 'पिता' का कर्त्तव्य पालन में असफल रहे। उन्होने तो बड़ी निर्दयता से राष्ट्र के दो टुकड़े कर दिए। यदि वे सच्ची आत्मा से पाकिस्तान का विरोध करते तो लोग कभी भी इतनी शक्ति से यह मांग न रख पाती और अंग्रेज पूर्ण प्रयत्न करके भी इसे न बना पाते। देश की जनता पाकिस्तान की घोर विरोधी थी पर गांधी जी ने जनता को धोखा दिया और मुसलमानो को पाकिस्तान बनाने के लिए देश का एक भाग दे दिया। वास्तव में गांधी जी ने अपने आपको पाकिस्तान का पिता सिद्ध किया है। इसलिए मैंने भारतमाता का एक पुत्र होने के नाते अपना कर्त्तव्य समझा कि ऐसे व्यक्ति का अंत कर दिया जाय जिसको कहा तो जा रहा है राष्ट्रपिता किंतु जिसने मातृभूमि का विभाजन करने में सर्वाधिक हाथ बँटाया है।

१३३. हैदराबाद की समस्या का भी यही इतिहास है। निजाम के मंत्रियों एव रचाकारोने जो अत्याचार हिंदुओ पर किए उनका वर्णन करने की आवश्यकत नही है। वहाँ के प्रधानमंत्री लायक अली जनवरी, ४८ के अंतिम सप्ताह में गांधी जी से मिले थे। शीघ्र ही यह पता लग गया कि गांधी जी का व्यवहार इस विषय में भी विचित्र है। जिस प्रकार उन्होंने सुहरावर्दी को अपनाया था उसी प्रकार कासिम रिजवी को भी दत्तकपुत्र समझकर व्यवहार करेंगे, यह बिल्कुल स्पष्ट था। जब तक गांधी जी जीवित थे तब तक सरकार हैदराबाद के विरुद्ध कुछ न कर सकी यद्यपि वह पूर्ण अधिकार और शक्ति सम्पन्न थी। यदि गांधी जी के जीवन कालमें ही भारत सरकार हैदराबाद में सेना या पुलिस की कोई कार्यवाही करने का निश्चय करती तो गांधी जी हिंदू- मुस्लिम एकता के नाम पर सरकार को अपना निश्चय बदलने पर बाध्य कर देते; जिस प्रकार ५५ करोड़ रुपया पाकिस्तान को न देने का निर्णय वापिस लेना पड़ा था। जब गांधी जी अनशन ठान लेते तो उनको बचाने के लिये सरकार को उनकी इच्छानुसार चलना पड़ता।

१३४. गांधीजी के अहिंसा सिद्धांत के अनुसार हमें अत्याचार सहन करते जाना चाहिए और शस्त्र या शारीरिक शक्ति से प्रतिकार नही करना चाहिए। गांधीजी की अहिंसा उस सिंह की अहिंसा है जो उस समय अहिंसा का पुजारी हो जाता है जब वह सहस्रों गायों को खा पीकर थक जाता है। कानपुर में गणेश शंकर विद्यार्थी को यवनों ने निर्दयता से मार दिया था। गांधीजी उनका उदाहरण देकर कहते थे कि इस प्रकार अहिंसा पर चलकर अपना बलिदान कर देना चाहिए। मेरा विश्वास है यह अहिंसा (नपुंसकत्व) देश को नष्ट कर देगी और पाकिस्तान भारत पर अधिपत्य जमा लेगा।

१३५. मुझे स्पष्ट दिखाई देता था कि यदि मैं गांधीजी का वध करूंगा तो मैं जड़ सहित नष्ट कर दिया जाऊंगा। लोक मुझसे घृणा करेंगे, मेरा संमान जो मुझे प्राणों से अधिक प्रिय है नष्ट हो जाएगा, किंतु साथ में मैं यह भी जानता था कि गांधीजी सदा के लिए बिदा हो जायेंगे तो देश की राजनीति में शस्त्रप्रयोग और प्रतिकारात्मक कार्यवाही को स्थान मिलेगा! देश शक्तिशाली होगा। मैं अवश्य मरूंगा, किंतु देश अत्याचारों से मुक्त होगा। सब मुझे मूर्ख कहेंगे, पर देश ऐसे मार्ग पर चलेगा जो उचित होगा। यही सोचकर मैंने गांधीजी का अंत करने की ठानी। मैंने अपना निर्णय किसी को नहीं बताया। ३०-१-४८ के दिन मैंने गांधीजी का वध किया।

१३६. मेरे पास कहने को और कुछ नही है। यदि देशभक्ति पाप है तो मैं मानता हूं मैंने पाप किया है। यदि प्रशंसनीय है तो मैं अपने आपको उस प्रशंसा का अधिकारी समझता हूं। मुझे विश्वास है यदि मनुष्यों द्वारा स्थापित न्यायालय से ऊपर कोई और न्यायालय होगा तो उसमें मेरे कार्य को अपराध नही समझा जाएगा। मैंने देश और जाति की भलाई के लिए यह काम किया। मैंने उस व्यक्ति पर गोली चलाई जिसकी नीति से हिंदुओं पर घोर संकट आए और हिंदू नष्ट हुए।

१३७. वास्तव में मेरे जीवन का उसी समय अंत हो गया था जब गांधीजी पर गोली चलाई थी। उसके पश्चात् मैं अनासक्त जीवन बिता रहा हूं। मेरे लिए यह संतोष का विषय है कि मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है।

१३८. हैदराबाद की समस्या में अकारण देर हो रही थी। सरकार ने गांधी जी की मृत्यु के बाद शस्त्र शक्ति से इस समस्या को ठीक रूप से सुलझा दिया है। भारत की आधुनिक राजनीति और सरकार अभी तक तो ठीक प्रकार से चलती हुई जान पड रही है। गृहमंत्री ने कहा है कि देश के पास प्रचुर युद्ध सामग्री होनी चाहिए। ऐसा विचार प्रकट करते हुए उन्होने यह नहीं कहा कि वे गांधीजी के सिद्धांतों पर चल कर यह सब कुछ करेंगे। यदि वे ऐसा कहें तो केवल अपने मन

के संतोष के लिए कहेंगे। यह याद रखना चाहिए कि यदि आधुनिक शस्त्रों का प्रयोग करके यह कहा जाए कि गांधीजी के अहिंसा सिद्धांत पर चला जा रहा है तो हिटलर, मुसोलिनी, चर्चिल या रूजवेल्ट के देश रक्षा के ढंग और गांधीजी के अहिंसा सिद्धात में कोई भेद नही रह जाएगा।

१३९. मैं यह मानने को तैयार हूं कि गांधीजी ने देश के लिए बहुत कष्ट उठाया। उन्होंने जनता में जागृति पैदा की। उन्होने स्वार्थवश कुछ नहीं किया; परंतु दुःख यह है कि वे इतने ईमानदार नहीं थे कि अहिंसा की हार को स्वीकार कर लेते। मैंने दूसरे भारतीय देशभक्तों और नेताओं के भी चरित्र पढ़े है, जिन्होंने गांधीजी से अधिक बलिदान किए है। कुछ भी हो, गांधीजी ने देश की जो सेवा की है उसके लिए मैं उनका आदर करता हूं। उन पर गोली चलाने के पूर्व मैंने इसीलिए उनकी वंदना की थी, किंतु जनता को धोखा देकर पूजनीय मातृभूमि के विभाजन का अधिकार किसी बड़े से बड़े महात्मा को नही है। गांधीजी ने देश को छल कर देश के टुकड़े किए। क्योंकि ऐसा न्यायालय या कानून नही था जिसके आधार पर ऐसे अपराधी को दंड दिया जा सकता, इसलिये मैंने गांधी को गोली मारी। उनको दण्ड देने का केवल यही एक तरीका रह गया था।

१४०. यदि मैं यह न करता तो मेरे लिए अच्छा ही होता, परन्तु स्थिती बहुत खराब हो गयी थी और मेरे हृदय में इतना अधिक क्षोभ था कि मैंने सोचा कि गांधीजी को स्वाभाविक मृत्यु से नही मरने देना चाहिए। संसार को पता लग जाये कि इस व्यक्ति ने अन्यायपूर्वक राष्ट्र के साथ छल करके, भयानक रूप से देश के एक सम्प्रदाय का जो पक्ष लिया है उसका उसे दण्ड भोगना पड़ा। मैंने इस समस्या का अंत इसी प्रकार करना चाहा क्योंकि इसी से लाखों निर्दोष हिंदुओं का जीवन बच सकता था। गांधी जी की जो संकीर्ण प्रवृत्ति भूमि के पुत्रों के लिए घातक सिद्ध हुई, उसके लिये भगवान उन्हें क्षमा करे।

१४१. मेरी न किसी से कोई शत्रुता है और न किसी के प्रति कोई दुर्भावना। यह मैं अवश्य कहता हू कि इस सरकार के लिये मेरे हृदय में कोई आदर न था क्योंकि यह अनुचित रूप से देश के शत्रुओं के हाथ मजबूत कर रही थी। मैं देख रहा था कि यह नीति गांधी के कारण थी। अब ऐसे व्यक्ति का अंत हो जाने के बाद वह राष्ट्र-निर्माण की योजनाओं पर कार्य करने के लिये स्वतंत्र है, किंतु मुझे यह कहते दुःख होता है कि प्रधानमंत्री नेहरू के भाषणों और कार्यों में बड़ा अंतर है। वे धर्म निरपेक्षता के आधार पर राष्ट्र-निर्माण की बातें करते है जब कि उन्होंने स्वयं पाकिस्तान को धार्मिक आधार पर स्वीकार किया है। उन्हें सोचना चाहिए था कि साम्प्रदायिक आधार पर बनाया हुआ पाकिस्तान भारत के लिये लाभदायक न

होगा फिर भी सब कुछ सोचने के पश्चात् मेरे हृदय ने कहा कि गांधीजी के विरुद्ध काम करना चाहिए। किसी ने मुझ पर इस संबंध में कोई दबाव नही डाला और न ही कोई डाल सकता था।

१४२. आप मेरी इस भावना को जिस प्रकार देखना चाहे देखें और इस भावना के परिणामस्वरूप मेरे किये हुए इस कार्य को देखकर जो दण्ड उचित समझें दें, इस विषय में कुछ कहने की मेरी कोई इच्छा नही है। मैं किसी प्रकार की दया नहीं चाहता। मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरी ओर से कोई और दया की याचना करे।

१४३. इस अभियोग में बहुत से मनुष्यों को मेरे साथ इस अपराध में ले लिया है। उन पर आरोप है कि उन्होंने षड्यंत्र रचा। इस विषय में मै पहले ही कह चुका हूं कि इस कार्य में मेरा कोई साथी नहीं था। स्वयं मैं और केवल मैं ही इसका उत्तरदायी हूं। यदि दूसरे लोग इसी दोष के लिये नहीं खड़े किये जाते तो मै अपने लिये बचाव भी न करता। न्यायालय को मालूम है कि ३० जनवरी १९४८ के कृत्य से संबंधित साक्षीदारों की परिपरीक्षा न ली जाय ऐसी मेरी इच्छा थी और मेरे विधिविज्ञों को भी मेरा वैसा आग्रह रहा था। इससे मैं अपने लिये बचाव नहीं कर रहा, यह स्पष्ट होगा।

१४४. मै इस बात को पहले ही बता चुका हू कि २० जनवरी को मैं शांतिमय प्रदर्शन के पक्ष में नही था। अपने सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए यह उपाय मुझे व्यर्थ प्रतीत होता था फिर भी मैंने प्रार्थना सभा में होनेवाले उस प्रदर्शन में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। यद्यपि इसमें सम्मिलित होने की मेरी आतरिक इच्छा न थी। दैवयोग से मै उसमें सम्मिलित न हो सका और किसी कारण से जब यह प्रयत्न सफल भी नही हुआ तब मुझे बड़ी निराशा हुई। आपटे और अन्य लोगों ने पूना, बम्बई, ग्वालियर में स्वयंसेवकों के लिए जो परिश्रम किया था उसका कुछ भी फल नही निकला तब गांधीजी के वध के अतिरिक्त मेरे लिए कोई दूसरा मार्ग नही रह गया।

१४५. इन्ही विचारों में खोया हुआ जब मै दिल्ली के शरणार्थी कैम्प में घूम रहा था तो मुझे एक फोटोग्राफर मिला जिसकी कमर में कैमरा लटक रहा था। उसने मुझे फोटो उतरवाने के लिए कहा। वह शरणार्थी ही प्रतीत होता था। मैंने फोटो खिचवा लिया। जिस समय मै स्टेशन पर आया, मैंने आपटे को दो पत्र लिखे, जिसमें अपनी मानसिक दशा का वर्णन किया और अपने फोटो भी भेज दिए। नाना राव आपटे के प्रेस और पत्र के क्षेत्र में मुझसे घनिष्ठ संबंध थे। उन्हें मैंने एक पत्र व्यक्तिगत पते पर भेजा, दूसरा हिंदू राष्ट्र कार्यालय के पते पर।

१४६. अंत में मैं यह कहना चाहता हूं कि जो वक्तव्य मैंने दिया है वह सत्य और ठीक है। प्रत्येक बात संदर्भ ग्रंथोंको देखकर तैयार की गई। मैंने सरकारी समाचार-पत्र 'इण्डियन इयर बुक', 'कांग्रेस का इतिहास', 'गांधीजी की 'आत्मकथा' समय समय पर प्रकाशित कांग्रेस के बुलेटिन, 'यंग इण्डिया' और 'हरिजन' की फाईलें और गांधीजी की प्रार्थना सभा के भाषणों से यह वक्तव्य तैयार करने म सहायता ली है। मैंने यह लम्बा वक्तव्य इसलिए नहीं दिया है कि लोग मेरे कार्य को सराहे, बल्कि इसलिए दिया है कि लोग मेरे विचारों को भली-भाँति जान जाएं और किसी के मस्तिष्क में मेरे विषय में कोई भ्रांत धारणा न रहे।

१४७. भगवान करे हमारा देश फिर अखंड हो और जनता उन विचारों का त्याग करे जो अत्याचारी के आगे झुकने की प्रेरणा देते हैं। यह मेरी भगवान से अंतिम प्रार्थना है।

१४८. मेरा वक्तव्य अब समाप्त हो चुका है। आपने इसे ध्यान से सुना और सुविधाएँ दीं उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। जिन्होंनें इस बड़े अभियोग में मुझे कानूनी सहायता दी है और जो पुलिस ऑफिसर इस अभियोग से संबंधित है उनके प्रति मेरे हृदय में कोई दुर्भावना नहीं है। मैं उनके अच्छे व्यवहार के लिए उनको धन्यवाद देता हूं। जेल के ऑफीसरों को धन्यवाद। उन्होने मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया है।

१४९. यह सत्य है कि मैंने तीन-चार सौ लोगो के बीच दिन के समय गांधी जी पर गोलियाँ चलायी। मैंने भागने का कोई प्रयत्न नहीं किया। वास्तव में भागने का विचार मेरे मस्तिष्क में आया ही नही। मैंने अपने उपर गोली चलाने का प्रयत्न भी नहीं किया। आत्मघात करने का मेरा कभी विचार न था, क्योंकि मैं अपने विचारों को खुले न्यायालय में प्रकट करना चाहता था।

मेरे कार्य की चारों ओर से निंदा हो रही है। फिर भी मेरा कार्य नीति की दृष्टि से पूर्णतया उचित था। मेरे विश्वास की दृढता कम नही हुई है, मुझे इस बात में लेश मात्र भी सन्देह नहीं कि भविष्य में किसी समय जब सच्चे इतिहास-कार इतिहास लिखेंगे तो मेरे कार्य का सच्चा मूल्य आँकेंगे।

अखंड भारत अमर रहे!
वन्दे मातरम्!

दिल्ली

नथुराम विनायक गोडसे

८ नवंबर १९४८

(अभियुक्त क्रमांक १)

पाकिस्तान को शेष राशि देने के विषय में उपप्रधानमंत्री का वक्तव्य

माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल उपप्रधानमंत्री ने नयी दिल्ली में पत्रकार परिषद् में १२ जनवरी को एक वक्तव्य दिया—

"मित्रगण ! पाकिस्तान के अर्थमंत्री श्री गुलाम अहमद ने पाकिस्तान को शेष राशि देने के संबंध में जो वक्तव्य दिया है वह आपने पढ़ा ही होगा। प्रस्तुत अर्थमंत्री ने एक सिविल सर्वेंट के नाते विविध क्षेत्रों में उच्च स्थान पर काम किया है। वे हैदराबाद संस्थान के भी अर्थमंत्री रहे। बड़े व्यापारों में उनका भाग था। ऐसे अधिकारी व्यक्ति के विधानों में कहीं असत्य आ जाए अथवा सत्य का विपर्यास करनेवाली बातें आ जाएँ तो साधारण रूप से उन पर भरोसा किया जाता है, किंतु उनका वक्तव्य ऐसे उद्धरणों से ओत-प्रोत है। इतना ही नहीं वरन् काश्मीर के प्रश्न से उन्हीं के शासन ने पैसों का सम्भव अवरुद्ध किया है। इसलिए उस प्रश्न को सुलझाना न्याय द्वारा असम्भव है, यह उन्होंने जाना है। अतः उन्होंने अपनी विवेकबुद्धि और सारासार विचार बुद्धि हवा में छोड़ दी है। धौंस देकर उद्ण्डपन से पैसे छीननेवाले गुंडों के स्तर पर वे उतरे है।

सच्ची घटनाओं को स्थान ही नहीं

मैंने ऐसे शब्द प्रयोग जानबूझ कर किए है क्योंकि जो व्यक्ति समान बुद्धि से उनका वक्तव्य पढ़ेगा वह इस बात को जान जाएगा कि रिजर्व बैंक पर धमकियों की बरसात कर और उस पर अश्लाध्य आरोप लगाकर उसको डरा कर झुकाने का गुलाम अहमद का यत्न चल रहा है। हिंदुस्तान शासन का हेतु शुद्ध और प्रामाणिक नहीं है ऐसा आरोप उन्होंने लगाया है। उन्हें आशा दिखती है कि ऐसे आरोपों से उनके रुके हुए पैसे उन्हें मिल सकेंगे। विश्व के अन्य राष्ट्रों की राय की सहायता उन्हें प्राप्त हो, यह उनकी चेष्टा है। अपनी दी हुई धमकी नंगी न पड़ जाय और वे राष्ट्र हिंदुस्तान शासन को अपनी नीति बदलने को कहें, इसलिए यह चाल चली गई है। मैं समझ सकता हूं कि जिस उलझन पूर्ण अवस्था में वे (पाकिस्तान) खड़े हैं, उससे छुटकारा पाने के लिए उनके हाथ पैर छटपटा रहे

हैं। इस प्रश्न पर उन्हें उद्दण्डता की चाल चलने की अपेक्षा समतोल विचार करना चाहिए। इतनी अपेक्षा रखने का मेरा भी अधिकार है। उनके कोलाहल को और धमकियों को अपयश ही मिलेगा, यह बात सूर्य प्रकाश जितनी स्पष्ट है। अपना साहस प्राप्त करने के लिए उन्होंने जो असभ्यता दिखाई और उद्दण्ड बर्ताव किया, उस नशे में उन्होंने सत्यस्थिति को देखा तक नहीं है। फिर उनका मूल्य मापन करने की बात तो दूर ही रही। यह देखिए—

काश्मीर का प्रश्न बातचीत में खींचा जाएगा, इसका तनिक भी ध्यान पाकिस्तान को नहीं था। इस बात की छानबीन हम पहले करेंगे। साथ ही साथ, उन्होंने हिंदुस्तान शासन पर अप्रामाणिकता का आरोप लगाया है और दूसरे भी आरोप लगाए हैं उसका भी हम विचार करेंगे। इस बातचीत के अनुक्रम का ब्योरा मैं आप को थोड़े में देता हूं। पिछले नवम्बर के अंतिम सप्ताह में पाकिस्तान और हिंदुस्तान शासन के प्रतिनिधियों के बीच कई बार बातचीत हुई। हेतु यह था कि आपस के झगड़े निपट जाएं जिसमें काश्मीर प्रश्न का भी समावेश था। जो बातें हुई वे विभाजन से ही जनित प्रश्नों तक सीमित नहीं थी। काश्मीर के प्रश्न पर भी चर्चा हुई। वैसे ही निर्वासितों का प्रश्न और उनके पुनर्वसन के महत्व की घटना को भी चर्चा में स्थान था। दिनांक २६ को काश्मीर प्रश्न पर जो चर्चा हुई, वह आशा, सद्भावना और सौजन्य के वायुमण्डल में। वह चर्चा आगे चलती रही और दूसरे दिन आर्थिक और दूसरे प्रश्न भी चर्चा के विषय बने। २७ नवंबर को शेष राशि के वितरण का और जिस पर चर्चा नहीं हुई थी, उस ऋण के सम्बन्ध का एक तात्कालिक संधि-पत्र (करार) तय्यार हुआ। उस संधिपत्र का तुरंत प्रकटीकरण हो ऐसी पाकिस्तान की इच्छा थी। हमारी अनुमति प्राप्त करने का उन्होंने जीतोड़ प्रयास किया। हमने उनका विरोध किया। २७ नवम्बर की शाम मैंने वृत्तपत्रों को एक वक्तव्य दिया। मैंने उन्हें बताया कि हमारी गोष्ठी पर वृत्त-पत्र तर्क न करे और हमारी बातचीत समाप्त होने के बाद हम अधिकृत वृत्त उन्हें जब तक न दें तब तक वे धीरज रखें। मेरे शब्द इस प्रकार हैं:—"सब स्थानिक प्रश्नों पर उपाय ढूंढने के हमारे प्रयास त्वरित के साथ चल रहे है, किंतु हमारी चर्चामें फिर तर्क-वितर्क प्रकट किए गए तो उससे लाभकी अपेक्षा हानि ही होने की आशंका है। इस समय मैं इतना ही कहता हूँ कि हमारी बातचीत मित्रता के और सौजन्य के वातावरण में चालू है और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री और अर्थमंत्री शनीचर तक यहां रहने वाले हैं।

जब बातचीत पूरी होगी, विस्तृत विवरण दिया जाएगा। तब तक यदि कुछ प्रतिवृत्त (किसी वृत्तपत्र द्वारा) छपा भी या किसी एकाध प्रश्न पर अनुबंध हुआ है ऐसा प्रसिद्ध हुआ तो उन वृतों को शासकीय संपुष्टि नहीं है और वह प्रकटीकरण अवधिपूर्व है, ऐसा माना जाएगा।"

यह अनुबंध अंतिम नहीं है

दूसरे दिन प्रातः मैंने अपने वक्तव्य में एक स्पष्टीकरण दिया। शासकीय भवन-गवर्नमेंट हाउस में पढा गया। पाकिस्तान के महामन्त्री और अर्थमन्त्री वहां उपस्थित थे। सब स्थगित प्रश्नों पर सुझाव नहीं होवा है, तब तक यह अनुबंध अन्तिम नहीं माना जाएगा, यह मेरा स्पष्टीकरण था। मैंने यह भी स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जब तक काश्मीर का प्रश्न निर्णित नही होता, तब तक हम कोई भी धनराशि देने के लिए अनुमति नही देंगे। मेरी उस बात को ध्यान में रखकर ही उभयान्वय पत्र को प्रकट नही किया गया था। इसके बीच पाकिस्तान के प्रतिनिधियों ने अपना जाना स्थगित किया। काश्मीर और दूसरे प्रश्नों पर बाते होती रहीं। भिन्न-भिन्न प्रश्नो पर एकमत नहीं हुए। फिर भी कुछ सुधरे हुए वातावरण में चर्चा होते-होते विभाजन से उत्पन्न और कुछ समस्याओं पर हमारा अनुबंध हुआ। १ दिसम्बर १९४७ को विभाजन मंडल के समक्ष वह अनुबंध रखा गया, किंतु वह अनुबंध बाद में लिपिबद्ध करना था। २ दिसम्बर को वह हुआ। उस समय यह भी स्पष्ट हुआ कि काश्मीर और दूसरे प्रश्नों के सुझाव मिलने के पश्चात ही इस अनुबंध का प्रकटीकरण होगा। उस समय आशा थी कि सब प्रश्न समाधानपूर्ण पद्धति से हल हो जाएँगे।

वक्तव्य प्रकट करने की यह नीति दोनो पक्षों ने मध्यस्थ आयोग के सामने (आर्बिट्रल ट्रिबूनल) अपने-अपने निवेदन देते समय मान ली थी। जो प्रश्न चर्चा मे आते थे उन पर सुझाव प्राप्त होने को अनुकूलता प्रतीत होती थी। ८ और ९ दिसम्बर को लाहोर में बैठक बुलाई गई। उस बैठक में स्थिति अधिक स्पष्ट होनेवाली थी। बैठक आरम्भ हुई। देखने में यह आया कि पचपन करोड राशि झट से खीच लेने के प्रयास में पाकिस्तान बीच के समय में व्यग्र रहा। मैंने इस चाल का विरोध किया। आर्थिक लेन-देन का प्रश्न अलग गिना जाय और हमारे हाथ बधे इसलिए पाकिस्तान के उच्च आयुक्त (हाई कमिशनर) ने ७ दिसंबर को बताया कि आर्थिक प्रश्नों पर हमारा अनुबंध हो गया किंतु हम अपनी पुरानी बातों पर अटल रहे। लाहोर की चर्चा में भी हमने अपना आग्रह स्थिर रक्खा और पाकिस्तानसे कुछ मर्यादा तक सहमति प्रकट कर हमने निश्चित किया कि दिल्ली में होनेवाले ससद अधिवेशन में ९ दिसंबर को एक वक्तव्य दिया जाए। पाकिस्तान के अर्थमंत्री ने वृत्तपत्र की ओर जाने की इतनी फुर्ती की कि ७ दिसम्बर को उन्होने निवेदन भी दिया। पाकिस्तान की कपट नीति उसी समय स्पष्ट हुई।

आर्थिक प्रश्नों पर जो अनुबंध हुआ उसका पाकिस्तान ने शस्त्र के रूप में प्रकटीकरण और प्रयोग किया। उसी का उन्होने उपयोग कर काश्मीर विषयक

नीति में फिर से अनाड़ी परिवर्तन किया और दिल्ली की बातचीत में कुछ दिन पूर्व ही जो आशा लगती थी वह चकनाचूर हो गई। ९ दिसम्बर के संसद के मेरे वक्तव्य में मुझे एक भूमिका स्पष्ट करना अनिवार्य प्रतीत हुआ। वह यह थी कि आर्थिक अनुसंधान का कार्यवहन जहाँ तक बन सके तभी तक किया जाएगा जब काश्मीर प्रश्न सुलझेगा। इस मेरे विधान पर पाकिस्तानने उस समय कोई आपत्ति नहीं उठाई। १२ दिसम्बर को पाकिस्तान के उच्च आयुक्त की उपस्थिति में मैंने एक विस्तृत वक्तव्य दिया। उसमें मैंने यह कहा था कि उस अनुबंध का यशस्वी कार्यवहन दूसरे महत्त्व के प्रश्न पर निर्भर रहेगा। काश्मीर का प्रश्न उन्ही प्रश्नों में एक था, यह बात स्पष्ट थी। पाकिस्तान ने उस समय कोई आपत्ति नही उठाई। पचपन करोड रुपये छीननेके पाकिस्तान के प्रत्येक यत्न का हमने विरोध किया था। फिर २६ दिसम्बर को काश्मीर विषय पर अन्तिम चर्चा प्रारम्भ हुई, तब पाकिस्तान के महामन्त्री ने प्रथम बार काश्मीर प्रश्न और आर्थिक प्रश्न अन्योन्याश्रित हैं, इस हमारे कथन का विरोध किया और पचपन करोड रुपया त्वरित देने के लिए माँग की। हमने उस समय भी उन्हें जताया और बादमें ३० दिसम्बर को हमने जो तार भेजा उसमें भी स्पष्ट किया कि अनुबंध की धाराओं का पालन करने के लिए हम वचनबद्ध अवश्य है, किंतु काश्मीर के प्रश्न में पाकिस्तानने जो शत्रुता का रवैया लिया है उसके लिए पैसा देना स्थगित करना पड़ेगा, क्योंकि पूरी चर्चा भर हमारी वही भूमिका रही है।

इस प्रकार हमारा पाकिस्तान से बर्ताव तनिक भी अनुचित नहीं रहा है। हमने किसी का भी वचनभंग नहीं किया है। इसके विपरीत पाकिस्तान के प्रतिनिधियों ने स्वांग रचा कि वे पाकिस्तान की समस्या का सुझाव शीघ्रतासे चाहते हैं और उस बल से हमसे आर्थिक प्रश्नों पर और दूसरे प्रश्नोंपर अधिकाधिक सुविधायें खीचने का यत्न किया। हमसे यह कहलवाने को कि आर्थिक प्रश्न अन्य प्रश्नों से भिन्न है, उनका दाँव था। पाकिस्तान के उच्चायुक्त और अर्थमंत्रीने हमारे हाथ जकड लेने का भारी प्रयास किया, परन्तु हमने सदा ही उसका सफल विरोध किया। हम कभी अप्रामाणिक नहीं रहे वरना सब प्रश्नों के सुझाव का यह एक अंशमात्र है, यह हम मन से और सत्यता से मानते थे। इन दोनों पड़ोसी राष्ट्रों में मित्रता और शान्ति रहे, इसलिए हमारा यह निर्णय था।

हमारा कहना यह भी है कि इस आर्थिक समन्वय को मान्यता देने के पीछे हमारे मन में पाकिस्तान के प्रति उदार भावना थी। विभाजन मंडल के सामने मैंने यह भी कहा था कि पाकिस्तान एक वैभव और प्रतिष्ठाशाली पड़ोसी के नाते खड़ा रहे, यही हमारी इच्छा है। हमें आशा थी कि दूसरे प्रश्नो के झगड़ों में पाकिस्तान भी हमारे प्रति वैसी ही भावना रखेगा। क्योंकि उस संघर्ष के कारण हम दूर है।

पाकिस्तानके उच्च आयुक्त और सर आर्चिबाल्ड रोलैंड्स् के प्रचारित वक्तव्य से यह स्पष्ट दीखता है कि यह आर्थिक समन्वय पाकिस्तान को बड़ा ही आकर्षक लगा और पाकिस्तान को इससे बड़ा सहारा मिलनेवाला था। इसलिए अपनी आर्थिक नींव संतुलित रखने के लिए पाकिस्तान ने यह वचन प्राप्त किया। उसके साथ हिंदुस्तान की भावनाओंका प्रतिवाद करना उन्होंने टाला।

पाकिस्तान हिंदुस्तान को क्या देगा ?

मैं यह भी ध्यान में लाना चाहता हूँ कि हमारा दृष्टिकोन न केवल न्याय और शांति का समन्वय करने का था प्रत्युत उससे भी विशाल था। हम सदा जानते थे कि जो झगडे है उनको सामंजस्य, सहानुभूति, सहनशीलता और कल्याणकारी दृष्टि से सुलझाया जाए तो ही हम और पाकिस्तान के बीच पड़ोसी के और सौहार्द्र के संबंध रहना संभव होगा, किन्तु पाकिस्तान ने हमारे उदार दृष्टिकोण का अनुचित लाभ उठाया। हमारी उन भावनाओं का अपने पिछले संकुचित स्वार्थ के लिए प्रयोग किया। स्पष्ट है कि आवश्यकता थी और है सर्वव्यापक उदार भावना की। दूसरे घटकों को अलग रखें, हिन्दुस्तान ने अविभक्त अर्थात् विभाजन पूर्व हिंदुस्तान के ऋण का बोझ अपने सिर पर लिया और पाकिस्तान के विश्वास और सद्भावना पर हमने भरोसा रखा। हमने निर्णय किया कि पाकिस्तान दीर्घ कालावधि के सुलभ अंशो में हिन्दुस्तान का ऋण चुकाए। इसलिए हमसे यह नहीं बनेगा कि हमारी सुरक्षितता और प्रतिष्ठा पर प्रहार करने वाले प्रश्न पैसों के लेन-देन में डूबे रहें। हमें पूर्ण दक्षता रखनी चाहिए ताकि जो संबंध खींचातानी के हैं वे अधिक बिगड़ न पाएँ। मैंने १२ दिसम्बर को दिए गए वक्तव्य में कहा ही है कि हमारी सद्भावना की नींव पर खड़ा कार्य अब धोखे में आया है अर्थात् हमारी सद्भावना को ही अब खतरा है।

काश्मीर पर जो आक्रमण हुआ है उसके प्रतिरोधात्मक उपाय की दृष्टि से हमने इस आर्थिक समन्वय का कार्यवहन स्थगित किया। हमने उसमें न्यायोचित व्यवहार ही किया है। हम उस समन्वय पत्र से बँधे हुए है, यह बात हमने पाकिस्तान को एक बार नहीं, कई बार बताई है। पैसे चुकाने के लिए नियत समय के बंधन हम पर उस समन्वय पत्र में नहीं है। इस समय पाकिस्तान ने अपनी सेना सहित हमसे सशस्त्र संघर्ष खड़ा किया है। ऐसा लगता है कि उसकी व्याप्ति अधिक भयानक होगी। उससे आर्थिक समन्वय की नींव ही उखड़ जाने का डर है। समन्वय पत्र से लिपिबद्ध ऋण उत्तरदायित्व स्वीकारना, सामग्री का बंटवारा करना आदि धन्धों पर भी उसका प्रतिकूल परिणाम होगा। ऐसी अवस्था में बचे पैसे हम दें इस प्रकार का द्वंद्व पाकिस्तान किसी भी न्याय से हमसे नहीं कर सकता।

आरोपों को आधार नहीं है

सज्जन पाठक ! पाकिस्तान के अर्थमंत्री के हिंदुस्तान शासन पर लगाये आरोप कितने निराधार और खोखले है, यह दिखाने के लिए मैंने पर्याप्त विवरण दिया है, यह मेरी धारणा है। मैंने यह भी दिखाया है कि आर्थिक प्रश्न दूसरे प्रश्नों से अलग नहीं किया जा सकता और समन्वय पत्र का कार्यवहन एक ही साथ हो सकता है, यह हम आरंभ से ही कहते आये है। जो समन्वय हुआ है उससे पीछे हटने का प्रश्न ही नही उठता। इच्छा इतनी ही है कि समन्वय का कार्यवहन करने के लिए अनुकूल योग्य वातावरण निर्माण हो। अभी पाकिस्तान पहले ही पैसे मांगने का आग्रह धरे तो एक बात स्पष्ट है कि जो समन्वय हुआ है उसके पीछे की भावनाओं को सुरंग लगाने का उनका विचार है। इसलिए उनके उस आग्रह का विरोध करने में हम न्यायपूर्ण ही वर्ताव करते हैं। यदि पाकिस्तान अपनी गुंडा नीति में सफल हुआ तो समन्वय की नींव उध्वस्त होगी और हिंदुस्तान पर उन्होंने जो चढ़ाई का रूप धारण किया है उसको सुकरता प्राप्त होगी। समन्वय के अन्य प्रश्नों पर भी उसका विपरीत परिणाम होगा, यह स्पष्ट है।

समन्वय के संबंध में
अर्थमंत्री के प्रतिवृत्त का अंश

बाद में जो घटनाएँ हुई उनमे हमारी उदारता कुपात्र में परोसी गयी यह स्पष्ट होगा। श्री गुलाम मुहम्मद ने हम पर राजनीतिक डकैती का आरोप लगाया है। पाकिस्तान की ओर सहानुभूति खीचने का शायद यही एक सस्ता मार्ग होगा। उन्होंने हमें चिढ़ानेवाला व्यवहार किया है, किंतु उसके बाद भी हमारी भूमिका स्पष्ट है। इन दो देशो में जो समन्वय हुआ उसकी धाराओं से पीछे हटने का प्रश्न ही नहीं उठता। हमने पहले से ही यह कहा है कि ये सब धाराएँ सर्वव्यापक समन्वय का एक भाग मात्र है और उनकी धाराओं का कार्यवहन सब प्रश्नों के सुझाव के साथ ही होगा। इसके बीच हमारे पड़ोसी राष्ट्र के उत्तरदायी मंत्री द्वारा किये गये उद्दण्ड वर्ताव, गुंडानीति के प्रचार, हमारी टांग खीचने की चेष्टा से भी हम अपनी योग्य नीति से विचलित नहीं होंगे।

हिंदुस्तान की उत्स्फूर्त सद्भावना का प्रत्यय
हिंदुस्तान-पाकिस्तान आर्थिक समन्वय का त्वरित कार्यवहन

हिंदुस्तान महामंत्रालय ने १५ जनवरी १९४७ को वित्तमंत्री के लिए एक निवेदन प्रकट किया है। उसमें कहा है कि हिंदुस्तान शासन ने हिंदुस्तान और पाकि-

स्तान के बीच हुए आर्थिक विषयक समन्वय के बारे में अपनी भूमिका पहले स्पष्ट की ही है। हमने यह भी कहा है कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच जो सर्वव्यापक वादविवाद के प्रश्न है उन सबकें सुलझाव के साथ ही आर्थिक समन्वय का क्रिया-किया जाए। साथ ही साथ हमने यह भी बताया कि समन्वय की धाराओं का हम साथ देते है।

पाकिस्तान के अर्थ मंत्री ने जो अर्थहीन वाद-विवाद प्रारंभ किया है और कोलाहल मचाया है, उसका हमें दुःख है। हम वह कभी भी नही मानेंगे। हिंदुस्तान के उपप्रधान मंत्री और अर्थमंत्री ने जो निवेदन दिये है उनमें वस्तुस्थिती और सत्य घटनाओं का विस्तार दिया ही है। उनमें प्रस्तुत किये विधान तथा युक्तिवाद हिंदुस्तान के मंत्रीमंडल के एकमत के निदर्शन हैं। पाकिस्तान के अर्थमंत्री नें उन सत्य घटनाओं को फिर से आव्हान दिया है, इसका हमें खेद है। वे सत्य घटनायें विरोध के परे है। हिंदुस्तान शासन ने न्याय की भूमिका और दूसरी भूमिका सें जो नीति अपनायी है, उसी का यह आधार है।

महात्मा गाँधी का अनशन

गाधीजी ने अर्थात् राष्ट्रपिता ने जो अनशन प्रारंभ किया हें उससे विश्वभर में चिंता फैल गयी है। उस चिंता में हिंदुस्तान शासन सहयोगी है। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के संबंधो में जो शंका का, मत्सर का, और द्वेष का विष फैला हे उस पर उपचार करने के मार्गों का अवलंबन करने के प्रयत्नो मे हम गांधी जी के साथ हैं।

इस हेतु पूर्ति के कारण हिंदुस्तान शासन ने एक समन्वय की ओर ध्यान आकर्षित करने वाला उपहार प्रस्तुत किया है। उससे राष्ट्र की आत्मा की शारिरीक यातनाओं से विश्राम मिलेगा। वैसे ही राष्ट्र का मन इस समय कटुता, संशय और क्रोध में लिपटा हुआ है, उससे भी वह बाहर आएगा। यह एक रचनात्मक मार्ग सिद्ध होगा। गांधीजी के अतःकरण का वह सिद्धान्त है। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच संघर्ष निर्माण करने वाली बातें यथासंभव दूर करने के लिए हिंदुस्तान शासन उत्सुक है। और वह भी राष्ट्रहित की हानि न होने देकर।

गांधीजी ने राष्ट्र का जो आव्हान किया है उसके अनुसार संशय और संघर्ष के वातावरण के एक घटक का निवारण करने का हिंदुस्तान शासन ने निर्णय किया है। वह निराकरण हमारे देश और समाज के हित में सुसंगत है और वह हमारे हाथ में है।

इस शुद्ध हेतु और सद्भावना से हम यह अहंस्फूर्त प्रत्युत्तर दे रहे है, उसको उसी प्रमाण में और उसी भावना में प्रतिसाद मिलेगा, यह हमारी मनःपूर्वक आकांक्षा

है। आपस में सौहार्द्र निर्माण होने में उसकी सहायता होगी। राष्ट्र के एक महान सेवक गांधीजी यज्ञवेदी पर खड़े हैं, उनको विराम मिलेगा। वे अनशन को समाप्त करेंगे और इसके पश्चात् भी देश की अतुलनीय सेवा करेंगे।

रोकड़ पैसे पाकिस्तान को देने के अनुबंध का कार्यान्वयन तत्काल करने का हिंदुस्तान शासन ने निर्णय किया है। इस समन्वय के अनुसार पाकिस्तान को देने की राशि पचपन करोड़ रुपये १५ अगस्त १९४७ के पश्चात् पाकिस्तान के लिये हिंदुस्तान शासन ने कम लिये हुए पैसे काट कर प्रदान करेगा।

यह निर्णय इस देश के देदीप्यमान परंपरा के अनुसार शांति और सदिच्छा स्थिर रखनें के लिये गांधीजी के अहिंसक और उदात्त प्रयत्न को हिंदुस्तान शासन की ओर से मनःपूर्वक भेंट है।

हिंदुस्तान के प्रधानमंत्री के निवेदन का उद्धरण

पाकिस्तान को राशि देने का निर्णय भारत-सरकार ने पूर्ण विचार-विमर्श तथा गांधी जी से परामर्श कर लिया है। मेरे मान्यवर सहकारियों ने समय समय पर जो निवेदन दिये है उनमें हिंदुस्थान शासन की भूमिका स्पष्ट कर दी है। यह शासन की एक मत की भूमिका है। उसके पीछे खड़ी शक्ति और उसकी बोधता उससे हमारे ही सद्भावना के प्रत्यय से कोई अंतर पड़ा है, ऐसा अर्थ न निकाला जाय। पाकिस्तान के अर्थमंत्री ने जो अंतिम पत्रक प्रचारित किया है, उसमे उन्होने खड़े किये वाद हम मानते नही है, यह भी हम स्पष्ट शब्दो में कहते है।

हिंदु महासभा का लोकतंत्रविषयक प्रस्ताव

अखिल भारतीय हिंदुमहासभा का बिलासपुर में दिसंबर १९४४ में २६ वॉं अधिवेशन संपन्न हुआ। अधिवेशन में पारित प्रस्ताओं के उद्धरण नीचे दिये है। इस प्रस्तावों का श्री नथूराम विनायक गोडसे ने सम्पुष्टीकरण दिया था।

संविधान के मूलभूत तत्त्व

(१) सार्वभौम सत्ता के घटक हिंदुस्तान के लोग है। विश्व के अन्य देश के लोगों के समान ही हिंदुस्थान के लोगों को भी स्वतंत्र होने का पूरा अधिकार है। इसलिये हिंदुस्थान एक स्वतंत्र राष्ट्र रहेगा और उसके संविधान का नाम रहेगा 'स्वतंत्र हिंदुस्थान राष्ट्र का संविधान।'

(२) ऐतिहासिक परंपरा के अनुसार, राजनीतिक दृष्टि से और आर्थिक आधार पर वैसे ही सांस्कृतिक भूमिका से भी हिंदुस्थान एक है, संपूर्ण है, अविभाज्य है, और यह भूभाग वैसा ही रहना चाहिये।

(३) हिंदुस्थान के स्वतंत्र राष्ट्र के शासन का स्वरूप लोकतंत्र प्रधान और गणतंत्र पद्धति का रहेगा।

(४) गणतंत्र की विधिमंडल पद्धति दोहरे प्रकार की रहेगी।

(५) विधि मंडल के चुनाव चाहे केंद्रीय हों अथवा प्रांतीय, समान मतदाता संघ से और एक व्यक्ति को एक मत इस तत्व पर होंगे। मतदाता संयुक्त रहेंगे अल्पसंख्यकों का उनकी संख्या के अनुसार सुरक्षित प्रतिनिधित्व रहेगा।

मूलभूत अधिकार

(१) सब नागरिकों को विधिविषयक समानता रहेगी। नागरी अथवा दंडविषयक, मूलभूत अथवा कार्यवहनात्मक कोई भी विधि भेदभाव करने वाली नही रहेगी।

(२) सार्वजनिक स्वरूप की सेवावृत्ति अधिकार पद, मान-सम्मान के स्थान अथवा व्यवसाय करने का अधिकार सबको समान रहेगा जिसमें वर्ण, जाति अथवा पंथ इसकी रुकावट नहीं रहेगी।

(६) सार्वजनिक सुव्यवस्था और नीतिमत्ता इनमें बाधा न लाते हुये सब नागरिकों को विचार स्वातंत्र्य वैसे ही आचरण स्वातंत्र्य रहेगा। अपने-अपने धर्म का पालन, अपनी–अपनी संस्कृति का संरक्षण करने का प्रत्येक को स्वातंत्र्य रहेगा और धर्म द्वेष पर आधारित अथवा धर्म के नाम प्रतिबंध लानेवाला कोई भी कानून प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में नहीं बनाया जायगा। उसी प्रकार धर्म विषयक अथवा धार्मिक श्रेणी के कारण किसी को भी विशेष अधिकार प्राप्त नहीं होंगे या किसी के अधिकार छीने नहीं जायेंगे।

★

१५ | नथूरामका श्री. ग. त्र्यं. माडखोलकर को पत्र

काम तो बहुत है और समय अधूरा है जिसका ध्यान नथूराम को सदा रहता था। श्री. ग. त्र्यं. माडखोलकर की (नागपुर के मराठी दैनिक 'तरुण भारत' के संपादक) लिखी एक निर्वासित की कहानी, (एका निर्वासिताची कहाणी) उसने पढी थी। नथुराम की तीव्र इच्छा थी कि लेखक को अभिप्राय पहुंचाए।

नया कागज लेना, पत्ररूप में अभिप्राय लिखना, इसके लिये भी नथुराम के पास समय नहीं था। इस 'निर्वासित की कहानी' पुस्तक पर ही, जो कोरे भाग और अधकोरे पन्ने थे उन्ही पर उसने अपना मनोगत लिखा।

दि. १४-११-४९ को अर्थात फांसी के पहले दिन उसने वह पत्र लिखा। फांसी लगने के पश्चात् नथुराम की निजी वस्तुओं और पुस्तकों की अधिकारी वर्ग ने नियुक्त विभागों से छानबीन की। फिर वह सामग्री संबंधियों को लौटा दी गयी।

मेरे बंधु श्री. दत्तात्रेय ने वह पुस्तक और उस अभिप्राय की एक प्रतिलिपि श्री माडखोलकरजी के पास आठ दस दिनों पश्चात् पहुँचा दी।

पूना के 'सोबत' मराठी साप्ताहिक के संपादक श्री. ग. वा. बेहेरे ने उपर्युक्त पत्र दीपावली १९७० के अंक में प्रकाशित किया है। पत्र का जो साहित्यिक अथवा वाङ्मयीन अंग है उसके लिखित निवेदन के भावनात्मक अंग के प्रकाश में रसग्रहण किया जाय, इस हेतु से यह पत्र यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

अंबाला
दि. १४-११-४९

प्रिय लेखक महाशय,

निर्वासित की कथा पढ़ी। विचारपूर्वक पढ़ी। आपकी लेखनी मूलतः ही महाराष्ट्र में लोकप्रिय है। और इस कहानी का कथानक तो सत्य घटना है और इसलिये इस कहानी में प्रेम, अनुकम्पा आदर, संताप, तिरस्कार, दुःख आदि नानाविध भाव अति प्रखरता से प्रकट हुए है। आपकी मनोव्यथाएं और आपके विविध विचार तरंग वास्तविकता की पृष्ठभूमि पर आपने शब्दांकित किये है और इसलिये आपके आजकल के कई 'डाक बंगलों' की अपेक्षा ('डाक बंगला' श्री माडखोलकरजी का एक उपन्यास है) आपका 'भग्नघर' (यह भी उनका एक उपन्यास है) साहित्य सृष्टिमें अधिक समय टिका रहेगा।

श्रीमान लेखक महाशय, आपके किसी आंदोलन का और आपके सर्वसामान्य सौजन्य का मैं एक प्रेमी हूं और रसज्ञ भी। कुछ समय आपके सुखद सहवास का आस्वाद भी मैंने लिया है। मुझे परिणाम में आपके बारे में पहले प्रेम रहा है, उसी मात्रा में आज भी, आपकी पुस्तक पढ़ने के पश्चात् भी स्थिर है। और मैं यह भी जानता हूं कि मेरे बारे में आपके अतःकरण मे बिना आत्यंतिक तिरस्कार के और कोई भावना नहीं रही होगी।

और इस पर भी मैं यह लिख रहा हूं। मुझे विश्वास है कि आप इसे पढ़ेंगे और इस पर विचार करेंगे। मैं भी आज ये शब्द स्वर्गारोहण की सिद्धता की स्थिति

में लिख रहा हूं। मेरी चित्तवृत्ति शांत है। मन उल्लसित है। मुझे लगता है, आपकी कथा के पीछे जैसे एक वास्तविकता की भूमिका है उसी प्रकार मेरे इस पत्र के पीछे भी एक अननुभूत और क्वचित ही दृष्टिगोचर होनें वाली पार्श्वभूमि चित्रित है। मैं पत्रकार था. किंतु मैं साहित्यिक हूं। तथापि साहित्य यह मेरी रुचि का विषय था और साहित्य का थोडा बहुत आस्वाद चखनें जितनी रसज्ञता मुझ मे है यह मेरी धारणा है। और इसलिये मुझे लगता है जिस परिस्थिति में मैं यह पत्र लिख रहा हूं वह साहित्यिक का हृदय कंपित किये बिना नही रहेगी। अस्तु।

आपकी 'एक निर्वासित की कहानी' में आपके इस प्रसंग के और भी अनेक निर्वासितों के और विध्वंसन के वर्णन है। एक अंग को यह विध्वंसन और उसके मूल में गांधी-वध का कारण। आपके अंतःकरण पर गांधी वध से आघात हुआ। आप में से ही एक ने यह वध किया इसलिए लज्जा और संताप आपकों अनिवार्य हुआ और विध्वंसन के कारण आपकी भावनाओ में उद्वेग, अनुकंपा और अन्य विकारों के कल्लोल की भरमार हुई।

उपर्युक्त घटनाएँ जैसे-जैसे मैं जाननें लगा मेरी भी भावनाएँ कुछ सीमा तक आपके जैसे ही हो गयी। आप माने या न माने, किंतु मूलतः मैं निर्दय वृत्ति का मनुष्य नहीं हूं। सहृदयता के और सर्व-साधारण सौजन्य के धागो से ही मेरा स्वभाव बना है। मेरे मित्र ही क्या, अनेक आरक्षी अधिकारी और बंदीपाल भी मेरी उक्त बात की संपुष्टि करेंगे, आप छानबीन करे।

तो फिर मैंने यह भयानक कृत्य क्यों किया? लेखक महाशय! इसी स्थान पर आप को विनंति है कि कवि की दिव्य दृष्टि से अथवा मनोवैज्ञानिक की सूक्ष्मदर्शिका के सहारे मेरे निम्नलिकित विधान आप देखें और फिर चाहे तो उन्हें फेंक दे।

मेरे क्रूर कृत्य का उद्गम सहृदयता और दया और स्त्री दाक्षिण्य इनकी आत्यंतिक भावनाओं में है। जन-निंदा अथवा मृत्युदंड, ये दोनों भी परिणाम मैं जानता था। तो भी उपर्युक्त भावनाओ की तुलना में मुझे वे क:पदार्थ प्रतीत हुए।

मेरे न्यायालयीन वक्तव्य का बहुत सा भाग सत्य इतिहास है और कुछ भाग अंत:करण से लिखा साहित्य है, किंतु वह लोगों के सामने लाने से शासन को डर लगता है। इसी बात से उसका प्रभाव मुझे प्रतीत होता है और वह वक्तव्य यदि आपको समग्र विदित हुआ तो मेरे कृत्य का उद्गम अच्छी प्रकार आपकें ध्यान मे आयेगा। भलेही मेरे कृत्य की निंदा आप कितनी भी करे, किंतु मेरी भावनाओं की निंदा करना आपकें लिये प्रामाणिकता से उचित नही होगा।

देश-विच्छेदन लोगों को अंधेरे में रखकर या नेताजनों ने अंधेरे में रहकर किया। गांधी यदि सत्यवचनी होते तो देश विच्छेदन को वे विरोध करते, भले विश्व क्यों

न विरोध में हो । अन्यथा उन्होंने लोगों को परिस्थिति का ज्ञान दिया होता और उनके विचार से वे उसे मान्यता देते, किंतु देश विच्छेदन के पश्चात् भी हमारी पूजामूर्ति अखंड भारतमाता भग्न हुई तो भी आज के राष्ट्रीय नेतागणों की इस प्रकार का अत्याचारी विरोध करने की कल्पना मेरे मस्तिष्क में नही घुसी थी। विच्छेदन के पश्चात् और दिनांक २० जनवरी १९४८ के पहले दो बार मैं दिल्ली और पंजाब में हो आया । और मैंने समक्ष क्या अवलोकन किया ? मेरे विचार में वह हृदय-द्रावक, करुण, अमानुष, अघटित और बीभत्स प्रसंग मेरी अपेक्षा आपकी लेखनी ही अधिक समरसता से चित्रित कर सकेगी क्योंकि आपकी लेखनी साहित्यिक की है। उसके पश्चात् मेरा दिल्ली आने काक। अंतिम अवसर दि० १७ जनवरी १९४८। मन में कुछ कल्पनायें थी। किंतु वे अधूरी थी। और वे मेरे इस दिल्ली के वास्तव्य में निश्चित हुई । मैंने देखा कि पराकोटी को पहुँची मानवी क्रूरता को रोकने के लिए दुस्साहस का मार्ग अपनाना अनिवार्य है ।

गांधी जी का अन्तिम उपवास मुसलमानों के समाधान के लिये था और हिंदुओं पर प्रारंभ से ही हुए क्रूर अत्याचारों पर दया के नाम भयानक आघात किया गया। पेड के नीचे रहना संभव न हुआ, सहा नही गया, इसीलिये निर्वासित मस्जिदों और मन्दिरों की छत के नीचे रहे। किंतु मस्जिदों का उपयोग मानवी जीवनरक्षा के लिये न होने देने के लिए गांधी जी ने प्राणों का प्रण लगाकर विरोध किया और निर्वासितों के आश्रय की कोई भी सुविधा न करके गांधी वादी शासन सत्ता ने सहस्रों निर्वासित पुरुष स्त्री बालकों को कही गटर के अथवा कही रास्ते के किनारे कहीं ठंड के दिनों में रहने को बाध्य किया और पचपन करोड़ रुपये पाकिस्तान को दिये ।

लेखक महाशय ! क्षण भर के लिए सोचे । उन सहस्रावधि सुशील, किंतु विस्थापित पंजाबी महिलाओं में आपकी भी धर्मपत्नी है । नही-नही ! कल्पना भी क्षणार्ध से अधिक अपने मन में न जमायें रखें। किंतु इस प्रकार के अत्याचार करने वालों को दया के नाम पर दान करने वाले मनुष्य के विषय में आप किस भावना से लिप्त होंगे ? यह कथा भावनामय कल्पना नही हैं। सत्य स्थिति है।

दया के नाम से प्रचंड क्रौर्य को प्रोत्साहन पाकिस्तान में हुये अत्याचार को और हिंदू प्रांतों में कुछ स्थानों पर हुई प्रतिक्रिया से मुसलमानों पर हुई क्रूरता को गांधी जी का हठ और पराकोटी की नीति ही कारण है। कैसे भी शब्दश्लेष निकालें और दूषण मढ़ाने के लिये बीच-बीच में ब्रिटिशों का नाम लें तो भी उपर्युक्त सत्य को नही छिपाया जा सकता।

गांधी वाद और गांधी जी की महात्म्यता के नाम अपने राष्ट्र पर विचार-शक्ति की और सदसद्-विवेकता के पूर्णतया गिपरीत बातें लादी जाती थी। हैदराबाद की समस्या सुलझनी थी और राष्ट्रभाषा जैसा महत्वपूर्ण प्रश्न गांधी जी के हठ के कारण उर्दू का वन्य और प्रतिगामी झंझट गले से सुलझने की सीमा पर खड़ा था। भावी विटंबना और भयानक क्रूरता रोकने के लिए मैं सापेक्षतः एक छोटा क्रूर कृत्य करने को प्रवृत्त हुआ।

हिरोशिमा पर अणुबम फेक क्षण में डेढ लाख लोगों को मारनेवाले राष्ट्र की प्रशंसा करने में आज अपना अहिंसक राष्ट्र व्यस्त है और ऐसा कहा जाता है कि डेढ़ लाख लोग मरे, किंतु उससे और लक्ष-लक्ष लोग बचे। तो फिर मैं भी वही कहता हूँ कि गांधी जी मारे गये, हम कुछ लोग फांसी जा रहे है, बहुतेरे निर्वासित बने, जिनमे आप एक है। किंतु दगा और सत्य के नाम से होनेवाला भयानक मानवी नरसंहार तत्काल नियंत्रण में आया है।

गांधी जी की राष्ट्र सेवा के लिये उन्हें शतशः प्रणाम। किंतु राष्ट्रसेवक को भी राष्ट्र-विच्छेदन का और राष्ट्र-शत्रु को सहायता देने का अधिकार नहीं पहुँचता है। जिस जनता का यह राष्ट्र है उसको समझाकार और विचार-विमर्श से ये प्रश्न सुलझाने के होते हैं। कुछ नेताओं ने अन्धेरे में कुछ निर्णय लेकर अथवा महात्मा ने उपवास का भय दिखाकर जैसी विचित्र बाधक नीति लोगों पर लादी तो उसका परिणाम ऐसे विस्फोट के बिना और क्या होगा? यह पहले भी दृष्टि से ओझल न हो।

मेरी विनती है कि जिस देश के लक्षावधि अभागी निर्वासितों के लिए और विस्थापित महिलाओं के लिये भी एक चित्तवेधक कहानी आप अवश्य लिखें और उस भयानक अमानुषता को गांधी वाद की नीव है, यह बात भी सत्यता से और स्पष्ट रूप से विश्व को कहें। गांधी जी को चाहे जितना वंदन करें, किंतु अपना राष्ट्र फिर कभी गांधी वाद के भंवर में न फँसने दें। आज गांधी वाद मृत हो रहा है। मेरे मृत्युदंड की शिक्षा गांधीवादी अहिंसा का न्याय और राज्य-शासन के क्षेत्र में वैयर्थ सिद्ध कर रहा है।

दया की भीख से मुझे जीवनदान दिया जाता तो वह मेरी मौत ठहरती। किंतु मेरा स्वर्गारोहण यह गांधी वाद की मृत्यु है। मैंने अपने इस कृत्य से कोई पाप किया है, ऐसा मुझे तनिक भी नही लगता। और इसलिए इस कृत्य के लिये पापक्षालन की प्रार्थना करने की कल्पना तक मेरे मन को नही छुई। यद्यपि आपने पंचमहापातकों की माला मेरे लिये निर्माण की है तो भी मुझे आपकी भावनाओ को आघात पहुंचाने की इच्छा नही है, किंतु मैं आपके विचारों को खाद्य देना चाहता

हूं। पढ़िये, सोचिये और यदि स्वीकार्य न हो उसे फेंक देने के लिये आप मुक्त हैं। किंतु उसके बाद भी इतना कहना मैं आवश्यक मानता हूं कि जिसका अंतःकरण न्यूनतम आपके अंतःकरण की अपेक्षा कम सहृदय नहीं है। और जो आप जितना ही सुसंस्कृत है उसने गांधीवध किया है, इस बात का विश्लेषण आपको करना पड़ेगा।

गांधी जी अमर हैं, किंतु गांधीवाद मृत्युशय्या पर पड़ा है। चोपापन और भ्रामक तुष्टीकरण के तंत्र के बलि होने के दिन समाप्त होने आये है, बुद्धिवाद के प्रभात काल का उदय हुआ है।

आपका

नथूराम वि० गोडसे

१४-११-४६

प्रिय माडखोलकर जी ! मेरा अंतिम प्रणाम स्वीकारना अथवा तिरस्कारना आपका प्रश्न है। मेरी विनंती है, उसे स्वीकार करें। आपके इस कहानी प्रकाशन को सहायता देने वालों को मेरा धन्यवाद कहें। गुरुवर्य अण्णासाहेब कर्वे को मेरा अंतिम विनम्र प्रणाम अवश्य कहें। और क्या लिखूं ? क्रूर कृत्य करने की प्रेरणा परिस्थिति ने मुझे दी, इसी का केवल खेद होता है। स्वर्गारोहण के प्रसंग में मैं शांत हूं।

आपका शुभेच्छु

नथूराम वि० गोडसे

अंबाला बंदीगृह १४-११-४९

लक्षावधि निर्वासितों के लिये भी यह कहानी अवश्य लिखें। आपकी लेखनी शैलीदार है, अंतःकरण कोमल है।

कश्मीर पर सर्वव्यापी आक्रमण, संदर्भ : अध्याय ५ : कश्मीर